View metadata, citation and similar papers at core.ac.uk

brought to you by CORE

provided by Etheses - A Saurashtra University Library Service

Saurashtra University
Re – Accredited Grade 'B' by NAAC
(CGPA 2.93)

Goswami, Kalpana G., 2008, "*रामदरश मिश्र का काव्य ' अनुभूति और अभिव्यक्ति'* ", thesis PhD, Saurashtra University

http://etheses.saurashtrauniversity.edu/id/eprint/705

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study, without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title, awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service
http://etheses.saurashtrauniversity.edu
repository@sauuni.ernet.in

© The Author

रामदरश मिश्र का काव्य

'अनुभूति और अभिव्यक्ति'

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच. डी. की उपाधि के लिए
प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध

शोधार्थी
कल्पना जी. गोस्वामी
बारदानवाला कन्या विद्यालय, राजकोट

निर्देशिका
प्रा. डॉ. दक्षाबहन जोशी
अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
श्री मीनाबेन कुंडलिया कॉलेज, राजकोट

वर्ष : 2008

रामदरश मिश्र का काव्य
'अनुभूति और अभिव्यक्ति'

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच. डी. की उपाधि के लिए
प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध

शोधार्थी
कल्पना जी. गोस्वामी
बारदानवाला कन्या विद्यालय, राजकोट

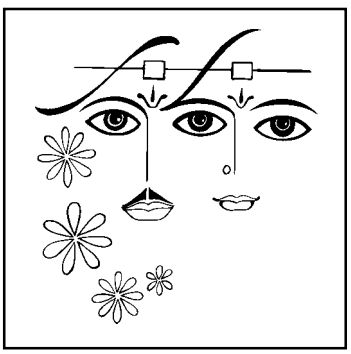

निर्देशिका
प्रा. डॉ. दक्षाबहन जोशी
अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
श्री मीनाबेन कुंडलिया कॉलेज, राजकोट

वर्ष : 2008

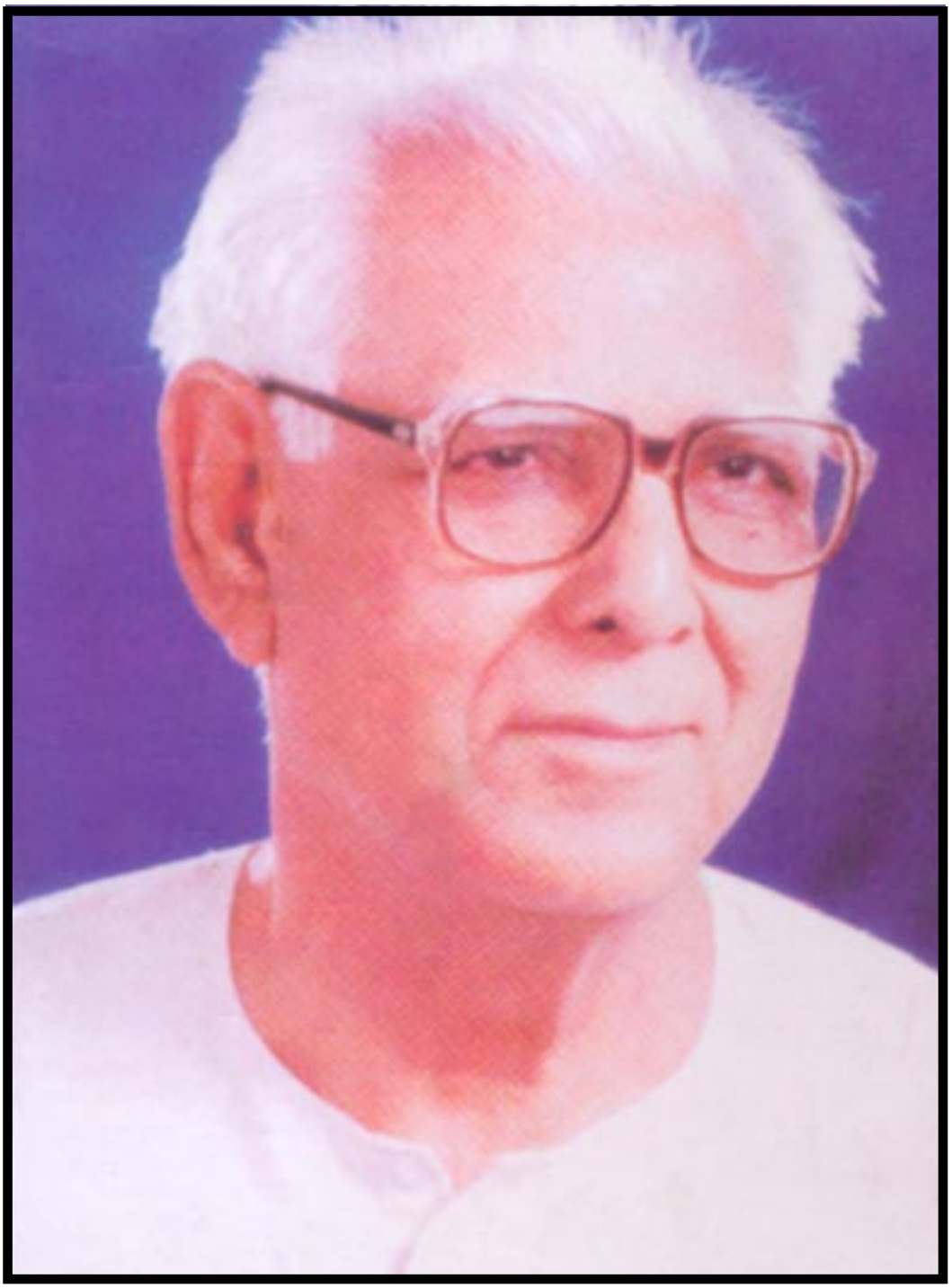

रामदरश मिश्र

: प्रमाणपत्र :

प्रमाणित किया जाता है कि कल्पना जी. गोस्वामी ने सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट की Ph.D. (हिन्दी) की उपाधि के लिए **'रामदरश मिश्र का काव्य : अनुभूति और अभिव्यक्ति'** विषय पर शोध कार्य मेरे निर्देशन में तैयार किया गया है ।

उन्होंने उक्त विषय पर यथाशक्ति संदर्भग्रंथो का अध्ययन, मनन कर मौलिक निरूपण किया है ।

साथ ही यह शोध-प्रबंध अथवा इसका कोई अंश अब तक न तो प्रकाशित हुआ है और न ही कहीं कोई उपयोग हुआ है ।

राजकोट

दिनांक :

निर्देशिका

प्रा. डॉ. दक्षाबहन जोशी

अध्यक्ष : हिन्दी विभाग

मीनाबहन कुंडलिया कॉलेज - राजकोट

: शुभकामना संदेश :

डॉ. रामदरश मिश्र
R-38, वाणी विहार
उत्तम नगर नई दिल्ली

चि. कल्पना.....

तुमने मेरी कविताओं पर रामदरश मिश्र का काव्य : अनुभूति और अभिव्यक्ति शिर्षक पर शोध कार्य किया है ।

आशा है तुमने उक्त विषय संबंधी यथायोग्य चिंतन-मनन करते हुए विषय को न्याय दिया होगा ।

सुखद भविष्य की शुभकामनाओ सह

डॉ. रामदरश मिश्र

अनुक्रम

१. भूमिका : 4

२. प्रस्तुत विषय की प्रेरणा : 5

३. प्रस्तुत विषय के अध्ययन की आवश्यकता : 6

४. प्रस्तुत विषय का महत्व : 7

५. प्रस्तुत विषय की शोध-सीमाएँ : 7

६. पूर्ववर्ती शोधकार्य : 8

७. सामग्री-संकलन 9

८. प्रस्तुत शोध-अध्ययन की विशेषताएँ : 9

९. कृतज्ञताज्ञापन 10

प्रबंध परिचय

- ❑ प्रथम अध्याय : रामदरश मिश्र व्यक्तित्व एवं कृतित्व : 21 से 49
- ❑ द्वितीय अध्याय : आधुनिक हिन्दी काव्य : एक परिदृश्य : 50 से 90
- ❑ तृतीय अध्याय : 'रामदरश मिश्र के काव्य का अनुभुति पक्ष'91 से 189
- ❑ चतुर्थ अध्याय : 'रामदरश मिश्र के काव्य का अभिव्यक्ति पक्ष' 190 से 311
- ❑ पंचम अध्याय : 'रामदरश मिश्र की काव्य-गत विशेषताएँ 312 से 350
- ❑ उपसंहार : 351 से 354

परिशिष्ट : ग्रंथानुक्रमणिका

- ❑ आधार ग्रंथ : रामदरश मिश्र के काव्य संग्रह, आत्मकथाएँ, रामदरश मिश्र संबंधी शोध-पुस्तकें
- ❑ सहायक ग्रंथ : रामदरश मिश्र के समीक्षात्मक ग्रंथ, आधुनिक हिन्दी काव्य, शब्द-कोश, पत्र-पत्रिकाएँ आदि ।

भूमिका

साहित्य और समाज काया और छाया के समान हमेशा जुडे रहते हैं । अतः उसमें समाज के विविध पहलुओं का चित्रण किसी-न-किसी रूप में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में होता है । यह तो निर्विवाद तथ्य है कि साहित्यकार अपने युगीन परिवेश से हमेशा जुडा रहता है, वह अपनी कलम से उस परिवेश को बडी खूबी से कागज पर उतारता है । उसके प्रस्तुतीकरण के लिए वह कोई एक विधा चुनता हैं, चाहे कविता हो या उपन्यास, नाटक हो या एकांकी । प्रस्तुत शोध प्रबंध में एक ऐसे साहित्यकार की कृतियों का अनुशीलन करने का विनम्र प्रयास किया गया है, जो स्वातंत्र्योत्तरकालीन साहित्यकारों में अपना अलग अस्तित्व बनाये हुए हैं ।

'किसी को गिराया न खुद को उछाला, कटा जिन्दगी का सफर धीरे-धीरे ।
जहाँ आप पहुँचे छलाँगे लगाकर, वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे ।।

श्री रामदरश मिश्र ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने हिन्दी साहित्य की उपन्यास विधा, कहानी विधा और आत्मकथा के क्षेत्र में अपना बहुमूल्य योगदान दिया है । साथ-साथ पद्य के क्षेत्र में भी अद्वितीय रहे हैं । वे मूलतः कवि रहे हैं । गद्य के साथ-साथ पद्य के क्षेत्र में उनका योगदान हमेशा अविस्मरणीय रहेगा ।

हिन्दी साहित्य में काव्य की परंपरा पुरानी है । प्रारंभ से लेकर आज तक हिन्दी काव्य-परंपरा ने अभूतपूर्व प्रगति की है । आज वह एक शक्तिशाली साहित्यिक विधा के रूप में उभरकर सामने आयी है । उसने सामयिक जीवन के विविध पहलुओं, विविध रूपों, विविध स्तरों पर प्रकाश डालते हुए मनुष्य की आशा-आकांक्षा, दुःख-निराशा, कर्तव्य और आदर्श का अधिकाधिक यथार्थ विवेचन किया । आज के काव्यों की परिधि जीवन के सभी अंगों और क्षेत्रों तक फैल गई हैं, जिन महत्वपूर्ण सामाजिक, राजनैतिक और वैचारिक आन्दोलनों से यह युग आलोकित-विलोकित हो रहा था, उनका यथेष्ट प्रतिबिम्ब इस काल के काव्यों में मिलता है । वर्णन, घटना, समाज, व्यक्ति और मन के पडावों से होती हुई हिन्दी काव्य-परंपरा निरंतर मंझिल की ओर अग्रसर है ।

कला और यथार्थ के प्रति अपनी इस दोहरी प्रतिबद्धता के कारण एक ओर जहाँ मिश्रजी के काव्यों का सौन्दर्य शास्त्रीय निकर्ष पर विश्लेषण-मूल्यांकन हुआ है, वहीं दूसरी ओर उनमें प्रतिबिंबित जीवन के अध्ययन के प्रयास भी हुए हैं । प्रस्तुत शोध-प्रबंध में मैंने उनके काव्य संग्रहों का विश्लेषण किया है और यह पक्ष है मिश्रजी के काव्यों में चित्रित 'अनुभूति और अभिव्यक्ति' का ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध में मिश्रजी की कविताओं में निहीत युगीन परिस्थितियाँ, निजी भावों एवं विचारों का विस्तृत परिचय दिया गया है ।

प्रस्तुत विषय की प्रेरणा

पूर्व कल्पना, परिकल्पना अथवा विषय की प्रेरणा एक विचार है, जो स्वानुभाव अथवा परानुभाव से उत्पन्न होता है । मेरी दृष्टि में आत्मस्फूरणा ही मनुष्य की सबसे बडी प्रेरणा है । हाँ, इसमें परिस्थितियाँ जरूर प्रेरक बनती है । साहित्य की विभिन्न विधाओं में कविता के प्रति मेरी रूचि सविशेष रही है । राष्ट्रभाषा के प्रति रूचि होने के कारण मैंने हिन्दी विषय के साथ बी.ए. और एम.ए. किया ।

हिन्दी साहित्य से मेरा अटूट रिश्ता रहा है । बाल्यकाल से ही मुझ पर हिन्दी का अदभूत प्रभाव रहा, क्योंकि परिवार के अभिभावक शिक्षा-क्षेत्र से जुडे रहे हैं । अतः घर में साहित्यिक वातावरण था । फलतः उस वातावरण में पली बडी हुई मैं हिन्दी अध्ययन से स्वाभाविक रूप से जुड गयी । अध्ययन कार्य करते समय मिश्रजी का उपन्यास 'आकाश की छत' पढ़ने का मौका मिला । जिसे पढकर मिश्रजी के साहित्य की ओर अनायास ही आकर्षित हो गयी । जब उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर विशेष जानकारी प्राप्त करने के लिए संदर्भ पढे तो उनका एक कवि के रूप में साक्षात्कार हुआ । इन ग्रंथों में जब उनके १२ कविता संग्रहों के नामों का उल्लेख पाया तो मन में एक जिज्ञासा जाग उठी कि इनके कविता संग्रह पर शोध-प्रबंध लिखा जा सकता है । तत्पश्चात हिन्दी विषय के साथ एम. फिल. किया । पीएच. डी. के लिए प्रेरणा इसी दौरान मिली । बचपन में मेरे अध्यापकों और बडे बुजुर्गों से मैं हमेशा पूछा करती थी कि पढाई में अंतिम कक्षा कौन-सी होती है ? तो जवाब मिलता पढाई की कोई अंतिम कक्षा नहीं होती । लेकिन पीएच. डी. अंतिम होती है । तब मैंने निश्चय किया कि मैं भी पीएच. डी. करूंगी । पढाई का पहला उदेश्य शिक्षिका बनना था । अतः शिक्षिका बनने के बाद इस दिशा में कार्यरत हुई । इसी दौरान मेरे श्रध्धेय गुरू डॉ. यशवंतभाई गोस्वामी (कणसागरा महिला कॉलेज - राजकोट) अभ्यासकाल के प्रारंभ से जो आज तक मुझे सहयोग एवं मार्गदर्शन देते आये हैं । उन्होने ही विषय संबंधी मार्गदर्शन किया एवं डॉ. दक्षाबहनजी से मेरी मुलाकात काई । तत् पश्चात उन्होंने दिल्ली स्थित डॉ. रामदरश मिश्रजी से फोन पर मेरी पीएच.डी. के विषय संबंधी बात-चीत कराई । डॉ. यशवंत गोस्वामीजीने रामदरश मिश्र के उपन्यासों पर ही पीएच.डी. किया है और मिश्रजी का विशेष स्नेह उन्हें मिला है अतः उनकी ही प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से मैंने अपना विषय तय किया । जिसका नाम है - **'रामदरश मिश्र का काव्य : अनुभूति और अभिव्यक्ति'।**

इस प्रकार खुद कवि डॉ. रामदरश मिश्र, डॉ. दक्षाबहन जोशी एवं डॉ. यशवंत गोस्वामी के शुभाशिष के साथ मेरा 'रामदरश मिश्र का काव्य : अनुभूति और अभिव्यक्ति' विषय पर शोध कार्य करने की प्रेरणा मिली ।

प्रस्तुत विषय के अध्ययन की आवश्यकता :

राष्ट्र के उत्थान एवं पतन में समाज की एक अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका होती है । वस्तुतः समाज के अनुरूप ही राष्ट्र की 'इमेज' निर्मित होती है । सही अर्थों में हम कहें तो समाज में रहनेवाले लोग ही राष्ट्र की रीढ हैं । जिस प्रकार मानव की समस्त शारीरिक संरचना रीढ पर ही अवस्थित होती है, उसी प्रकार राष्ट्र की भव्यतम इमारत भी समाज में रहनेवाले लोगों की सुदृढ नींव पर ही आधारित होती है । इतिहास इस चिरंतन तथ्य-सत्य का साक्षी है कि किसी भी युग में जब-जब समाज का स्वरूप विघटित हुआ है, तब-तब परिवर्तनकारी-विघटनकारी युगीन पारिवारिक-सामाजिक स्वरूप के प्रभाववश राष्ट्र के स्वरूप में भी परिवर्तन-विघटन अवश्य हुआ है । राष्ट्र और समाज परस्पर एक दूसरे के पूरक है ।

काव्य-साहित्यकार व्यक्ति, परिवार, समाज, और राष्ट्र की तत्कालीन मानसिकता के समानांतर चलता है । वह प्रस्तुत घटकों से संदर्भित परिवर्तनकारी एवं विघटनकारी कारणों की तह में एक रचनात्मक दृष्टिकोण से प्रवेश करता है । अपनी सशक्त अभिव्यक्ति के माध्यम से वह इसे इतने कलात्मक रूप में प्रस्तुत करता है कि उसकी कृतियों में तत्कालीन समाज जीवन की विसंगतियों और आर्थिक विषमताओं से जन्म लेनेवाली अमानवीय स्थितियों का यथार्थ एवं प्रामाणिक स्वरूप अपनी अच्छाइयों-बुराइयों के साथ स्वतः ही प्रतिबिंबित होने लगता है ।

वस्तुतः मिश्रजी ने प्रयोगवादी दौर में अपनी काव्य-यात्रा प्रगतिवादी जीवन-बोध से शुरू की थी । 'पथ के गीत' के बाद के काव्य संग्रह 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' में मिश्रजी में कुछ शिल्प-सजगता के दर्शन होते हैं । लेकिन उनकी यह शिल्प-सजगता उनके संवेदन और बोध को अच्छादित नहीं करती, उल्टे उसे निखारती है । अपने में रहकर अपने से परे जाने की, अनुभूति के साथ ही अनुभूति को जन्म देनेवाली वस्तुगत स्थितियों को रचना में समेटने की उनकी सहज प्रवृति ने मिश्रजी को कविता के साथ अन्य साहित्य-विधाओं की ओर बढने को प्रेरित किया है ।

अतः यह शोध-प्रबंध अध्ययन के माध्यम से युगीन परिस्थितियाँ, परिवर्तनकारी एवं विघटनकारी, रूढिवादी-सुधारवादी, प्रगतिवादी एवं कांतिकारी सामाजिक तत्वों के मूल में प्रवेशकर उनका उद्‌घाटन करने में सक्षम हो सकता है । जिससे निश्चय ही मिश्रजी की निष्ठा, इमानदारी का भी परिचय मिल सकता है । प्रस्तुत विषय के अध्ययन से मिश्रजी का सांकेतिक संदेश भी मुखर हो सकता है, जिसके माध्यम से वे, तत्कालीन पतनोन्मुखी कारणों से मुक्ति और उत्थानपरक तथ्यों से संबंध-स्थापन का पथ-निर्देशन करते प्रतीत होते हैं । मिश्रजी का प्रस्तुत प्रयास निस्संदेह उनको आदर्शवादी, मानवतावादी, समाजवादी, प्रगतिवादी, सुधारवादी एवं श्रेष्ठ कवि के रूप में सिध्ध करता है ।

प्रस्तुत विषय का महत्व

विश्व में प्रत्येक वस्तु का अपना महत्व होता है । इस दृष्टि से किसी विषय का शोधपरक अध्ययन तो और भी महत्वपूर्ण हो जाता है । वस्तुतः अध्ययन की प्रक्रिया ज्ञान से संबध्ध है । ज्ञान निश्चय ही मस्तिष्क को तर्क-वितर्क, सही-गलत, अच्छा-बुरा आदि के संदर्भ में नये आयाम प्रदान करता है ।

मिश्रजी के काव्यों में 'अनुभूति की अभिव्यक्ति' प्रस्तुत विषय समाज की तत्कालीन संपूर्ण मानसिकता को रेखांकित करता है । प्रस्तुत विषय के माध्यम से समाज का यथार्थ, प्रामाणिक, रोचक, कलात्मक चित्रण प्रस्तुत किया जाना सहज संभाव्य है । अतः परिवेश की विसंगति और विडम्बना का यथार्थ चित्र प्राप्त होता है, साथ ही वर्तमान युग की परिस्थितियों का अध्ययनगत उपलब्धि के रूप में मानवीय जीवनपरक मूल्यों, आदर्शों, संबंधों, मान्यताओं के परिपार्श्व में आशातीत उत्थान, प्रगति, परिवर्तन, परिष्कार भी अवश्यम्भावी है ।

समाज की परिस्थितियाँ, उत्थान, प्रगति, परिवर्तन, परिष्कार राष्ट्र के हितार्थ निश्चय ही एक महत्वपूर्ण युगान्तरकारी कदम है । प्रस्तुत विषय के अध्ययन का महत्व इस अर्थ में भी महत्वपूर्ण है कि इसके माध्यम से तत्कालीन युग की उस मानवोपयोगी सामग्री का मूल्यांकन, आकलन संभाव्य है, जो वर्तमानयुगीन परिस्थितियाँ एवं समाज हेतु अमूल्य निधि के रूप में सुरक्षित रखी गयी है, ताकि उसका उपयोग यथोचित ढंग से किया जा सके ।

वस्तुतः राष्ट्रीय अस्मिता और साहित्य का संबंध अत्यंत घनिष्ठ होता है । मानव जीवन की विभिन्न परिस्थितियाँ साहित्य सृजन की पृष्ठभूमि तैयार करती है और साहित्य राष्ट्र के नवनिर्माण व समृध्धि का मार्ग प्रशस्त करता है । प्रस्तुत विषय का अध्ययन इस अर्थ में भी महत्वपूर्ण है ।

प्रस्तुत विषय की शोध-सीमाएँ

प्रत्येक विषय के सीमागत आयाम विस्तृत होते हैं, लेकिन उसके शोधपरक अध्ययन के लिए कतिपय सीमान्त निश्चित कर लेना शोधार्थी के लिए अत्यंत ही आवश्यक-सा प्रतीत होता है, ताकि वह एक निश्चित परिक्षेत्र में प्राप्त तथ्यों के माध्यम से अपने प्रतिपाद्य तक पहुँच सके ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध का शीर्षक है - **'रामदरश मिश्र का काव्य : अनुभूति और अभिव्यक्ति'** इस विषय को विश्लेषित करने के लिए १२ कविता-संग्रहों का उल्लेख इस शोध-प्रबंध में किया गया है । अतः उनकी कविताओं के युगीन यथार्थ को ही प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया गया है । जिसमें ग्रामीण परिवेश संबंधी तथ्य,

महानगरीय जीवन संबंधी तथ्य, राजनीतिक तथ्य तथा नारी जीवन से संबंधी तथ्य का विश्लेषण किया गया है ।

प्रस्तुत विषय स्वतः ही रामदरश मिश्र के काव्य-संग्रहों में 'अनुभूति और अभिव्यक्ति' की परिसीमाएँ निर्दिष्ट करता है । इसके साथ ही स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वतंत्रता बाद के मानव परिवर्तन एवं विघटन, समाज, राष्ट्र, आदि की सीमाएँ भी दिग्दर्शित करता है । अतएव प्रस्तुत विषय के अंतर्गत स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य परंपरा के विकास के प्रकाश में, हिन्दी कविता की साहित्यगत विशेषताओं के परिपार्श्व में तत्कालीन भारतीय परिवार, समाज का यथार्थ, प्रामाणिक, विश्वसनीय, चित्रण का शोध-परक अध्ययन ही मेरे लिए प्रस्तुत विषय की सीमा-व्याप्ति है ।

पूर्ववर्ती, शोध-कार्य

इससे पूर्व रामदरश मिश्रजी के साहित्य पर जो शोध-कार्य हुआ है, वह इस प्रकार है :

१)	रामदरश मिश्र की सृजन यात्रा	-	डॉ. महावीरसिंह चौहान
२)	उपन्यासकार रामदरश मिश्र	-	सं. डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ, डॉ. प्रेमकुमार
३)	कथाकार रामदरश मिश्र	-	डॉ. सूर्यदिन यादव
४)	रचनाकार रामदरश मिश्र	-	डॉ. नित्यानंद तिवारी, डॉ. ज्ञानचंद्र गुप्त
५)	रामदरश मिश्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	-	डॉ. फूलबदन यादव
६)	रामदरश मिश्र की कहानियाँ	-	प्रा. अमी दवे
७)	रामदरश मिश्र के उपन्यासों में घर-परिवार	-	प्रा. डॉ. यशवंत गोस्वामी
८)	रामदरश मिश्र के उपन्यासों में नारी	-	प्रा. मनहर गोस्वामी

इन सब शोध-प्रबंधों में मिश्रजी के समग्र साहित्य पर शोध कार्य किया गया है । लेकिन मैंने अपने पूर्ववर्ती शोध-प्रबंधों से भिन्न दृष्टिकोण अपनाकर मिश्रजी के काव्य में 'अनुभूति और अभिव्यक्ति' का अनुसंधान करने का प्रयास किया है । विविध शोध-प्रबंधों एवं आलोचनात्मक ग्रंथों में मिश्रजी के काव्य विषयक सामग्री अवश्य मिलती है किन्तु मिश्रजी के काव्य-संग्रहों में अनुभूति की दृष्टि से गहराई से अनुसंधान करने का मेरा यह विनम्र प्रयास है ।

सामग्री संकलन

विषय चयन के पश्चात प्रश्न था शोध-विषयक साहित्यिक सामग्री प्राप्त करना । अहिन्दी भाषी छात्रों के लिए हिन्दी में शोध प्रबंध लिखना अति दुष्कर कार्य है । साथ-साथ शोध कार्य संबंधी सामग्रियों का संकलन करना तो अति दुरूह है । इस विषय में मैं बहुत चिंतित थी । सर्व प्रथम मिश्रजी के कविता-संग्रह ही अनुपलब्ध थे । उसमें डॉ. यशवंतभाई गोस्वामी का सहयोग मिला तो मेरा काम आसान हो गया । खास कर मैं डॉ. यशवंत गोस्वामी की आजीवन आभारी रहूँगी, क्योंकि जब भी मुझे किसी मार्गदर्शन की, किसी पुस्तकों की जरूरत पडी तब उन्होंने मेरी मदद की । पीएच. डी. की पुस्तकों के लिए सबसे पहले मिश्रजी से टेलिफोन पर सीधे बातचीत करके तथा पत्राचार के द्वारा संदर्भ ग्रंथों की सूची प्राप्त की । साथ-साथ लेखक (कवि) के औदार्य भरे व्यवहार से उन्हीं के द्वारा कुछ संदर्भ ग्रंथ प्राप्त हुए । कुछ कविता संग्रह स्वयं मिश्रजी ने भेजे तो मैं आश्चर्यचकित रह गयी । इतने बडे महान साहित्यकार की एक शोधार्थी के प्रति इतनी रूचि देखकर कोई भी छात्र धन्य हो जाता है । मेरे पति संजय गोस्वामी ने भी संदर्भ पुस्तकें प्राप्त कराने में मदद की । कविता संबंधी संदर्भ पुस्तकें के. एस. एन. कणसागरा महिला कॉलेज के ग्रंथालय, सौराष्ट्र युनिवर्सिटी ग्रंथालय तथा कणसागरा कॉलेज के हिन्दी के डॉ. श्री यशवंत गोस्वामी से प्राप्त हुई तो मेरा कार्य आसान बन गया । गुरूवर्य डॉ. दक्षाबहन जोशीने भी अपने कालेज के ग्रंथालय से पुस्तकें दिलवाई।

प्रस्तुत शोध-अध्ययन की विशेषताएँ

प्रस्तुत शोध-प्रबंध विषय अपने आप में कोई नया नहीं है, लेकिन इसके अंतर्गत जो खोजने का मेरा प्रयास है वह नवीन व मौलिक है । यहाँ पर रामदरश मिश्रजी के कविता-संग्रहों का अनुभूतिपक्ष और अभिव्यक्तिपक्ष का अध्ययन किया गया है । मिश्रजी की कविताओं में आने वाले विविध तथ्यों का, वर्ग-संघर्ष का, मानव की विषम परिस्थितियों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है । प्रस्तुत शोध में उनके काव्य का तटस्थ मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है । परिवर्तित परिवेश तथा विभिन्न साहित्यिक, सामाजिक प्रवृत्तियों के काव्यगत प्रभाव को भी रेखाकित किया गया है ।

मिश्रजी की कविताओं का आधार विस्तृत है । ग्रामीण और शहरी समाज की असंगतियों, विद्रुपताओं और वर्गीय स्वार्थ के चित्रण में उनकी प्रगतिशील द्रष्टि लक्षित की जा सकती है । प्रगतिशील रचना की एक विशेषता जन-संस्कृति के प्रति आकर्षण है ।

अगर इस शोधकार्य में मेरी निर्देशिका डॉ. दक्षाबहन जोशी तथा डॉ. यशवंत गोस्वामी का सहयोग न मिलता तो निश्चित रूप से यह कार्य इस रूप में हो पाना कठिन होता । उनकी गहरी समझ, विषय को आत्मसात करने की मेघा विचार-विमर्शगत

उदारता के कारण ही मैं कवि रामदरश मिश्र पर अपने विचार प्रकट कर पायी हूँ ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के अंतर्गत प्रस्तुत विषय का विभाजन, विश्लेषण, विवेचन एवं निष्कर्ष मेरे अपने हैं । कविता-संबंधी विभिन्न विश्लेषण यथा संभव पूर्वग्रहों से मुक्त होकर तटस्थ भाव से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है । यहाँ उच्च-मध्यम और निम्न तीनों प्रकार के वर्ग के लोगों का अपनी अपनी वर्गगत विशेषताओं के साथ चित्रण हुआ है ।

कृतज्ञता-ज्ञापन

कुछ विद्वानों का अभिमत है कि आभार-प्रदर्शन मात्र औपचारिकता है । लेकिन मेरे लिए तो यह आराधना है, जिसके माध्यम से इस शोधकार्य में जिन गुरूजनों, विद्वानों तथा आत्मीयजनों का प्रोत्साहन मिला हैं और जिनकी कृतियों से मुझे इस शोध-कार्य में सहायता मिली है, मैं अपने श्रध्धा-सुमन उन महानुभावों को अर्पित करना अपना परम धर्म समझती हूँ ।

सर्व प्रथम मेरी निर्देशिका डॉ. दक्षाबहन जोशी, हिन्दी विभागाध्यक्ष, कुंडलिया कॉलेज-राजकोट तथा श्रध्धेय डॉ. यशवंत गोस्वामी, हिन्दी विभाग, कणसागरा कॉलेज-राजकोट की मैं हार्दिक कृतज्ञ हूँ । इन दोनों महानुभावों की प्रेरणा, प्रोत्साहन तथा सक्रीय सहयोग एवं निर्देशन में इस शोध प्रबंध को मैं निश्चित समयावधि में पूर्ण कर पाई हूँ । इन दोनों महानुभावों ने लगातार मुझे आगे बढने की प्रेरणा एवं शक्ति प्रदान की है । अपना अमूल्य समय दे-देकर विषय संबंधी जिज्ञासाओं का निराकरण किया तथा विषय संबंधी महत्वपूर्ण जानकारी देकर अनजाने तथ्यों को उजागर किया ।

श्री रामदरश मिश्रजी स्वयं प्रस्तुत शोध-प्रबंध के प्राण हैं । उन्होंने अपना अमूल्य समय देकर स्वहस्ताक्षर में काव्य पंक्तियाँ देकर मेरा मार्ग प्रशस्त किया । उनके औदार्य के प्रति मैं श्रद्धावनत हूँ ।

मैं अपनी कॉलेज-स्कूल के सभी अध्यापक भाई-बहनों के प्रति भी आभार प्रकट करती हूँ, जिन्होंने समयाभाव के बावजूद मेरा सहयोग किया और परामर्शों से शोध कार्य को सरल बनाया । मैं अपनी सहेलियों के प्रति भी आभार प्रकट करती हूँ ।

मेरी इस सारस्वत साधना में मेरे परिवार का सहयोग न मिलता तो ? स्पष्ट है उपर्युक्त तमाम सुविधाओं के बावजूद मेरी यह साधना अधूरी रहती । परमादरणीय पू. सास-ससुर, माता-पिता, एवं मेरे जीवनसाथी संजय गोस्वामी ने हर तरह से मेरी मदद की । संजय गोस्वामी ने राजकोट की जिला लाईब्रेरी, लेंग लाईब्रेरी, युनिवर्सिटी लाईब्रेरी एवं अमरेली कॉलेज की लाईब्रेरी में से प्रस्तुत विषय के संदर्भ ग्रंथ ढूँढने में मेरी काफी सहायता की है । विवाह के पश्चात ससुराल में पीएच. डी. करना अत्यंत दुष्कर कार्य

होता है । परंतु मेरे पति ने मित्र बनकर मेरी सहायता की । इसलिए मैं अपने पति एवं परिवार की अत्यंत ऋणी रहूँगी ।

और अंत में मेरे आराध्य देव देवाधिदेव महादेव - जो मेरी नस-नस में मेरी हर धडकन में प्रेरणा स्त्रोत बनकर मेरे जीवनपथ को उजागर कर रहे हैं । इस परमतत्व को मैं कोटि-कोटि वंदन करती हूँ ।

दिनांक :-

राजकोट **विनीत,**

(कल्पना जी. गोस्वामी)

⚜ प्रबंध परिचय ⚜

❑ प्रथम अध्याय : रामदरश मिश्र व्यक्तित्व एवं कृतित्व :

प्रस्तुत शोध-प्रबंध प्राक्कथन एवं उपसंहार को छोडकर पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है ।

प्रथम अध्याय में मिश्रजी के व्यक्तित्व के निर्णायक तत्वों पर विचार किया गया है । किसी भी व्यक्ति की जीवन द्रष्टि उसके अपने भोगे हुए जीवन की उपज होती है । कवि कितना ही कृत्रिम साधन अपना ले परंतु उसका अतीत उसके चिंतन में अवश्य झलकता है । इस अध्याय में कवि के जन्म, परिवार, गुरूजनों, मित्रों एवं उनके व्यक्तित्व का परिचय दिया गया है । साथ-साथ उनके साहित्यिक प्रदान पर भी प्रकाश डाला गया है ।

व्यक्तित्व :

१) पारिवारिक जीवन-परिचय
२) जन्म तथा वंश परंपरा
३) शिक्षा-दिक्षा
४) विवाह और संतति
५) व्यावसायिक संघर्ष
६) बाह्य व्यक्तित्व
७) भीतरी व्यक्तित्व
८) जीवन की अन्य उपलब्धियाँ

कृतित्व :

१) काव्य संग्रह
२) कहानी संग्रह
३) उपन्यास
४) आत्मकथा
५) यात्रा-वृत
६) ललित निबंध
७) संस्मरण
८) समीक्षात्मक कृतियाँ

❑ द्वितीय अध्याय : आधुनिक हिन्दी काव्य : एक परिदृश्य :

द्वितीय अध्याय में कविता के विकास की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है । विषय में प्रवेश करते हुए हिन्दी साहित्यकारों के प्रारंभ से लेकर आज तक के काव्यों में मानव-जीवन की अनुभूतियाँ, परिस्थितियाँ, उसकी विविध समस्याएँ और साहित्यकारों के विविध द्दष्टिबिंदुओं की चर्चा की गई है । साथ ही कविता में मिश्रजी का स्थान भी निर्धारित किया गया है ।

१) काव्य की विभिन्न परिभाषाएँ :

- प्रवृत्यात्मक हिन्दी काव्य :
- कविता क्या है ?

- कविता के विषय :
- काव्य की मूल प्रेरणाएँ :

२) काव्य का भेद :

३) हिन्दी काव्य का विकास :

४) भारतीय कविता : हिन्दी कविता की प्रमुख धाराएँ :
- कविता का महत्व :

५) आधुनिक काल :

६) हिन्दी की आधुनिक काव्य-धारा :

७) आधुनिक हिन्दी कविता के चार युग :

१) भारतेन्दु युग

२) द्विवेदी युग

३) छायावादी युग :
- छायावाद के प्रमुख कवि और उनका काव्य
- छायावाद की प्रमुख प्रवृतियाँ :
  विषयगत प्रवृतियाँ, विचारगत प्रवृतियाँ,
  शैलीगत प्रवृतियाँ

४) प्रगतिवादी युग :
- प्रगतिवादी साहित्य की सामान्य प्रवृतियाँ :
- धर्म, ईश्वर एवं परलोक का विरोध
- पूंजीपति वर्ग के प्रति घृणा का प्रचार
- शोषित वर्ग के जीवन की दीनता एवं कटुता का चित्रण
- नारी के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण
- सरल शैली

८) हिन्दी का प्रगतिवादी साहित्य

९) प्रयोगवाद और नयी कविता

१०) प्रयोगवाद का सामान्य परिचय

११) प्रयोगवाद का आरंभ

१२) हिन्दी की प्रयोगवादी कविता की प्रमुख प्रवृतियाँ :
- बौध्धिकता
- यथार्थवादी वर्णन
- अहमवाद और घोर वैयक्तिकता

- जीवन के प्रति असंतोष और निराशा
- जगत की निस्सारता और जीवन के प्रति अनास्था
- असामाजिकता
- व्यंग्य और कटूकित
- काम, कुण्ठा तथा दुषित वृत्तियों का नग्न रूप में चित्रण

१३) प्रयोगवाद का उदेश्य

१४) हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण

१५) हिन्दी-काव्य में नारी-रूप :

- द्विवेदीयुगीन राधा
- प्रेमाख्यान की नायिका

१६) हिन्दी-काव्य में राष्ट्रीयता की भावना

- प्राचीन हिन्दी काव्य
- आधुनिक हिन्दी-काव्य में राष्ट्रीयता

१७) हिन्दी काव्य में विरह वर्णन

- कबीर की विरहानुभूति
- मीरां का विरह वर्णन
- सूर का विरह वर्णन
- जायसी का विरह वर्णन

१८) आधुनिक कवियों का विरह वर्णन

❑ तृतीय अध्याय : 'रामदरश मिश्र के काव्य का अनुभुति पक्ष' :

तृतीय अध्याय में मिश्रजी द्वारा लिखित कविताओं में आधुनिक युगीन विविध तथ्यों का अध्ययन किया गया है । जिसमें प्रकृति परिवेश के साथ-साथ ग्रामीण परिवेश संबंधी तथ्यों, महानगरीय जीवन संबंधी तथ्यों, राजनीतिक तथ्यों एवं नारी जीवन संबंधी तथ्यों का अनुशीलन किया गया है ।

१) प्रस्तावना

२) काव्यगत संवेदना :

- युग-जीवन की विषमता
- मध्यमवर्गीय लोगों के जीवन की आर्थिक विषमता

३) संवेदना का लोकधर्मी रूप :

- मिश्रजी के काव्य-मानवीय परिवेश

४) अनुभवों के छन्दःगीत

- पथ के गीत

५) संवेदना का सहज एवं गहरा सरोकार

- ग्रामीण परिवेश

६) प्रगतिशील अंतद्रर्ष्टि एवं रागात्मक निष्ठा :

७) सम-सामयिक विभिन्न समस्याएँ :

- नारी जीवन से संबंधित समस्याएँ :
  - नारी सौंदर्य और प्रणय
  - कवि के काव्य में प्रणय की आरंभिक दशा
- सामाजिक चेतना
- राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप
- राजनीतिक समस्याएँ
- मातृभूमि के प्रति आकर्षण

८) रामदरश मिश्र के काव्यों में अनुभव का आत्मपरक रूप :

- 'कंधे पर सूरज'

९) जीवन के विविध आयाम :

- 'दिन एक नदी बन गया'

१०) यथार्थ का नया धरातल :

- 'दिन एक नदी बन गया'

११) समकालीन जिन्दगी की वास्तविक अनुभूति का चित्रण :

- 'जुलूस कहाँ जा रहा है ?'

१२) गहरे मानवीय अनुभव और चेतना का काव्य :

- 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ'
- 'पथ के गीत'
- वैयक्तिक सुख-दुःख की चेतना

१३) सहज सौन्दर्य और यथार्थ का द्वन्द्व

१४) समकालीन यथार्थ की संश्लिष्ट पहचान :

- 'जुलूस कहाँ जा रहा है ?'

१५) आत्मा के शब्दों से कविता लिखने की कोशिश :

- 'आग कुछ नहीं बोलती'

१६) जलते हुए समय में हँसी के फूल उगाने की कोशिश :

- 'बारिश में भीगते बच्चे'

१७) आधुनिक कविता के संदर्भ में मिश्रजी की काव्यगत विशेषताएँ :

❑ चतुर्थ अध्याय : 'रामदरश मिश्र के काव्य का अभिव्यक्ति पक्ष' :

चतुर्थ अध्याय में मिश्रजी द्वारा लिखित कविताओं की अभिव्यक्ति का अध्ययन किया गया है । जिसमें भाषा, शैली, प्रकृति-चित्रण, छन्द, प्रतीक, बिम्ब, व्यंग्य आदि का निर्वाह हुआ है । मिश्रजी ने अपनी सभी कविताओं में जिस यथार्थ को प्रस्तुत किया है, उसका चित्रण भी इस अध्याय में किया गया है ।

१) प्रस्तावना

२) भाव-प्रणवता तथा आत्माभिव्यक्ति

३) सौन्दर्यमयी कल्पना

४) संगीतात्मकता

५) संक्षिप्त आकार

६) नया काव्य

७) यथार्थवादी द्रष्टि :

- आस्था और अनास्था

८) लम्बी कविता

९) गजल

१०) बिम्ब योजना :

- 'दिन एक नदी बन गया'
- 'कंधे पर सूरज'
- 'बारिश में भीगते बच्चे'
- 'जुलूस कहाँ जा रहा है ?'
- 'चूहे', 'इन्तजार', 'लोकराम'
  - शब्द बिम्ब
  - वर्ण बिम्ब

- समानुभूति बिम्ब
- व्यंजना - प्रवण सामासिक बिम्ब
- प्रसृत बिम्ब :
  - द्रश्य बिम्ब
  - द्रश्य-श्रव्य बिम्ब
  - श्रव्य बिम्ब
- स्पर्श एवं गंध सम्बन्धी बिम्ब

११) भाषाशैली १२) प्रकृति चित्रण १३) प्रतीक योजना १४) व्यंग्य १५) शब्द योजना १६) छन्द योजना १७) निष्कर्ष

❑ पंचम अध्याय : 'रामदरश मिश्र की काव्य-गत विशेषताएँ :

पंचम अध्याय में मिश्रजी की काव्य-गत विशेषताओं का एवं समकालीन जिंदगी का वास्तविक चित्रण, जीवन के विविध आयाम, शोषितों के प्रति सहानुभूति, शोषण का विरोध, नारीचेतना आदि विशेषताओं को प्रस्तुत किया गया है ।

१) प्रस्तावना
२) सामयिक सन्दर्भों की द्रश्य-योजना
३) वर्गहीन समाज की स्थापना
४) शोषितों के प्रति सहानुभूति
५) नारी-मुक्ति की भावना
६) शोषण का विरोध
७) बदलाव की चेतना
८) 'संबंध' और 'सही' का पक्षधर काव्य विवेक
९) निष्कर्ष

❑ उपसंहार :

अंत में रामदरश मिश्रजी के काव्यों का समग्र रूप से संक्षिप्त में मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है । साथ ही साथ उपसंहार प्रस्तुत किया गया है । प्रस्तुत शोध-प्रबंध के अंत में परिशिष्ट प्रस्तुत किया गया हैं ।

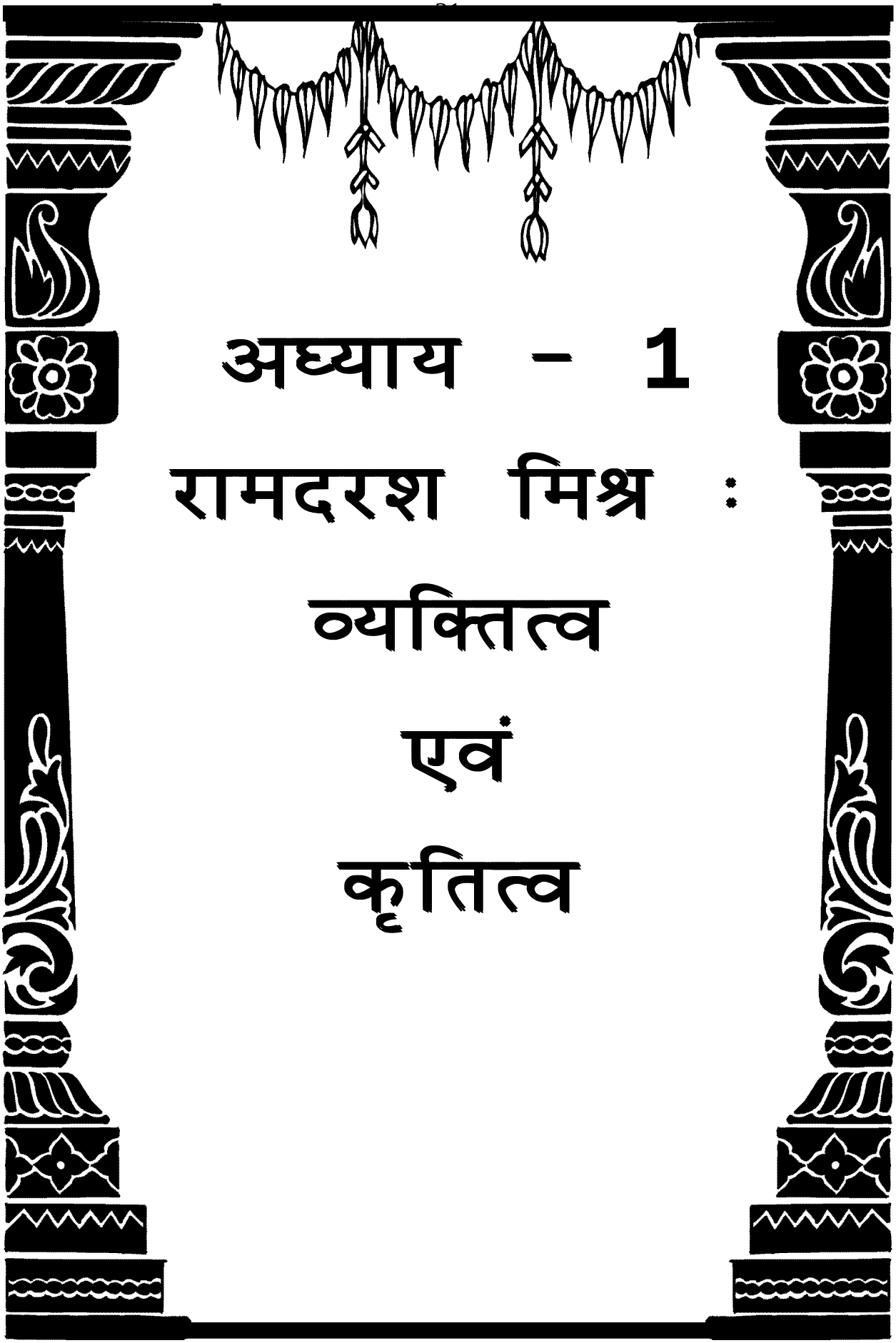

अध्याय - 1

रामदरश मिश्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

अध्याय - १

रामदरश मिश्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

अ. रामदरश मिश्र : जीवन परिचय :

- ❋ जन्म तथा वंश परंपरा :
- ❋ शिक्षा-दीक्षा :
- ❋ विवाह और संतति :
- ❋ व्यावसायिक संघर्ष :
- ❋ बाह्य व्यक्तित्व :
- ❋ भीतरी व्यक्तित्व :
- ❋ जीवन की अन्य उपलब्धियाँ :

ब. मिश्रजी का रचना-संसार :

- ❋ काव्य संग्रह :
- ❋ कहानी संग्रह :
- ❋ उपन्यास :
- ❋ आत्मकथा :
- ❋ यात्रा वृत :
- ❋ ललित निबंध संग्रह :

उपसंहार

अध्याय - १

रामदरश मिश्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

रामदरश मिश्र का जीवन-परिचय :

साहित्यकार का व्यक्तित्व उसकी साहित्यिक रचनाओं में समाविष्ट होता हैं क्योंकि वह जिस पारिवारिक वातावरण में रहता है, जिन सामाजिक परिस्थितियों में जीवन व्यतीत करता है, जिन राजनीतिक तथ्यों से भिज्ञ होता है तथा जिन आर्थिक समस्याओं का सामना करता है उनको ही साहित्य का आधार बनाता है । युगीन परिवेश के साथ ही उसके स्वभाव, आचरण व प्रवृतियों की झलक भी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उसके साहित्य में विद्यमान रहती है । साहित्य रचना में व्यक्तित्व जीवन तथा अनुभवों को व्यापक धरातल पर प्रस्तुत करता है । उसका साहित्यिक व्यक्तित्व उसके सामान्य व्यक्तित्व से प्रगाढ रूप से जुडा होता है । ''व्यक्तित्व शब्द से उन सभी बातों का बोध होता है, जो किसी व्यक्ति में है और जिन पर उसे अभिमान होता है । इसके अंतर्गत व्यक्ति की संवेदनाएँ, प्रवृतिर्यां, उद्वेग, प्रत्यक्ष ज्ञान, कल्पना, स्मृति, बुद्धि, विवेक आदि मानसिक शक्तिर्यां एवं शारीरिक बनावट, अवस्था और दूसरे व्यक्तित्व से संबंध आदि सारी बातें ज्ञात होती है ।''[१]

सामान्य जगत से प्रेरणा पाकर भी उसके व्यक्तित्व की छाप उसके साहित्य पर परिलक्षित होती है, जिसके आधार पर व्यक्ति विशेष का साहित्य पहचाना जाता है । अतः किसी भी लेखक के साहित्य की विशेषताओं से पूर्व उसके जन्म से लेकर अन्त तक की समस्त परिस्थितियों का ज्ञान अति आवश्यक हो जाता है । इसी कारण मिश्रजी की साहित्यिक विवेचना के पूर्व उनका जीवन परिचय अपेक्षित है ।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान बनानेवाले रचनाकारों में रामदरश मिश्रजी की उपस्थिति, गुण और परिमाण दोनों ही दृष्टियों से उल्लेखनीय हैं । कथा साहित्य विशेषकर उपन्यास और कविता में तो उनका योगदान निश्चय ही महत्वपूर्ण है, लेकिन आलोचना, निबंध, यात्रावृत, जीवनी लेखन में उनके कार्य को कम करके आंकना 'निहितार्थ' के बिना संभव नहीं ।

बहुमुखी प्रतिभा संपन्न रामदरश मिश्र का व्यक्तित्व हो या रचनाएँ, उनकी विशेषता ही यही हैं कि उनमें बनावट कम से कम है - सहज सादगी ही उनका प्राण है । भारतीय जीवन के अनेक प्रश्न और पीडाओं से उपजी उनकी हर रचना एक सीधे-सादे लेकिन संवेदना में डूबे जागरूक आदमी का सरल बयान है ।

उनके व्यक्तित्व, सोच एव लेखन के हर पहलू पर कई लेख हैं जिनमें उनके साहित्यिक योगदान का आकलन, विश्लेषण और मूल्यांकन का प्रयत्न है । मिश्रजी की

रचनाओं के क्रम में लगभग ५० वर्षों की हिन्दी साहित्य की गतिविधियों का आभास भी उनके साहित्य में मिलता है ।

कवि रामदरश मिश्र का रचनात्मक व्यक्तित्व अभावों, संघर्षों के ताप में तपकर निखरा है । इसलिए इनकी अनुभूतियों में प्रामाणिकता की विशिष्टता दिखाई पडती है । मिश्रजी ने जो कुछ लिखा है, वह समाज के अनुभव जगत से सीधे जुडा है । ग्रामजीवन से उनका सम्बन्ध सदैव बना रहा है, इसलिए वे ग्राम्य जीवन के चित्रण में वहाँ की जिंदगी के सहभोक्ता और भागीदार रहे हैं । परिणाम स्वरूप उनकी कविताओं में ग्राम्य जीवन के भोगे हुए अनुभवों का विशाल जगत उपस्थित है । असहाय व्यक्ति की छटपटाती आकांक्षाओं की पीडा तथा नियति की क्रूर विडम्बनाएँ उनकी आम जनता से सम्बन्ध कविताओं में बखूबी चित्रित है । उनकी प्रगतिशील कविताएं पीडित व्यक्ति को चित्रित करती हुई जन-जन की पीडा को चित्रित करती है । उनका नजरिया व्यक्ति तक ही सीमित न रहकर व्यक्ति के बडे समुदाय जन-जीवन तक विस्तृत है ।

मिश्रजी के व्यक्तित्व में कहीं कोई दीवार नहीं है । इन तक पहुँचना हर किसी के लिए सहज संभव है । उनका जीवन सहज जीवन है - धरती भेदकर फूटनेवाला सहज जीवन, जिसमें भरपूर शक्ति और गति है । वे अब भी युवा है । जीने के रस से ही काल को भेदा जा सकता है, इसे वे भलीभाँति जानते है । इसीलिए खूब जीते हैं । उनके मित्रों की संख्या बहुत बडी है, वे उनकी परवाह करते है । उपेक्षा करनेवालों की संख्या भी कम नहीं है, उनके बारे में नहीं बोलते ।

मिश्रजी की रचनाओं में अपने परिवेश के प्रति गहरा लगाव लक्षित होता है । परिवेशगत अनुभवों को उनकी मानवीय प्रगतिशील दृष्टि इस कलात्मकता से विन्यस्त करती है कि उनकी रचनाएं बिना किसी बड़प्पन के सामान्य मानव समाज का पक्षधर बन जाती है । यहीं इनकी रचनाओं की पहचान है और यही शक्ति भी ।

जिन्दगी को सही अर्थो में जीना पौरूष और बुद्धिमता की मांग करता है । मिश्रजी ने जीवन को जिस रूप में देखा, जाना और समझा है, उससे उनके व्यक्तित्व की रेखाएं स्पष्ट से स्पष्टतर होती गयी है । उनके लिए जीवन और कर्म 'जिजीविषा' का पर्याय है । उनका समग्र लेखन उनके जीवन को स्पष्ट करता है । गहन आस्था से मिलकर उनका व्यक्तित्व चेतन हो उठा है । जीवन को जीते हुए उसमें मिले अनुभवों को ज्यों का त्यों कलम में बाँध लेना मिश्रजी की उल्लेख्य किन्तु स्वभावगत विशेषता है । जीवन संग्राम के जीवन्त योद्धा, उदार अलमस्त मानव, प्रगतिशील विचारक, बहुश्रुत बहुपंडित अध्यापक लेखों, निबंधों, कविताओं, कहानियों, उपन्यासों आदि के सर्जक सबको मिलाकर जो व्क्तित्व बनता है, उनका नाम है - डॉ. रामदरश मिश्र ।

जन्म तथा वंश परंपरा

कवि, कथाकार मिश्रजी का जन्म श्रावण पूर्णिमा, १५, अगस्त, सन् १९२४ को गाँव डुमरी, जनपद गोरखपुर में हुआ । उनका जन्म एक मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ था । मिश्रजी के दो भाई और दो बहनें थी । बचपन अभावों में बीता । मिश्रजी के पिता का नाम श्री रामचंद्र मिश्र था । अच्छा खाना, अच्छा पहनना, घूमना-धामना, मेले करना, बाजार करना, रिश्तों में घूमना, बारात करना, चैताल और रामायण गाना यही उनकी दिनचर्या थी । शादी होने के बाद भी उनको जिम्मेदारी का बोध नहीं हुआ । मिश्रजी के बाबा शक्तिशाली और लठैत थे । लोग उनके प्रताप से थर्राते थे । लेकिन वे बहादुर थे, दुष्ट नहीं । उनकी उदारता भी उनकी शक्ति की तरह विख्यात थी । मिश्रजी के पिताजी गाने-बजाने के बेहद शौकीन थे, वे घुम-धाम कर गाया बजाया करते थे । बहुत ही अच्छे ढंग से गप्पें सुनाया करते थे, अच्छे बैठकबाज भी थे । यहाँ तक कि कोई भी उन्हैं आसानी से ठग लेता था । अपने पूर्वजों की काफी खेती-बाडी उन्हें विरासत में मिली थी । उनकी सैलानी वृति के कारण सारी जमीन अनुर्वर हो गयी थी, और आर्थिक तंगी के कारण कुछ खेत बंधक भी रखे जा चुके थे । इन्हीं कारणों से उन पर कर्ज का बोझ अधिक बढ गया ।

पिताजी के बारे में मिश्रजी का यह विचार है - ''मेरे पिताजी दुनियावी द्रष्टि से बहुत असफल व्यक्ति थे - बहुत भोले और भावुक थे । इसलिए जब कुछ कहीं दुःखद घटित होता था तो सोचते-विचारते नहीं थे, सीधे उससे जुड जाते थे । चाहे कहीं आग लगी हो, चाहे बीमार हो, पिताजी सबसे पहले पहुँच जाते थे और अपने भले-बुरे का ख्याल किए बिना दर्द मैं शरीक हो जाते थे ।''[२]

मिश्रजी की माँ का नाम कंवलपाती था । वह बहुत कर्मठ और परिश्रमी थीं । वह धार्मिक प्रवृति की थी । माँ के बारे में मिश्रजी का विचार है, उनमें कर्म और संगीत का अदभूत संतुलन था । उन्होंने एक और कर्म, स्वाभिमान और अपने संघर्ष से घर को शक्ति दी, गौरव दिया, दुसरी ओर अपने व्यक्तित्व के सांस्कृतिक आयाम द्वारा गाँव की औरतों का नेतृत्व किया, चाहे पूजा-पाठ हो, चाहे शादी-ब्याह हो, चाहे पर्व त्यौहार हो, हर जगह उन्हें सांस्कृतिक अनुष्ठानों के विविध विधानों का ज्ञान था, वह लोक कथाओं की ज्ञाता थी ।''[३]

मिश्रजी के व्यक्तित्व में ऐसे सीधे सरल और ग्रामीण माता-पिता के संस्कार हमें दृष्टिगत होते है । मिश्रजी के बडे भाई का नाम रामअवध मिश्र था, जो कि घर की गरीबी के अभिशाप से अंत तक संघर्ष करते रहे । बहुत अच्छे विद्यार्थी होने पर भी उन्हें मिडिल पास करने के बाद नौकरी की तलाश में जाना पडा । उन्होंने अपने परिश्रम के बल पर घर को गरीबी के अभिशाप से मुक्त किया । वे बहुत सीधे-सादे स्वभाव के थे । उन्होंने अपने भाई-बहनों पर अधिक नियंत्रण रखा । नियंत्रण इसलिए रखा कि

कहीं ये भी पिता की तरह शान-शौकत, गाने बजाने के शिकार न बन जाएँ । मिश्रजी के बडे भाई ने ही घर को गरीबी के अभिशाप से पूर्णतः मुक्त कराया था । जिसका प्रभाव मिश्रजी के बाल मन पर अत्यधिक पडा । मिश्रजी के शब्दों में - ''मँझले भाई श्री राम नवल मिश्र ज्यादा रंगीन तबीयत के थे और लापरवाह भी । इसलिए भैया के कोपभाजन ज्यादा बनते थे । मैं छोटा था, पढने में भी उनसे तेज था, उनसे अधिक संतुलित और संयत था और शौक-श्रृंगार में मेरी रूचि नहीं थी । इसलिए भैया शुरू से ही मुझे बहुत मानते थे ।''[४]

मिश्रजी को भाई से असीम प्यार मिला, उसी प्यार ने उन्हें उच्च शिक्षा दिलायी और जीवन के उच्चतम लक्ष्य की ओर बढने के लिए प्रेरित किया । आश्चर्य की बात यह रही कि उनके भाई साहब यद्यपि स्वयं रसिक वृति के नहीं थे, तथापि उन्होंने मिश्रजी के कवि मन को बहुत प्रोत्साहित किया । उन्हें हर सुविधा दी ताकि उनका कवि-मन किसी भी तरह कुंठित न हो । भाई साहब को उनके कवि होने का बहुत गौरव था ।

कहा जा सकता है कि यदि कवि कथाकार के संस्कार मिश्रजी ने माँ और पिता से प्राप्त किये तो उन्हें विकसित करने का प्रोत्साहन भाई साहब से ।

शिक्षा-दीक्षा

मिश्रजी की 'प्राईमरी' और मिडिल की प्रारंभिक शिक्षा गाँव बिशनपुरा में हुई । सन् १९३८ में चौदह वर्ष की उम्र में मिडिल की परीक्षा पास कर ली । सन् १९३९ में मिश्रजी उर्दू मिडिल पास करके ढरसी नामक गाँव में विशेष योग्यता की परीक्षा पास करने गये । सन् १९४० में उन्होंने विशेष योग्यता पास की । छुट्टीयों में ठीक से सोच भी नहीं पाये थे कि क्या करे, तब तक १९४२ की जुलाई आ गयी । विशेष योग्यता के बाद विशारद का नंबर था । राष्ट्रभाषा प्रेम भी सिर पर सवार था, इसलिए यही तय हुआ कि विशारद फिर, साहित्य रत्न करूँ । मिश्रजी के मन में एक धुंधला सा सपना था प्रोफेसर या संपादक बनने का । कई कठिनाईयों का मुकाबला करके विशारद पास कर लिया । सन् १९४३ में उन्होंने 'साहित्य रत्न' भी पास कर लिया । आगे बनारस में केम्ब्रिज एकादमी का एक प्राइवेट स्कूल था, जहाँ से मिश्रजी ने मेट्रिक पास किया । इसके बाद बनारस हिन्दु विश्व विद्यालय से उन्होंने सन् १९४८ में इंटर पास किया । तत्पश्चात १९५० में बी.ए., १९५२ में एम.ए. तथा १९५९ में पीएच.डी. की डिग्री प्राप्त की । उन्हीं दिनों हिन्दु विश्व विद्यालय में हजारी प्रसाद द्विवेदी आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए और मिश्रजी उनके सौभाग्यशाली शिष्यों में से एक थे । आचार्य द्विवेदीजी का शिष्यत्व पाने का उन्हें गर्व है, न जाने कितने ही स्तरों पर गुरूदेव द्विवेदीजी का प्रभाव उनके जीवन पर पडा हैं । एक लम्बी अवधि मिश्रजी ने बनारस में व्यतीत की । जब वे छात्र थे तब कई साथियों और गुरूओं का उन पर अधिक प्रभाव पडा ।

विवाह और संतति

मिश्रजी जब १७ वर्ष के थे, तभी उनकी शादी कर दी गयी । मिश्रजी जब इंटर प्रथम वर्ष की परीक्षा दे रहे थे, उसी समय उनकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया । उस पत्नी का मिश्रजी के हृदय पर कोई बडा आघात नहीं पहुँचा, क्योंकि उससे निकट का रागात्मक संबंध नहीं बनने पाया था, कोई साहचर्यमूलक कथा ही नहीं बनने पायी थी, जिससे कि वे गहरी तडप के साथ उसको याद करते । मिश्रजी की जब पहली शादी हुई थी, तब उम्र में छोटे थे । मिश्रजी की इच्छा-अनिच्छा कतई शामिल नहीं थी । दूसरी शादी के समय मिश्रजी चौबीस-पच्चीस साल के हो गये थे । इस समय उनके मन में एक ऐसी नारी की तसवीर थी जो सुंदर, शिक्षित और शीलवान हो तथा सही अर्थ में सहयात्री बन सके । सन् १९४८ में सरस्वतीजी से दूसरी शादी हुई, जिन्होंने उस समय दर्जा सात की परीक्षा दी थी । उनसे पाँच बच्चे हैं - तीन लडके और दो लडकियाँ ।

बडे लडके हेमन्त मिश्र है, जो नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा के विद्यार्थी रहे हैं । वे नौकरी नहीं करते है । फिल्म और टी.वी. के अभिनेता है । अंजलि तिवारी मिश्रजी की बडी पुत्री है । वे एम. ए. पीएच. डी. है । दूसरे लडके शशांक मिश्र है, जिन्होंने बी. कॉम. किया है और स्टेट बेंक ऑफ इन्डिया में काम करते हैं । तीसरे बेटे विवेक मिश्र है, जिन्होंने बी. कॉम. करके राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से अभिनय का कॉर्स पूरा किया और अब धारावाहिकों के अभिनेता है । सबसे छोटी संतान स्मिता वे हिन्दी से पी.एच.डी. है और खालसा कॉलेज दिल्ली में हिन्दी लेक्चरर है । विवेक और स्मिता बॉस्केट बाल के अच्छे खिलाडी भी है ।

मिश्रजी का दाम्पत्य जीवन बडा सुखमय है । उन्हीं के शब्दों में - ''मुझे ऐसी पत्नी मिली जो निहायत कर्मठ और मानवीय संवेदना युक्त है, जिसके नाते मैं निश्चित होकर इतना कुछ लिख-पढ सका और मेरे मन में निरंतर एक स्नेह संवेदना का भराव अनुभव होता रहा । मैंने अपने परिवार को जो एक देशी संस्कार देना चाहा, उसे देने में सफल रहा । यानी हमारे बच्चे महानगर में रहते हुए भी आधुनिकतावाद की गलाजत में नहीं फँसे है और हमारे परिवार में आधुनिकता का अकेलापन या अजनबीपन जैसी कोई चीज नहीं है । पूरे परिवार में खुलापन है, मैत्रिभाव है, छोटे-बडे का कोई आतंक नहीं है, एक अपनापन है ।''[५]

व्यावसायिक संघर्ष

बाल्यावस्था एवं छात्र जीवन में संघर्ष के बाद व्यवसाय के क्षेत्र में भी अनेक स्तर पर मिश्रजी ने संघर्ष का सामना किया । सन् १९५२ में मिश्रजी ने हिन्दू विश्व विद्यालय से एम. ए. की डिग्री ली । और वहीं अस्थायी प्राध्यापक हो गए । साथ

ही उन्होंने शोध कार्य भी प्रारंभ कर दिया । अस्थायी नियुक्ति से तात्कालिक राहत के साथ-साथ भविष्य की एक आशा भी बनी कि शायद मैं आगे स्थायी रूप से ले लिया जाऊँ । अप्रैल में नियुक्ति का समय पूरा हो गया । इसी स्थान पर इन्टरव्यू दिया, उम्मीद थी कि मिश्रजी ले लिए जायेंगे, लेकिन ऐसा नहीं हो पाया तो मिश्रजी मर्माहत रह गये । कुछ दिनों के बाद पंडितजी (आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी) ने बताया कि उन्होंने यु.जी.सी. से लेक्चरर की दो अस्थायी जगहें मांगी है । उन्हें विश्वास था कि जगहें मिल ही जायेगी । एक पर नामवरजी को और एक पर मिश्रजी को नियुक्त किया गया । यहाँ दो महिने तक आमदनी न मिली और उपर से यु.जी.सी. ने दो जगह में से केवल एक ही जगह की स्वीकृति दी तो नामवरजी के सामने मिश्रजी स्वयं हट गये । इससे पंडितजी का काम आसान हो गया ।

मिश्रजी मार्च १९५६ तक बनारस में ही रहे । साथ में पत्नी भी थी । उस बीच बी. एच. यु. के इन्टर कालेज में लेक्चरर की फिर एक जगह रिक्त हुई । लगा कि शायद इस बार काम बन जायेगा । परंतु इन्टरव्यू में वहाँ भी उनके सामने 'बट' लग गया । मिश्रजी बहुत दुःखी हुए । बी. एच. यु. में आशा न रहने पर पत्नी और बच्चों को पहले ही गोरखपुर भेज दिया । बाद में निराश होकर मिश्रजी भी गोरखपुर लौट आये । अनेक स्थानों पर आवेदन पत्र भेजा लेकिन मिश्रजी को निराशा ही हाथ लगी । एक ओर नौकरी की चिंता थी तो दूसरी ओर आर्थिक अभावों का संकट । अब तो मिश्रजी पर पत्नी के साथ-साथ दो बच्चों की भी जिम्मेदारी थी । उस समय बडौदा में सयाजीराव कालेज में आवेदन पत्र दिया । इन्टरव्यूं कोल आने पर वे एक आशा के साथ बडौदा के लिए रवाना हुए ।

१९५६ में बडौदा में महाराजा सयाजीराव कालेज में मिश्रजी की नियुक्ति हो गई । इस संबंध में मिश्रजी ने लिखा है कि ''बडौदा में नौकरी मिली तो मेरी जीवनयात्रा में एक निश्चिंतता आ गई और यह सोचकर आँखे भर आई कि अपने परिवेश ने मुझे अपने भीतर से निकाल फेंका और एक निपट अनजाने परिवेश ने प्यार से अपना लिया ।

१९५७ में अहमदाबाद के सेंट जेवियर्स कालेज से निमंत्रण आने पर मिश्रजी बडौदा छोडकर अहमदाबाद चले गए, जो कि उनके जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना है । इस शहर में आते ही दुःख और सुख के अनुभव साथी ही हुए । आते ही किसीने जेब काट ली । इस शहर ने पहला स्वागत इसी तरह किया किन्तु कंडक्टर ने उस स्वागत को काटकर इस शहर के स्वागत के दूसरे आयाम की रोशनी दिखाते हुए कहा कि बीच में उतरने की जरूरत नहीं, जहाँ आपको उतरना हो वहाँ उतरियेगा । साथ में टिकट भी दिया ।

अहमदाबाद उन्हें बहुत रास आ गया । यद्यपि प्रारंभ में मकान के सिलसिले में

बहुत कष्ट उठाना पडा । अहमदाबाद व्यावसायिक दृष्टि से बहुत आगे बढा हुआ होने के कारण हर क्षेत्र के लोग व्यवसाय के लिए यहाँ आते है । अपने क्षेत्र के लोगों को पाकर मिश्रजी को अत्यंत प्रसन्नता हुई । उनका संसार धीरे-धीरे बढने लगा, दुनिया बडी होने लगी । गुजरात के लोग और छात्र अपने प्रेमपूर्ण व्यवहार से लगातार मिश्रजी के कवि मन पर प्रभाव डालते रहे । मिश्रजी का इस नई जमीन से रागात्मक संबंध स्थापित हो गया ।

मिश्रजी सन् १९५९ में नवसारी चले आये, जहाँ उन्होंने एच.डी. गारडी कालेज में एक साल तक अध्यापन कार्य किया । सन् १९६० में मिश्रजी फिर अहमदाबाद आ गए । १९६० से १९६४ तक अहमदाबाद में ही रहे । सन् ६३-६४ में मिश्रजी की बढती हुई लोकप्रियता से इर्ष्यावश मिश्रजी के विरूद्ध एक षडयंत्र रचा गया - गुजरात से उन्हें उखाड फेंकने का । अपने भी पराये हो गए । उन्हीं के शब्दों में ''इसी समय मेरे विरूद्ध एक धमाका हुआ । हिन्दी वालों की राजनीति का गंदा और घिनौना रूप यहाँ भी दिखाई पडा । अब मुझे अंतिम रूप से लग गया कि गुजरात से मेरा दाना-पानी उठ गया है ।''[६] अपनी नियती की कल्पना कर मिश्रजी ने गुजरात के बाहर अनेक स्थानों पर आवेदन पत्र दिये । इसी सिलसिले में वे धुलिया गये वहाँ पार्टटाइम लेक्चरर शिप स्वीकार करने के लिए कहा गया तो मिश्रजी भदी-सी गाली देकर वहाँ से लौट आये । आगरा के केन्द्रिय हिन्दी संस्थान के इन्टरव्यू में भी गये । वहाँ से भी अपमानित होकर लौटे । नागपूर विश्वविद्यालय में आवेदनपत्र दिया । वहाँ नौकरी की संभावना थी किन्तु मिश्रजी को इन्टरव्यू लेटर ही नहीं मिला । दिल्ली युनिवर्सिटी के कई कॉलेजो में जगह निकली थी । अंत में डॉ. रमाकांत एवं नगेन्द्रजी के प्रयत्नों से दिल्ली में पी.जी.डी.ए.बी. कॉलेज में मिश्रजी नियुक्त हो गए । १० अगस्त १९६४ को मिश्रजी गुजरात छोडकर दिल्ली आ गये; जहाँ उन्होंने सन् १९५९ तक अध्यापन कार्य किया ।

मिश्रजी जब राजनीतिक दाँव पेच और गंदी शिक्षानीति के शिकार होकर इन्टरव्यू में पसंद न हुए इस संबंध में डॉ. महावीरसिंह चौहान ने कटाक्ष में लिखा है ''परिणाम वही हुआ जो होना था । कांकरिया झील के पास के उद्यान में इन्टरव्यू हुआ । तमाम पक्षियों में से एक हंस खोज निकालना था । बगुले को हंस मानकर चुना गया । जनता चिल्लाती रही, यह अन्याय है, सरासर अन्याय है । लेकिन इससे क्या फर्क पडता । बगुले का चुनाव थोडे ही रद हो सकता था । मिश्रजी गुजरात विश्वविद्यालय नहीं पहुँचे, यह तो हुआ ही, उन्हें गुजरात भी छोडना पडा ।''[७]

''गुजरात छोडते समय मिश्रजी सोच रहे थे - उन्हीं के शब्दों में - ''गाडी सरकी और आठ वर्षो की निवास भूमि गुजरात से मैं एक दर्द भरी विदाई लेकर दिल्ली की ओर जाने लगा । न जाने कितने सुख-दुःखों की अनुभूतियाँ मेरे भीतर उथल-पुथल मचा

रही थी और दिल्ली का एक अजनबी महानगरीय माहौल मेरे भीतर एक दहशत बनकर उभर रहा था । जहाँ छः वर्षो तक मैंने इतने शिष्य बनाये, इतने मित्र बनाये, वहाँ से मैं उनके किसी आयोजन के बिना दिल्ली आ रहा था ।''[८]

मिश्रजी के अच्छे छात्रों का एक वर्ग गुजरात में भी है । समग्र रूप से देखा जाय तो ये दिन उनकी जिंदगी के बहुत अच्छे दिन रहै । सामाजिक और साहित्यिक दोनों दृष्टियों से ।

सन् १९६९ में मिश्रजी दिल्ली युनि. में आ गए और सन् १९७१ में वे रीडर हुए, सन् १९८३ में प्रोफेसर हुए । ३१ जनवरी सन् १९८५ में वे सेवानिवृत हुए । फिर पाँच साल पुनर्नियुक्ती योजना के अंतर्गत वे इस पद पर सेवारत रहे । अंत में ३१ जनवरी १९९० को अवकाश ग्रहण किया ।

बाह्य व्यक्तित्व

''डॉ. रामदरश मिश्र उन लेखकों में से है जो दिल्ली में रहकर दिल्ली से दूर है । इतने साल दिल्ली में रहने के बाद वह अपने कुछ-कुछ 'ग्रामीण चेहरे' के साथ दूर से पहचाने जा सकते है । सीधी तनी हुई देह यष्टि, उलझाव वाला अकुंठ व्यक्तित्व और प्रफुल्लता एवं आत्मीयता भरी मुस्कान जो बात करने के लिए सभी को आमंत्रित करती है । इस लिहाज से दिल्ली ने उसे बहुत कम बदला है । न वह दिल्ली की चतुराई भरी छदम विनम्रता कभी अपना सके और न अपना ठेठ और बेलाग अंदाज ही छोड पाए । उनके व्यक्तित्व की मूल पहचान उनकी सरल सादगी की गंध है । उनमें बनावट कमसे कम है और सरल सादगी ही उसका प्रमाण है वे हडबडी या उतावली में शायद ही कुछ करते हों । सामने जो प्रस्तुत क्षण है, उसी को पूरे मन से जीते है । वे बडे लेखक से ज्यादा बडे भाई या परिवार के आत्मीय सदस्य की तरह लगते है ।''[९]

मिश्रजी ऊँचे, गौरववर्णी, तेजस्वी मगर सरल व्यक्ति है । रहन सहन में सादगी उन्हें पसंद है । रूढियों के घोर विरोधी है और प्रकृति से विनोदी है । दिल खोलकर हँसने और बात-बात में कहकहे लगाने की आदत है । स्वभाव से विनोदी, चुटकुलों के भंडार और मुक्तभाव से कहकहे लगाने वाले मिश्रजी की रूचियों का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष संदेश उनके साहित्य में देखा जा सकता है ।

अपने बाह्य व्यक्तित्व के बारे में मिश्रजी ने लिखा है कि - ''खाने, पीने, पहनने-ओढने में मैं काफी देहाती और अप्रयोगवादी हूं । बचपन में खाने-पीने की जो रूचियाँ बनीं, वे अब तक सुरक्षित है । वहीं अरहर की दाल, भात, रोटी, सब्जी, चटनी आदि । जब कभी किसी पाँच सितारा होटल में खाना पडा भूखा ही रह गया । वहाँ से छूटकर प्रायः किसी ढाबे पर गया हूं । मुझे मिठाइयों में अनाज की मिठाइयाँ ही

अधिक प्रिय हैं - यानी चावल का लड्डु मुझे रसगुल्ले से ज्यादा अच्छा लगता है । पीने में दूध-चाय पीता हूं, किन्तु बहुत नहीं । गन्ने का रस, दही की लस्सी और शर्बत भी बहुत प्रिय है । नया गुड अच्छा लगा है ।..... किसी भी नशे की लत मुझे नहीं है । बनारस में दस साल रहकर भी पान खाने की आदत नहीं डाल सका । पहनावा भी मेरा पारंपरिक ही है । यों तो मैं कोट-पेन्ट भी पहनता हूं, किन्तु धोती-कुर्ता ही मेरा प्रिय पहनावा है ।''[१०]

भीतरी व्यक्तित्व

मिश्रजी का बाह्य व्यक्तित्व जितना प्रभावशाली एवं आकर्षक है उतना ही भीतरी व्यक्तित्व उनके भीतरी-बाहरी व्यक्तित्व में कोई अंतर नहीं है । कथनी एवं करनी में जमीन-आसमान का अंतर रखनेवाले लोगों से उन्हें सख्त घृणा थी ।

मिश्रजी बचपन से ही संवेदनशील रहे हैं । शास्त्रीजी की मृत्यु से भरभराकर रो उठे थे । जहां अपने को वे छोटा अनुभव करते है या जिस कार्य से उन्हें संतुष्टि नहीं मिलती, उस कार्य से बचते है । किसी से कुछ कहा-सुनी हो जाये तो मिश्रजी बहुत अव्यवस्थित हो जाते थे और अपने आप से बात-चीत करने लगते हैं । उन्हीं के शब्दों में -

''किसी से कुछ कहा-सुनी हो जाते तो रात की नींद नहीं आती और मन घुम-घुम कर इसी बात पर आ जाता है कि झगडा क्यों हुआ ? किसकी गलती थी ? उसने मुझे ऐसा क्यों कहा ? भावुकता बचपन में ही मेरे गले पडी सो पडी रह गयी । लाख कोशिशों के बावजूद मैं मोटी चमडी का नहीं हो पाया । मैं ऐसे क्षणों में कोई भी कार्य नहीं कर सकता, सो भी नहीं सकता । सुख और दुःख दोनों का अतिरेक मुझे अप्रकृतिस्थ कर देता है ।''[११]

मिश्रजी स्वभाव से संकोची भी है । एक ओर तो वे लोग है, जो अपनी प्रथम उपस्थिति के समय ही अपनी सारी असली और नकली विशेषताएं एक अतिरिक्त चमक के साथ सामने वालों पर ऊंडेल देते हैं, दूसरी ओर वे लोग है, जो काफी दिन तक अपने साहचर्य में रहनेवालों पर भी अपने गुणों को खोल नहीं पाते, एक लंबा समय ही धीरे-धीरे उसकी परतें खोलता है । मिश्रजी उनमें दूसरी श्रेणी के लोगों के बीच आते हैं ।

मिश्रजी भीड-भाड या सभा सोसायटी से घबराते है । वे दूसरों को प्रभावित भी नहीं कर पाते हें । उन्हीं के शब्दों में -

''मैं बहुत हडबडी में, भीड-भाड या सभा सोसायटी में अपनी शक्ति का परिचय नहीं करा सकता, मैं वहाँ किसी को प्रभावित नहीं कर सकता इसलिए उनसे घबराता हूं । मैं अकेले में निश्चिंत बैठकर सोचता हूँ कि भीड में पूछे गये प्रश्न का यदि यह

उत्तर दिया होता तो कितना अच्छा होता, लेकिन अवसर चुकने पर पछताने से क्या फायदा और अवसर चुकते रहना मेरी नियत बन गई है ।''[१२]

मिश्रजी बाह्याडंबर या दिखावे से सदा दूर रहे है । वे कहते हैं कि मेरे भीतर देहात के तमाम संस्कार अभी भी बाकी है । ठठाकर हंसना मुझे अच्छा लगता है । मित्रों के बीच अपने मन को खोलकर रख देने में मुझे सुख मिलता है और जितना जानता और अनुभव करता उससे अधिक का दिखावा करने का उत्साह नहीं होता । दिन भर भटकना, संबंधों की तलाश करना, विशेष अभिप्राय से संबंध जोडते चलना और समय आने पर उन संबंधो का उपभोग करना मेरे स्वभाव में नहीं रहा । आत्मीयता के ठोस परिवेश में जीकर मैं भीतर से बहुत भरापूरा अनुभव करता हुं । आत्मीयता का यही ठोस परिवेश मित्रों के साथ भी रहा । मैंने बहुत संबंध नहीं बनाये, लेकिन जो बने वे बहुत मूर्त है ।

मिश्रजी का बाह्य जीवन जितना सीधा-सादा है, उतना ही उनका मन निर्मल एवं पवित्र है । मन में कोई ग्रंथी नहीं, कोई अहम् का भाव नहीं, वे दूसरों से बडी हार्दिकता से मिलते है । युवकों को वे अनेक प्रकार से प्रोत्साहित करते है । उनके स्वभाव में उदार भावना के साथ-साथ शील और सह्यदयता का सामंजस्य है । 'स्व' की अपेक्षा दूसरों की प्रशंसा करना या सुनना अधिक पसंद करते है । सत्य के प्रति सदैव जागृत रहते है ।

मिश्रजी के साथ अनेक लडके थे जो प्रायः रूमानी रंग के थे । वे छोटी उम्र में भी लडकियों की चर्चा किया करते थे । मिश्रजी कहते हैं कि मुझ में यौन भावना की जागृति बहुत बाद में हुई । लडके मुझे नीरस या संयत समझते थे इसलिए मुझसे कटते थे । महिला मित्रों के संबंध में मिश्रजी कहते हैं कि - ''मैं महिला मित्र नहीं बना सका । जब भी किसी नारी के संपर्क में आया कुछ ही दिनों के बाद एक अस्वाभाविकता सी महसूस होने लगी । उनके अतिरिक्त नारियता के दिखावे से मैं अप्रकृतिस्थ हो उठा । हां, जिन महिलाओं में मन का खुलापन दिखाई पडा वहाँ मैं ठहरा । यहाँ मैं नारी की चर्चा माँ, बहन, बेटी के रूप में नहीं, केवल समवयस्क साथी या प्रेमिका के रूप में कर रहा हूँ ।''[१३]

मिश्रजी को राष्ट्र एवं राष्ट्रभाषा के प्रति गौरव है । इसलिए ही वे हिन्दी माध्यम में पढे, हिन्दी के प्राध्यापक बने एवं अपनी लेखनी का माध्यम भी हिन्दी को बनाया । मिश्रजी ने अपनी साहित्ययात्रा द्वारा हिन्दी भाषा को गौरवशाली रूप प्रदान किया है । हिन्दी के विरूद्ध वे एक भी बात नहीं सुन सकते थे । एक दिन उनकी बेटी अंजु ने ही मिश्रजी से कहा ''पापा'' हिन्दी इज वेरी बैड लैंगवेज जब कानवेंटी शिक्षा का पहला तमाचा अपनी ही बेटी ने गाल पर मारा तो वे चौंक उठे । वे सोचने लगे । कानवेंटी परिवेश भोले-भाले बच्चों को अंग्रेजी को सभ्य भाषा मानकर अपनी माँ (हिन्दी) को

गाली देना न सिखायेगा तो और क्या सिखायेगा ।

हिन्दी के संबंध में मिश्रजी कहते हैं कि ''हिन्दी पूरे देश की राष्ट्रभाषा है, उसकी परीक्षाएँ पास कर लेने पर व्यक्ति सम्मानित भी होगा और अच्छी नौकरी में भी लग जायेगा । जो लोग हिन्दी का अपमान करते हैं, वे राष्ट्र और राष्ट्रभाषा के शत्रु हैं ।''[१४] मिश्रजी का राष्ट्रभाषा प्रेम, उनके साहित्य सृजन में व्यक्त हुआ है ।

जीवन की अन्य उपलब्धियाँ

स्वयं मिश्रजी ने अपनी उपलब्धियों के संदर्भ में लिखा है - ''मेरी और से कोई अनुपलब्धि नहीं है, यानी मुझे जो कुछ करना चाहिए था, वह मैं कर रहा हूँ, यानी अपनी शक्ति और इच्छा के अनुसार लेखन कार्य करना चाहा, किया और कर रहा हूँ । यह मेरी उपलब्धि है । उस किये को क्या मान्यता मिलती है, या मिली है, इस उपलब्धि से मेरा कोई वास्ता नहीं है, क्योंकि लोगों की रचनात्मक उपलब्धियों का निर्णय करनेवाले लोग राजनीतिक दलबंधी के शिकार हैं । इसलिए उस पर लेखक का तो वश नहीं है ।''[१५]

मिश्रजी की दूसरी उपलब्धि हैं, अच्छे परिवार की प्राप्ति । उन्हीं के शब्दों में - ''मैं उस मां बाप का बेटा हूँ जो गरीब तो थे लेकिन नेक इन्सान थे । अपनी गरीबी में भी वे अपनी नेकी के कारण समाज में सम्मानित थे । मैं उनकी संतान हुं, इस बात का मुझे गर्व है । तीसरी उपलब्धि मैं यह मानता हूं कि मुझे अपने मित्रों से एवं शिष्यों से प्यार मिला । यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है कि कभी भी इस हैसियत में नहीं आया कि किसी का कुछ बना-बिगाड सकू । या किसी को आतंकित कर सकुं । एक अध्यापक होने के नाते जब मैं अच्छे छात्रों को देखता हुं तो बडी तृप्ति का अनुभव होता है । ये छात्र मेरे बनारस के अध्यापकीय जीवन के आरंभ से लेकर आज तक के जीवन में फैले हुए है । गुजरात की आठ वर्षीय छोटी-सी अवधि में न जाने कितने छात्र निकले जो ज्ञात-अज्ञात रूप में अपना प्यार मुझे अर्पित करते रहे है । अपने छात्रों को निरंतर विकसित देखना भी एक उपलब्धि ही है । मिश्रजी की चौथी और महत्वपूर्ण उपलब्धि है उनका स्वास्थ्य । उन्हीं के शब्दों में - ''सामान्य रूप से स्वस्थ रहना भी एक उपलब्धि ही है । मैं मानता हूं कि मैंने एक स्वस्थ जीवन जिया है और अदृष्ट के वरदान के रूप में इसे अपनी उपलब्धि मानता हूँ । समग्रतः मैं अपनी तमाम सीमाओं को देखते हुए यह मानता हुं कि मुझे बहुत कुछ मिला ।''[१६]

अपने इस विचार को मिश्रजी ने अपनी एक लोकप्रिय गजल में भी व्यक्त किया है - यह गजल मिश्रजी के व्यक्तित्व एवं जीवन का आईना है । उनमें उनकी उपलब्धियाँ भी चित्रित हैं ।

''बनाया है मैंने यह घर धीरे-धीरे
खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे-धीरे,
किसी को गिराया, न खुद को उछाला
कटा जिदंगी का सफर धीरे-धीरे,
जहाँ आप पहुँचे छलांगे लगाकर
वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे,
पहाडों की कोई चुनौती नहीं थी
उठाता गया यों ही सर धीरे-धीरे,
गिरा मैं कहीं तो अकेले में रोया
उगा उसमें कोई शहर धीरे-धीरे,
न रोकर, न हंसकर किसी में उँडेला
पिया खुद ही अपना जहर धीरे-धीरे,
मिला क्या न मुझको, ए दुनिया तुम्हारी
मुहब्बत मिली है मगर धीरे-धीरे ।''[१७]

मिश्रजी का रचना-संसार :

मिश्रजी का साहित्य उनके जीवन के अनुभवों का आईना है । उनकी साहित्य यात्रा बचपन में सहज रूप से प्रारंभ हुई । उसके लिए अलग से विशिष्ट वातावरण एवं परिवेश की उन्हें जरूरत नहीं पडी । मिश्रजी के शब्दों में - ''मेरे लिए साहित्य एक सचेतन अवस्था में पूरी तैयारी के साथ किया गया सफर नहीं था, बल्कि बचपन की अबोध अवस्था में उपजी हुई एक बेचैनी थी, जिसे आसपास का जगत उत्तेजीत करता था ।''

मिश्रजी प्रारंभ में गाँव के ही स्कूल में पढते थे, जहाँ साहित्यिक माहौल होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था । किंतु वह अभावग्रस्त कछारांचल मिश्रजी के लिए वरदान सिद्ध हुआ । मिश्रजी ने अपनी भावुक्ता से उत्पन्न साहित्य अंकुर को सीधे अभावमय जीवन से ही सींचना शुरू किया । उनके साहित्यसृजन में परिवेश का अधिक योगदान रहा है । किन्तु उस साहित्य निर्माण में उनकी अभावमय घरेलू एवं सामाजिक स्थिति की प्रवृति को एवं परिवार को कम श्रेय नहीं है । उन अभावों ने अपने परिवेश एवं अपने देश के तमाम अभावग्रस्त लोगों की वेदना, अभिशाप और यातना से मिश्रजी की ओर उनके साहित्य को जोडा । बडे भाई का प्यार, माँ का वात्सल्य तथा पिताजी के सैलानी स्वभाव का मिश्रजी के साहित्य सृजन में कम योगदान नहीं है ।

मिश्रजी ने जो कुछ प्राप्त किया, उन्हें जो कुछ मिला, सब उसी अभावग्रस्त जमीन का दिया हुआ है । उन्हीं के शब्दों में - ''लेकिन मैं तो उस गाँव की बात कर रहा

हुं जिस में यह शक्ति थी और जहां से मैंने जीने की शक्ति, जीवन के प्रति आस्था और मूल्य प्राप्त किये है, प्रकृति से जूझने की शक्ति एवं उससे रसग्रहण की सहृदयता पायी है । यह मेरी ठोस जमीन है, जो मुझमें, मेरे लेखन में रही है, या मैं और मेरा लेखन जिस पर रहा है ।''

''रामदरश मिश्र बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार है । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में मिश्रजी का योगदान महत्वपूर्ण है । गुणवता और वैविध्य दोनों दृष्टियों से स्वातंत्र्योत्तर रचनाकारों में उनकी विशिष्ट पहचान है । कथा साहित्य विशेषकर कविता और उपन्यास में तो उनका योगदान निश्चय ही महत्वपूर्ण है । लेकिन आलोचना, निबंध, यात्रावृत और जीवनी लेखन में भी उनके कार्य को कम करके आंकना उचित नहीं । उनकी रचनाओं में परिवेश के प्रति गहरा लगाव है । उनकी रचनाएँ बिना किसी लेपन के सामान्य और अभिशप्त मानव समाज का पक्षधर बन जाती है । यह उनकी रचनाओं की पहचान है और यही उनकी शक्ति है ।

काशी विश्वविद्यालय में पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी को गुरू के रूप में पाकर मिश्रजी के साहित्यिक व्यक्तित्व में चार चाँद लग गये । मिश्रजी द्विवेदीजी के ऐसे शिष्यों में से एक है, जिनमें द्विवेदीजी के अपार स्नेह और प्रेरणा से काव्य एवं साहित्य-सृजन की चेतना फूली फली ।''[१८]

मिश्रजी मूलतः समाजवादी यथार्थवादी कवि है । उनके साहित्य के पीछे एक सामाजिक पीडा कार्य कर रही है । जिसका कवि ने बचपन से अनुभव किया है । इनकी सामाजिक विषमता तथा नारी जीवन से संबंधित समस्याओं का चित्रण पठनीय बन चुका है । भ्रम यह है कि आखिर कवि क्यों उलझता है, गाँव की जिन्दगी से ? क्यों इस प्रकार की तडप और बेचैनी का अनुभव करता है, वह उसके लिए ? शहर की आवाजों के बीच घिरकर भी उसकी स्मृतियों में गाँव की आवाजें क्यों गूंज उठती है ? क्यों ऐसा होता है कि शहर में रहकर भी गाँव की ओर जानेवाली पगडंडी को देखकर भावुक हो उठता है ? क्यों गाँव के फटेहाल लोगों को शहर की सडको पर पसीने से लथपथ दौडते देखकर उसके हृदय की धडकने तीव्र हो जाती है ? मिश्रजी इन सारी बातों को अपनी कविता द्वारा व्यक्त करते हुए कहते है कि -

किन्तु यह क्या ?
राप्ती तो उसी तरह अपनी कुंडली में
पूरे जवार को लपेटे पडी है
और उस गड्डर को सिर पर उठाये
पसीना पोंछती हुई एक विराट भीड
शहर की ओर मुँह करके खडी है ।''[१९]

काव्य संग्रह

काव्य मनुष्य की कुछ बहुत ही गहरी आंतरिक जरूरतों को पूरा करती है । इतना ही नहीं मानव-चेतना की अपेक्षाकृत अधिक गहरे स्तर पर प्रभावित करती है, उसका प्रभाव अधिक स्थायी भी होता है । यह प्रभाव केवल सूक्ष्म सौंदर्य बोध तक ही मर्यादित न होकर स्थूल सामाजिक सरोकारों तक व्यस्त दिखाई देता है । यदि ऐसा न होता तो निरंकुश राजकर्ताओं द्वारा कविता पर तरह-तरह की पाबंदियाँ लगाने की घटनाएँ नहीं बनती । उसमें कुछ खतरनाक किस्म की बातें कहने का अवकाश अवश्य रहता होगा । तभी न उसको लेकर एक विशेष प्रकार की सावधानी बढती जाती हैं । फिर भी लोगों की आम धारणा यही है कि कविता का यथार्थ के साथ वैसा गहरा रिश्ता नहीं होता, जैसा कि कल्पना या स्वप्नलोक के साथ होता है ।

डॉ. रामदरश मिश्र मूलतः कवि है । उनका उप्यास 'पानी के प्राचीर' और कहानी संग्रह 'खाली घर' प्रकाशित होने के पूर्व हिन्दी साहित्य जगत में एक कवि के रूप में अपनी पहचान बना चुके थे ।

मिश्रजी ने अपने लेखन की शुरूआत कविता से की । मिश्रजी की कविताएँ आधुनिक है । उनके बिंब अत्यंत संवेदनशील तथा इन्द्रियग्राह्य है । उनकी कविताएँ नयी सौंदर्य सृष्टि और अनुभूति जगाती है । उनकी कविताओं के मूल स्वर का जुडाव कविता की सतत विकासशील प्रगतिशील काव्यधारा से है । आजतक मिश्रजी के १२ काव्य संग्रह प्रकाशित हुए है ।

☞ पथ के गीत : (१९५१)

मिश्रजी का यह प्रथम काव्य संग्रह ग्राम परिवेश के प्राकृतिक सौंदर्य और मन की लालसा से भरपूर है । इसमें प्रणय, प्रकृति चित्रण, मानवता की सेवा तथा प्रेरणा स्वरूप नारी संबंधी कविताएँ संकलित है । इन कविताओं में नारी का मांसल रूप भी व्यक्त हुआ है । 'पथ के गीत' कवि की भावी सृजन चेतना का आरंभिक चरण है । मिश्रजी के किशोर मन के कच्चे-पक्के भावुक उद्‌गार इसमें है ।

☞ बैरंग बेनाम चिट्ठियां : (१९६२)

११ साल के लंबे अंतराल के बाद प्रकाशित इस काव्य संग्रह में प्रगतिवाद और नई कविता की प्रकृति प्रतिबिम्ब है । इसका मुख्य स्वर श्रृंगारिका होते हुए भी अन्य भावचित्र उपेक्षणिय नहीं है । इसमें अधिकांशतः प्रणय प्रकृति, मानवप्रेम, व्यक्ति चित्र, अंतर्द्वन्द्व आदि के दर्शन होते है । 'पथ के गीत' की अपेक्षा यह काव्य संग्रह अधिक परिपक्व है ।

☞ पक गई है धूप : (१९६९)

इस काव्य संग्रह की कविताओं को स्वयं कवि ने तीन भागों में विभक्त किया है । इसमें पहले विभाग में 'होने न होनें' की अनुभूति की कविताएँ है । दूसरे खण्ड

का नाम है 'समय जल सा' । तीसरा खण्ड 'मेरा आकाश' में राजनीति के दांव-पेच, देश की स्थिति, धार्मिक नेताओं के ढोंग एवं विषम स्थिति का चित्रण है ।

☞ **कंधे पर सूरज : (१९७७)**

इस काव्य संग्रह में कवि ने समाजवादी व्यवस्था, राजनीतियों द्वारा पूंजीपतियों का समर्थन और जन सामान्य की उपेक्षा पर खेद व्यक्त किया है । साथ-साथ ग्रामीण समस्याओं, पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण, क्रांति, सर्वहारा वर्ग की चेतना, सामाजिक विसंगतियों, व्यक्तिगत अनुभूतियों, शोषण एवं राजनैतिक व्यवस्था में जन सामान्य के अस्तित्व के संकट का चित्रण है ।

☞ **दिन एक नदी बन गया : (१९८४)**

इसकी अधिकांश कविताएँ जनवादी रचना का प्रतिनिधित्व करती है, जो जनता की जिन्दगी के बीच से उगती हुई उसकी आशाओं, आकाक्षाओं तथा उसके स्वप्नों एवं संघर्षो को वाणी देता है । सामाजिक विद्रुपता, राजनीतिक भ्रष्टाचार, पूंजीवादी शोषण आदि के प्रति इसमें कवि का आक्रोश प्रकट हुआ है । सामाजिक प्रतिबद्धता इन रचनाओं की विशेषता है ।

☞ **मेरे प्रिय गीत : (१९८५)**

इसमें कवि के किशोरावस्था में लिखे गये भावुक गीतों का संग्रह है । उनके गीतों का सुख-दुःख सीधे-सीधे अपने प्रेम पात्र को निवेदन करते हैं । बीच में न कोई अवधारणा आती है, न छला उनमें चित्रात्मकता एवं आत्मीयता है । इन गीतों का एक परिवेश है, वह परिवेश कवि का ही नहीं हमारा भी निकट का परिचित है । इसमें विरह और मिलन की अनुभूतियाँ है ।

☞ **बाजार को निकले हैं लोग : (गजल) (१९८६)**

इस गजल संग्रह में व्यक्ति, समाज और उनकी असंगतियों को दिखाया गया है और उन पर प्रहार किया है । इनमें कवि की आस्थावादिता एवं समाजवादी द्रष्टि स्पष्ट हुई है । जंगलों का विषय इस द्रष्टि से काल्पनिक न होकर यथार्थ है । यथार्थ जीवन की कटुता और तीखापन इसमें अभिव्यक्त हुआ है । कवि अपनी आस्थावादी द्रष्टि के कारण प्रतिकुलता में भी अनुकूल बनता है ।

☞ **जुलूस कहाँ जा रहा है : (१९८९)**

इसमें मिश्रजी की सामाजिकता का एक नया रूप दिखाई देता हैं । देश के सामान्य आदमी की नियती के साथ कवि ने स्वयं को जोड दिया है । अभावों एवं चेतनाओं को उभारने के साथ-साथ मिश्रजी ने उसकी पीडा के मूल स्त्रोतों की ओर निर्देश भी किया है । कवि की इन रचनाओं में उदासी और तनाव के बीच टूटते संबंधों की पीडा हृदय को स्पर्श कर जाती

है । इसके अलावा (९) रामदरश मिश्र की प्रतिनिधि कविताएँ (१०) आग कुछ नहीं बोलती (११) शब्द सेतु (१२) बारीस में भीगते बच्चे - आदि कृतिर्यां प्रकाशित हुई हैं ।

कहानी संग्रह

रामदरश मिश्र एक भावुक कवि होने के साथ-साथ अच्छे कहानीकार भी है । उनके अनेक कहानी संग्रह प्रकाशित हुए है । उनकी अधिकांश कहानियां संस्मरणात्मक रूप में लिखी गई है । उनकी कहानियों में व्यक्त अनुभव उनके स्वयं के जीवनानुभव है । मिश्रजी की कहानियां वस्तुतः जीवन की हिस्सेदारी की कहानिर्यां हैं । इसलिए मिश्रजी की कहानियों में यथार्थ का जो रचनात्मक बिंब उभरता है, उसमें जीवन सत्यों का ही नहीं संभावनाओं का संकेत भी है । मिश्रजी कवि होने के साथ-साथ आत्मीय अनुभवों के कथाकार भी है । उनकी कहानियों मे भी काव्यात्मकता का प्रभाव है । गांव से शहर की यात्रा ही मिश्रजी की कहानी यात्रा है । उनकी कहानियों में शहरी लगाव के साथ-साथ गाँव भी अटूट-रूप से जुडा हुआ है । अपने कछारांचल के सारे अभाव, विडंबना, बाढ, आघात एवं जिजीविषा के अनंत चित्र उनकी कहानियों में उभरे है ।

निम्न मध्यमवर्गीय जीवन में व्याप्त रूढियों, विसंगतियों एवं आर्थिक संकट से उत्पन्न विवशताओं, पारिवारिक और सामाजिक संबंधों में आये तनावों और स्वार्थपरता को मिश्रजी ने अपनी कहानियों में प्रतिबिंबित किया है । आर्थिक तंगी से उपजी इन निम्न मध्यमवर्गीय मजबूरियों को आधार बनाकर मिश्रजी ने अनेक कहानिर्यां लिखी है ।

☞ **<u>खाली घर</u> : (१९६८)**

इसमें १९६० के बाद की कहानिर्यां संग्रहित है । उनमें से अधिकांश कहानिर्यां 'धर्मयुग' ओर 'सारिका' में आ चुकी थी । ये कहानिर्यां टूटती सामाजिक धारणाओं, मूल्यों, स्वार्थवृति को उभारने के साथ ही शहरी और ग्रामीण मानसिकता के द्वन्द्व को भी उद्‌घाटित करती हैं ।

☞ **<u>एक वह</u> : (१९७४)**

ये कहानिर्यां शोषक और शोषित के रिश्तों की पहचान कराती है तथा शोषित वर्ग के जीवन की गरीबी, अभाव और संघर्ष के अनुभवों से परिचित कराते हुए पाठकों को उसके मानवीय अधिकारों का बोध कराती है । सभी कहानियों में मुख्य आयाम आर्थिक विषमता का है । इसके साथ राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतनाएँ भी अटूट रूप से जुडी हुई है ।

☞ **<u>दिनचर्या</u> : (१९७९)**

यह कहानी संग्रह गरीबी, पीडा, बेबसी, सामाजिक ढोंग-पाखंड, मानव की मानसिक शारीरिक वेदनाएँ, वात्सल्य तथा गृह से टूटकर भटकती एवं असामाजिक तत्वों

से जूझती नारी आदि की कथा से जुडे भारतीय समाज का यथार्थ दस्तावेज है । कहीं लारी खिंचने वाले भूख से पीडित मजदूर पति-पत्नी का चित्र हैं तो कहीं कर्ज से लदे मिल मजदूर की दर्दनाक कथा है ।

☞ **<u>सर्पदंश</u> : (१९८२)**

जमीन पर रेंगते सांप के विष को तो दवा या मंत्र से दूर किया जा सकता है, पर समाज में इधर-उधर स्वच्छंद घूमते आदमीनुमा सांपों का इलाज अकेले आदमी के पास नहीं है । ऐसे सांपों को कुचलने, उनसे छुटकारा पाने तथा उनके विष को दूर करने के लिए शक्ति संचय के साथ संगठित होने की आवश्यकता है । मिश्रजी ने कहानी में ऐसे लोगों की आवश्यकता का अनुभव किया है जो शोषित की इस समस्या को एक आंदोलन का रूप देकर उन्हें जमींदारों, प्रधानों तथा समर्थ लोगों के अत्याचारों से बचा सके । उसीसे जन चेतना पैदा की जा सकती है ।

☞ **<u>बसंत का एक दिन</u> : (१९८३)**

यह मिश्रजी की लंबी कहानियों का संग्रह है । इन कहानियों में कथा का फलक और समय का अंतराल कहानी के समय से अधिक फैला हुआ है । इसमें एक अधूरी कहानी', 'अकेला मकान', 'आखिरी चिट्ठी', 'पराया शहर', 'मुर्दा मैदान', 'खंडहर' आदि कहानिर्यां संग्रहित हैं ।

उपन्यास

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य को जिन साहित्यकारों ने समृद्ध किया और दिशा दी है उनमें रामदरश मिश्र का महत्वपूर्ण स्थान है । मूलतः उनकी कृतियों में नये मूल्यों के अन्वेषण की छटपटाहट है । जिन संस्कारों को लेकर मिश्रजी ने प्रारंभ में लेखनी उठाई ये गांधीवादी रहे, परंतु समय के साथ उनका अर्थहीन अंश झडता गया और संप्रति गांधीवाद, समाजवाद और आधुनिकता के योग को कथाकार रामदरश मिश्र के समकालीन उपन्यासकार की पहचान के रूप में रेखांकित किया जा सकता है । सन् १९६० से लेकर १९९६ के बीच प्रकाशित मिश्रजी के १२ उपन्यासों में बदलते समय के साथ अभिव्यक्ति के स्तर पर जो वस्तु कभी नहीं बदली है, वह है उसकी गहरी लोक सम्पृक्ति । इसीने उपन्यासकार को जटिल, गहन और अंतर्मुखी होने से बचाया है और कृतियों में जो जीवंत सहजता आई वह पाठकों के पक्ष में पडती है । मिश्रजी को जीवन का व्यापक और वैविध्यपूर्ण अनुभव प्राप्त है । जब कहानियों के सीमित दायरे में उसका उभरना असंभव हो गया, तो उपन्यास लेखन उसका माध्यम बना । कथाकार मिश्रजी का हर एक उपन्यास अपने पीछे एक लघु उपन्यास छोड जाता है ।

अपने उपन्यासों में लेखक ने स्वतंत्रता पूर्व से लेकर आज तक के भारतीय जीवन, विशेष रूप से पूर्वी उत्तर प्रदेश के जीवन के बदलाव को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया

है । मिश्रजी ने इन उपन्यासों में भारतीय समाज के लगभग सभी वर्गो को उनकी विशेषताओं के साथ चित्रित करने का प्रयास किया है । अपने पहले उपन्यास 'पानी के प्राचीर' (१९६०) के साथ रामदरश मिश्र ने हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रवेश किया ।

मिश्रजी के अनेक उपन्यास विभिन्न विश्वविद्यालयों में पाठयक्रम में चल रहे हैं । 'आकाश की छत' सौराष्ट्र युनि. में १९९८ तक था । गुजरात युनि. में उनका एक उपन्यास 'बिना दरवाजे का मकान' आज भी पाठ्यक्रम में है । मिश्रजी ने आज तक ११ उपन्यास लिखे है । इनमें कुछ लघु उपन्यास है, तो कुछ दीर्घ उपन्यास हैं, तो कुछ आँचलिक उपन्यास भी है । गुजरात में ८ वर्ष रहने के कारण गुजरात की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर दो उपन्यास 'आदिम राग' और 'दूसरा घर' लिखे है । उनके सभी उपन्यासों में ग्रामीण एवं शहरी जीवन का यथार्थ चित्रण है ।

मिश्रजी के ४ लघु उपन्यासों का गुजराती अनुवाद डॉ. यशवंत गोस्वामी (कणसागरा महिला कालेज - राजकोट) ने किया है । जो नारीं संबंधी विविध समस्याएँ प्रस्तुत करते है । ये उपन्यास है (१) आदिम राग (२) बिना दरवाजे का मकान (३) रात का सफर (४) थकी हुई सुबह ।

☞ **<u>पानी के प्राचीर</u> : (१९६१)**

मिश्रजी का यह पहला उपन्यास 'पानी के प्राचीर' अनेक द्रष्टियों से बहुत महत्वपूर्ण है । उपन्यास का गांधीवादी किशोर नायक नीरू अत्याचार और अन्याय का पूरी शक्ति के साथ विरोध करता चित्रित हुआ है । मिश्रजी ने उसके चरित्र को भरपूर प्रकाश देने के लिए उसके विरोधी महेश की सृष्टि की है जो आवारा है और दल बनाकर उसे परेशान करता है । उपन्यास में स्वतंत्रता पूर्व की प्रतिगामी शक्तियों को मिश्रजी ने स्पष्टता के साथ चित्रांकित किया है । गाँव का मुखिया सबको लडाता है । थानेदार का आतंक गाँव पर छाया हुआ है । जमींदार गजेन्द्रसिंह गाँव के लोगों का भीषण शोषण करता है । ज्ञाति से बहिष्कृत बैजनाथ बिंदिया चमाइन को लिए घूमता है । बिंदिया गाँव के सारे लडकों को चमाइन बना रही है । इन समस्त शक्तियों के ऊपर अंगरेजी राज है, जिसके विरोध में 'पानी के प्राचीर' थरथरता चित्रित हुआ है । संपूर्ण उपन्यास में ठेठ ग्रामांचल है ।

☞ **<u>जल टूटता हुआ</u> : (१९६९)**

'जल टूटता हुआ' में प्रेमचंद की परंपरा उत्कर्ष पर पहुँची है, परंतु उसकी मूल पकड आधुनिक है । उसमें गांधीवाद तथा समाजवाद के छोर परस्पर मिलते हुए चित्रांकित है । कृति का मुख्य पात्र सतीश गांधीवादी है परंतु उसके पास प्रगतिशीलता का विरोधी रंग नहीं है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय जीवन में एक व्यापक ह्रास और गिरावट का दौर आता है । वह ग्राम्य एवं शहरी जीवन को समान रूप से छूता है । सरकार के सारे विकासी प्रयत्नों के बावजूद गाँव टूट रहे है । उपन्यास में यही केन्द्रीय पीडा है ।

'जल टूटता हुआ' में विद्रोह है पर वह धधकता हुआ नहीं, अभी धुँधुआती स्थिति में है । उपन्यास में तीन कुँवारी कन्याएँ है - गितवा, पार्वती और शारदा । गितवा के लिए मास्टर वर ढूंढने जाते हैं - दहेज देने की स्थिति में न होने के कारण उसकी शादी नहीं हो पाती । ऐसे ही कारणों से पार्वती की शादी नहीं हो पाती । पार्वती जब एक चमार को अपना शरीर सोंपती है, तो ब्राह्मणों का खून खौल उठता है । शारदा अपने भीरू अध्यापक पाठकजी से उलझी है । इन सवर्ण कन्याओं के समानांतर हीन जाति की कन्याएँ बदमी, फूलवा और डलवा को कृति में इस कोण से रखा गया है कि मूल्य विद्रोह के आयाम स्पष्ट हो सकें । उपन्यास में नैतिकता और देह-पवित्रता का नारा अर्थहीन मालूम पडता है ।

☞ **<u>आदिम राग (बीच का समय)</u> : (१९७०)**

गुजरात की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर लिखा गया यह उपन्यास प्रोफेसर शील और उसकी छात्रा रीता के प्रेम-काम संबंध की कथा को मनोवैज्ञानिक आधार बनाकर संयत और गंभीर स्तर पर व्यक्त करने का एक सफल प्रयास है । प्रायः गुरू शिष्या के सेक्स आकर्षण की संभावना से इनकार ही होता रहा है । भले ही यथार्थ में स्थिति बिल्कुल विपरीत ही क्यों न हो । 'बीच का समय' इस संबंध पर नवीन पृष्ठभूमि में लिखने-सोचने का मार्ग प्रशस्त करता है । अनमेल विवाह का शिकार शील दांपत्य जीवन के सुख को कभी नहीं भोग पाया था । इसलिए शिष्या रीता की जरा सी आत्मीयता उसे अधिक आकर्षित करती है । रीता को भी शील बहुत अच्छा लगता है । दोनों में समान आकर्षण है । शील को रीता की आवश्यकता कई रूपों में अनुभव होने लगती है । किंतु उस आकर्षण के पीछे दोनों की मानसिकता में पर्याप्त अंतर है । एक दिन शील रीता को अपनी बाहों में लेकर उसके ब्लाउज के बटन खोलने में और चुंबन लेने में सफल हो जाता है । रीता भी इस प्रकार के प्रयास का विरोध नहीं करती । रीता शील के साहचर्य भोग से तृप्त है जब कि शील रीता के साथ शारीरिक संबंध स्थापित करना चाहता है तो रीता शील से अलग हो जाती है । रीता द्वारा किया गया विरोध उसे पश्चाताप की आग में जलाता है । शील और रीता के मानसिक संघर्ष को उभारते हुए लेखक ने प्रेम के शारीरिक और भावनात्मक रूप का संक्षिप्त एवं गंभीर विश्लेषण किया है । लघु आकार का यह रोमेंटिक उपन्यास हैं ।

☞ **<u>सूखता हुआ तालाब</u> : (१९७२)**

'सूखता हुआ तालाब' आंचलिक उपन्यास है, जो गाँव की टूटती जिंदगी का प्रतीक है । कथा का मुख्य केन्द्र है बिरादरी का भोज-भात । इसे लेकर ही गाँव में दल बनते-बिगडते हैं । इसमें अच्छे आदमियों का दल पीडा झेलता है और दूसरा दल भोज-भात की आड में अपना जाल फैलाकर दूसरों को पीडित एवं बदनाम करता है । दोनों के टकराव में गाँव की लूटती हुई लाज की अभिव्यक्ति न चाहते हुए भी लेखक

को करनी पडती है । लडकियो को अवैद्य गर्भ रह जाते है । चमारों की लडकियों से अधिक छिनाल सवर्णों की लडकिर्यां सिद्ध होती है । अनैतिक और अतिचारी लोग संगठन के बल पर दहाडते है और पीडित सभ्य लोगों का गाँव में रहना कठिन हो जाता है । गाँव की इसी गिरावट और पीडा को कथाकार ने 'सूखता हुआ तालाब' में कला की कलम से उकेरा है ।

☞ **<u>अपने लोग</u> : (१९७६)**

'अपने लोग' शीर्षक व्यंग्यात्मक है । जो अपने समझे जाते है वे काफी घटिया, स्वार्थी और कुटिल है । सत्य और न्याय के लिए संघर्षरत कथा नायक प्रमोद टूक-टूक होकर निराश के घने अंधकार में डूब जाता है और कृति पर यथार्थ की गहरी चोट उभर आती है । आधुनिकता, स्वातंत्र्योत्तर मानसिकता के विविध जटिल सामाजिक स्तरों की पहचान 'अपने लोग' में सार्थकता के साथ उभरी है । उसमें एक संपूर्ण परिवेश की इकाई है । जिसमें गोरखपुर का पिछडा आंचल गाँव गृह से संबंध, कॉलेज का जातिवाद तथा राजनीति, नर्स से लेकर चमाइन तक के रोमांस, युवा पुत्र पवन, शोषित अध्यापक, डॉ. सूर्य, एम.एल.ए., मजूरिन फूलवा, जमींदार सभी हैं ।

☞ **<u>रात का सफर</u> : (१९७६)**

गोरखपुर से बनारस वाला वह 'रात का सफर' एक नारी की ६ वर्ष की काली रात की पीडा का जीता जागता दस्तावेज है । ऋतु का यह 'रात का सफर' उन सारी लडकियों के सफर की कहानी है जिन्हें विवाह के पश्चात सुहागरात भी ननदो के साथ काटनी पडती है और उसका पति बाद में भी कभी उसके पास नहीं आता जो किसी और लडकी से प्यार करता है । एक साँस में पढने योग्य यह उपन्यास पूर्वांचल एकस्प्रेस की गति के समान तेज है । आत्मकथा शैली में डॉ. को संबोधित कर प्रायः पूरी कथा ऋतु द्वारा कहीं गयी है । पिता-पुत्री के सफर की यह उनींदी रात पाठकों को अनेक स्तर पर छूती हुइ चलती है । लेकिन यह उपन्यास नारी की व्यथा-कथा बनकर नहीं रह गया है । लेखक की आधुनिक और विद्रोही द्रष्टि ने नारी चरित्र का एक नया आयाम उद्घाटित कर उसकी अस्मिता की रक्षा की है । उसे ताकत दी है ।

☞ **<u>आकाश की छत</u> : (१९७९)**

प्रस्तुत उपन्यास में कथा नायक यश के बहाने जैसे समूचे युवावर्ग की मुश्किलों और उनसे जूझनेवाली संघर्ष क्षमता का विस्तृत बयान 'आकाश की छत' में हैं । मिश्रजी ने पूर्व दिप्ती शैली से कछार के जीवन को भी चित्रित किया है । गाडी की सीटी सुनकर यश का अतीत में खो जाना, छपाक की आवाज से बदरीभैया की शहादत का याद आना आदि अनेक प्रसंग ऐसे हैं जो शहर और गाँव की कथा को जोडते हैं । इसमें न केवल अतीत की चर्चा है वर्तमान का कथन है और भविष्य की ओर इशारा भी है ।

☞ **<u>बिना दरवाजे का मकान</u> : (१९८४)**

'बिना दरवाजे का मकान' बढती हुई सामाजिक, आर्थिक असुरक्षा की अधिव्यक्ति है । इस असुरक्षा का रूप मूलतः महानगरीय है । उपन्यास की नायिका दीपा दिल्ली की एक नई बसती हुई कॉलोनी में बिना दरवाजे का मकान' बनाकर रहती है । अपाहित पति एवं स्वयं के निर्वाह के लिए दीपा अनेक घरों में नौकरानी का काम करने जाती है । दीपा अनेक घरों में उनके परिवारों को नजदीक से देखकर अनुभव करती हैं । लेखक ने दीपा के माध्यम से अनेक परिवारो की नैतिकता, नीचता, असामाजिकता, अमानवीयता एवं विरूपताओं का उद्‌घाटन करते हुए दीपा के संघर्षपूर्ण जीवन का चित्रण किया है ।

☞ **<u>दूसरा घर</u> : (१९८६)**

'दूसरा घर' स्वदेश के ही प्रवास में जीवन बिता रहे लोगों की 'जीवनी' जैसा उपन्यास है । जो एक स्तर पर गरीबी से जूझ रहे लोगों की मार्मिक गाथा प्रस्तुत करता है । तो दूसरे स्तर पर अपने ही देश के दूसरे हिस्से में बस जाने वाले लोगों को 'विदेशी' मानने की प्रवृति को उजागर करता है । यह उपन्यास इसी ज्वलंत समस्या को सामने रखता है । 'बेघर' होने का बोध इस उपन्यास का केन्द्रीय बोध है । उपन्यास में बाहर से आये हुए लोगों का अन्तर्विरोध भी स्पष्ट हुआ है । 'दूसरा घर' उन्हें उतना ही बेघर बनाये रखता है जितना उनका पहला घर, जहाँ वे लोग वर्षों पहले आर्थिक विवशताओं के कारण निष्कासित हो जाते है और अपने घर लौटने पर उनका बेटा भी उसे पहचानने से इन्कार कर देता है । उपन्यास में गुजरात के एक नगर में छोटे से उत्तर प्रदेश की जो कल्पना की है वह मात्र कल्पना या असत्य नहीं है । 'दूसरा घर' अपनी सहजता में हमारी जटिल दुनिया की तस्वीर है ।

☞ **<u>थकी हुई सुबह</u> : (१९९४)**

क्या आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त कर लेने मात्र से नारी अपने स्वत्व एवं स्वाभिमान की रक्षा कर सकती है ? क्या नारी की ऐसी कोई शारीरिक माँग नहीं होती जिसकी पूर्ति स्वतः नहीं कर सकती ? क्या सफलता के लिए इसे पुरूष प्रधान समाज में कुछ खोना तो नहीं पड रहा है ? ऐसे अनेक प्रश्न नायिका 'लक्ष्मी' के माध्यम से उभरे हैं । आर्थिक द्रष्टि से सफल होने पर भी आज की नारी कहीं कुछ खो देने के दंश से पीडित होकर मानसिक रिक्तता का अनुभव करती है । 'थकी हुई सुबह' की 'लक्ष्मी' एक ऐसी नारी है ।

☞ **<u>बीस बरस</u> : (१९९६)**

दामोदर बीस बरस बाद अपने गाँव में आता है । गाँव उसके लिए विदेश हो गया है । उसे गाँव बदला-बदला सा नजर आता है । वंदना के प्रसंग द्वारा मिश्रजी

ने गाँव में जन्म ले रही नारी चेतना प्रकट की है । नारी जागरण का यह आदर्श कोई परिगति तक नहीं पहुंचता । कुल मिलाकर यह उपन्यास एक रोमानी कथा बनकर रह गया है । उसमें बीस बरस पहले की ग्रामीण व्यवस्था के प्रति उपन्यासकार का रोमानीपन ही उद्‌घाटित हो सका है । ग्रामीण परिवेश में हो रहे परिवर्तन की लेखक गहराई से छान-बीन नहीं कर सका है ।

आत्मकथा

मिश्रजी की आत्मकथा खाली रामदरश मिश्रजी की आत्मकथा न होकर पूरे समय की आत्मकथा हैं । उनके तमाम सहयात्रियों की कथा है । उनकी आत्मकथा की खास बात यह है कि आत्मकथा लिखते समय वे कैमरे का लैन्स सिर्फ खुद पर नहीं रखते, उसे लगातार अपने साथियों और सहयात्रियों पर घुमाते रहते हैं । यहाँ तक की उनकी ओर भी, जो सदैव उन्हें शत्रु भाव से देखते रहे और उन्हें नीचा दिखाने की कोशिश करते रहे हैं । एक और खास बात यह है कि उन्होंने अपनी आत्मकथा में बडी बडी और चकाचौंध पैदा करनेवाली चीजे नहीं लिखी । उन्होंने छोटी छोटी बातों को ही लिया है, जिन्हें अनुभूति की आँख से देखें तो उनके बडे-बडे अर्थ निकलते हैं ।

मिश्रजी ने अपनी आत्मकथा के रूप में 'जिन्दगी का सफरनामा' तीन खंडों में क्रमशः १) 'जहाँ मैं खडा हुँ', २) 'रोशनी की पगदंडियाँ', ३) 'टूटते बनते दिन' में प्रस्तुत किया है । इन कृतियों में मिश्रजी ने अपने आपको ज्यों का त्यों अनावृत करने का प्रयास किया है । और यदि कहीं कुछ अनकहा 'अनुद्‌घाटित रह गया था तो उसे चौथे खंड 'उत्तरपथ' में उतार दिया है । और अंत में उस पूरे सफरनामे को मिश्रजी ने 'सहचर है समय' में समवेत रूप में देकर आत्मकथा लेखन में अनूठा प्रयोग किया है । सन् २००० मे मिश्रजी की एक और आत्मकथा 'फूरसत के दिन' शीर्षक से प्रसिद्ध हुई है । जिसके लिए उनकी अलग पहचान कायम होगी । पाठक उन्हें अपनी ओर निकट अनुभव करेंगे और एक विचित्र गुदगुदानेवाली आत्मीयता भी पायेंगे ।

☞ **<u>जहाँ मैं खडा हूँ</u> : (१९८४)**

इसमें मिश्रजी के सद्य-प्रकाशित स्मृति-चित्र है, उनका अपना जीवन वृतांत है । यह मिश्रजी की जीवन यात्रा ही नहीं, एक बडे परिवेश की कथा भी है । लेखक ने अपनी जीवन कथा का सहारा लेकर भारत के ग्रामीण परिवेश में व्याप्त अभाव, अशिक्षा, संघर्ष तथा मूल्य चेतनाओं का जीवंत वर्णन अपना बचपन एवं किशोर जीवन का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है ।

☞ **<u>रोशनी की पगदंडियाँ</u> :**

इसमें लेखक ने अपने किशोर जीवन के संघर्षपूर्ण वर्षो का अपनी सर्जक चेतना के अंकुरण और विकास के विस्मययुक्त अनुभव का शब्द के साथ अपने मौलिक आचरण

से जन्म लेनेवाली तन्मयता और ताजगी एवं मस्ती का लेखा-जोखा कुछ इस रूप में प्रस्तुत किया है कि उसमें उस युग की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का ऐतिहासिक संदर्भ भी मार्मिकता एवं जीवंतता के साथ समाहित हो गया है । 'रोशनी की पगदंडियाँ' मनुष्यता की खोज का रचनात्मक दस्तावेज है ।

☞ **<u>उत्तर पथ</u> : (१९९१)**

'उत्तर पथ' में गुजरात से विदा लेकर दिल्ली में स्थायी होने का दिल्ली में साहित्यिक माहौल, विभिन्न संमेलन, स्वयं का साहित्य सृजन, विभिन्न साहित्यकारों से भेंट, अपना परिवार, पाकिस्तान और चीन का आक्रमण, शास्त्रीजी की मृत्यु एवं दिल्ली के संपूर्ण परिवेश को चित्रित करते हुए तत्कालीन विभिन्न गतिविधियों का वर्णन विवरण है ।

☞ **<u>टूटते बनते दिन</u> : (१९९१)**

अपने 'सफरनामा' के इस तीसरे भाग में मिश्रजी ने अपने दांपत्य जीवन, व्यावसायिक संघर्ष, मकान के लिए संघर्ष, गुजरात में आठ वर्षो की नौकरी को जीवनानुभव के साथ-साथ, गुजरात की भव्य संस्कृति, शिक्षा की राजनीति एवं अंत में गुजरात छोडकर दिल्ली की यात्रा का वर्णन है । इसमें लेखक ने जैसे अपनी कथा के द्वारा गुजरात के संपूर्ण परिवेश को चित्रित किया है ।

☞ **<u>सहचर है समय</u> : (१९९१)**

'सहचर है समय' में मिश्रजी ने अपने पूरे सफरनामे को प्रस्तुत कर आत्मकथा लेखन में अनुठा प्रयोग कर अपनी अलग पहचान बनाई है, जो पाठकों के मन में भी संवेदना एवं आत्मीयता उत्पन्न करनेवाली है । इसमें चारो खंड समाहित है ।

☞ **<u>फुरसत के दिन</u> : (२०००)**

इसमें लेखक ने सेवा निवृति के बाद फुरसत के दिनों में जहाँ जहाँ गये उनके जीवनानुभवों को व्यक्त किया है । अपनी इस अंतिम आत्मकथा में लेखक ने राजकोट की यात्रा पर लिखा हुआ संस्मरण भी प्रकाशित कर राजकोट एवं राजकोट के हिन्दी प्रेमियों तथा सौराष्ट्र का गौरव बढाया है । इसमें मिश्रजी ने अपनी राजकोट की यात्रा एवं डॉ. यशवंत गोस्वामी के साथ बिताये दिनों का वर्णन किया है । साथ-साथ सौराष्ट्र युनिवर्सिटी का भी वर्णन किया है ।

यात्रा वृत

मिश्रजी ने अनेक छोटें मोटें प्रवास वर्णन लिखें हैं, जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रसिद्ध होते रहे हैं ।

☞ **तना हुआ इन्द्र धनुष : (१९८९)**

इस कृति में मिश्रजी की उत्तर कोरिया, चीन और रूस की यात्रा के संस्मरण है । परंतु केन्द्र में, उत्तरी कोरिया की यात्रा है । वहाँ की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक गतिविधियों का इस पुस्तक में वर्णन है । कोरियाई लोगों की आत्मीयता, चारित्रिकता, शौर्य एवं संघर्ष को भी रेखाकित किया है । उनके लिए राष्ट्र की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है । इस संदर्भ में मिश्रजी राष्ट्रभाषा की अस्मिता का प्रश्न उठाते हुए कोरिया और भारत के अनुभवों को तानकर भारत के उन लोगों पर व्यंग्य किया है जो बेशर्मी से अंग्रेजी को माथे पर ताज की तरह बिठाकर अपनी भाषा का अपमान करते हैं ।

☞ **भोर का सपना : (१९९३)**

'भोर का सपना' कोरिया यात्रा के संस्मरण का दूसरा भाग जैसा है । अपने शिष्य का निमंत्रण पाकर लेखक जब कोरिया पहुँचते हैं, तो उस घर का माहोल उत्सव सा हो जाता है जो वहाँ की संस्कृति है । कोरिया में एक छोटे किंतु समृद्ध, सांस्कृतिक देश में आज भी वे मूल्य बचे हैं जिनका एहसास एक भारतीय गुरू ने अपनी यात्रा में महसुस किया है । संस्मरण में कोरिया को अनेक रूपों में देखने का प्रयास किया गया है । वहाँ के शहर, गाँव एवं प्राकृतिक संपदा का वर्णन भी भरपूर है । इसमें नाटकीयता का पुट हर जगह मिलता है, जो पुस्तक की एक विशेषता है ।

ललित निबंध संग्रह

मिश्रजी ने अनेक विचारात्मक एवं हृदयस्पर्शी निबंध लिखे हैं । उनमें 'कितने बजे हैं' निबंध संग्रह उल्लेखनीय है, जो मिश्रजी के एक नये रूप को उजागर करता है ।

☞ **कितने बजे हैं ? : (१९८२)**

'कितने बजे हैं ?' लेखक के अनेक निबंधों का संग्रह है, जिसमें अंग्रेजीयत के प्रति एक कटाक्ष है तो 'शोर मत करो आदमी सो रहे है' में लेन-देन की महाजनी संस्कृति पर चोट की है । कितनी अजीब है लेन-देन महाजनी संस्कृति ऊपर से चिकना रामनामी दुपट्टा और भीतर से सडती हुई मनोवृतियों की गठरी । 'फागुन' के माध्यम से फिर शहर और गाँव की मानसिकता को उभारा है । 'कितने बजे है ?' में लेखक ने जिस दर्द को उकेरा है, वही दर्द मूर्त हुआ है । 'तुम्हारी माँ कहां है ?' और 'नगर जहाँ सपने टूटते हैं' में शहरी वातावरण का विकृत प्रभाव गाँव के संबंधों और मूल्यों को आहत कर रहा है । लेकिन उन्हें खुशी है कि नगरों में श्रमिकों में संघ चेतना का विकास हो रहा है, जो गाँव के मजदूरों में भी पहुँच गया है । आशा का एक स्वर रोमेंटिक निबंध 'बडौदे की एक शाम' में भी व्यक्त हुआ है । इस संग्रह में भीड से अलग एक व्यक्ति भी है ।

❁ उपसंहार ❁

रामदरश मिश्रजी की आत्मकथा को जो जानता है और उस सिंह द्वार से उनकी रचनाभूमि में प्रवेश करता है, उसके लिए कुछ भी अपरिचित नहीं रह जाता । उनके लिए एक-एक कर कोठरियाँ और अंतःपूरों के द्वार खुलते चलते जाते हैं । रामदरशजी कोई बहुत चतुर या चालाक लेखक नहीं हैं और जो लिखते हैं, उसमें बहुत ज्यादा कसरत करना ही उन्हें प्रिय है । लिहाजा जो उन्होंने जीवन जिया और जो कुछ उन्होंने करीब से देखा और पाया, उसी को थोडा फेर-फार कर वे रचनाओं में ढाल देते हैं और उसी में उनकी कलम के स्पर्श से एक ऐसी चमक पैदा हो जाती है कि यथार्थ हमें कुछ नया-नया और ज्यादा अर्थपूर्ण लगने लगता है ।

अपनी लेखकीय उपलब्धियों को हासिल करने के लिए उन्होंने न कभी उतावली दिखायी और न औरों की तरह बढ बढकर हाथ मारे । उनसे दशकों और पीढियों बाद आये लेखकों ने लिखना छोडकर खुद को 'माफिया' और 'गोडफाधर' में तब्दील कर लिया, वहीं रामदरशजी एक सीधे-सादे लेखक की तस्वीर मन में संजोये हुए लिख रहे हैं, लिखते जा रहे हैं । वे उन लेखकों में से नहीं है, जिसकी बिना लिखे ही तूती बोलती है, लेकिन उन्होंने ऐसा चाहा ही कब था ? उन्होंने तो लिखना और लेखक होना ही चाहा था । उनका एक शेर अल्फाज में उनके संघर्ष की पूरी कहानी कह डालता है -

''जहाँ आप पहुँचे छलांगे लगाकर, वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे ।''

मिश्रजी का पता है - डॉ. रामदरश मिश्र, आर-३८, 'वाणी विहार', उत्तम नगर, नई दिल्ली । पीन कोड नं. ११००५९
दूरभाष नं. (०११) ५६३८५८७

❑ रामदरश मिश्र की रचनाएँ

काव्य संग्रह

१) पथ के गीत : १९५१ - राजेन्द्र एन्ड ब्रदर्स - बलिया
२) बैरंग बेनाम चिट्ठियां : १९६२ - आस्था प्रकाशन - अहमदाबाद
३) पक गई है धूप : १९६१ - भारतीय ज्ञान पीठ - दिल्ली
४) कंधे पर सूरज : १९७७ - राधाकृष्ण प्रकाशन - दिल्ली
५) दिन एक नदी बन गया : १९८४ - नेशनल पब्लिशिंग हाउस - दिल्ली
६) मेरे प्रिय गीत : १९८५ - कंदर्प प्रकाशन - दिल्ली
७) बाजार को निकले है लोग (गजल) - १९८६ - विकास पेपर बैक्स - दिल्ली

८) जुलूस कहाँ जा रहा है ? : १९८९ - प्रभात प्रकाशन - दिल्ली

९) रामदरश मिश्र की प्रतिनिधि कविताएँ - १९९० - पार्श्व प्रकाशन - अहमदाबाद

१०) आग कुछ नहीं बोलती : १९९२ - इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन - दिल्ली

११) शब्द सेतु : १९९४ - साहित्य सहकार - दिल्ली

उपन्यास

१) पानी के प्राचीर : १९६१ - हिन्दी प्रचारक संस्थान - वाराणसी

२) जल टूटता हुआ : १९६९ - हिन्दी प्रचारक संस्थान - वाराणसी

३) आदिम राग (बीच का समय) : १९७० - राधाकृष्ण प्रकाशन - दिल्ली

४) सुखता हुआ तालाब : १९७२ - नेशनल पब्लिशिंग हाउस - दिल्ली

५) अपने लोग : १९७६ - नेशनल पब्लिशिंग हाउस - दिल्ली

६) रात का सफर : १९७६ - राधाकृष्ण प्रकाशन - दिल्ली

७) आकाश की छत - १९७९ - वाणी प्रकाशन - दिल्ली

८) बिना दरवाजे का मकान : १९८४ - प्रभात प्रकाशन - दिल्ली

९) दूसरा गृह : १९८६ - वाणी प्रकाशन - दिल्ली

१०) थकी हुई सुबह : १९९४ - इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन - दिल्ली

११) बीस बरस : १९९६ - वाणी प्रकाशन - दिल्ली

आत्मकथा

१) जहाँ मैं खडा हूँ : १९८४ - परमेश्वरी प्रकाशन - दिल्ली

२) रोशनी की पगदंडियाँ -

३) टूटते बनते दिन : १९९१ - परमेश्वरी प्रकाशन - दिल्ली

४) उत्तर पथ : १९९१ - परमेश्वरी प्रकाशन - दिल्ली

५) सहचर है समय : १९९१ - किताब घर - दिल्ली

६) फुरसत के दिन : २००० - इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन - दिल्ली

कहानी संग्रह

१) खाली गृह : १९६८ - ज्ञानभारती प्रकाशन - दिल्ली

२) एक वह : १९७४ - नेशनल पब्लिशिंग हाउस - दिल्ली

३) दिनचर्या : १९७९ - प्रवीण प्रकाशन - दिल्ली

४) सर्पदंश : १९८२ - पराग प्रकाशन - दिल्ली

५) बसंत का एक दिन : १९८२ - प्रभात प्रकाशन - दिल्ली

६) इकसठ कहानियाँ : १९८४ - प्रभात प्रकाशन - दिल्ली

७) अपने लिए : १९९२ - परमेश्वरी प्रकाशन - दिल्ली

८) मेरी प्रिय कहानियाँ : १९९० - साहित्य सहकार - दिल्ली

९) चर्चित कहानियाँ : १९९० - साहित्य सहकार - दिल्ली

१०) श्रेष्ठ आंचलिक कहानियाँ : १९९५ - कादंबरी प्रकाशन - दिल्ली

११) आज का दिन भी : १९९६ - कादंबरी प्रकाशन - दिल्ली

यात्रा वर्णन

१) तना हुआ इन्द्रधनुष : १९८९ - साहित्य सहकार - दिल्ली

२) भोर का सपना : १९९३ - वाणी प्रकाशन - दिल्ली

ललित निबंध संग्रह

१) कितने बजे है ? : १९८२ - प्रभात प्रकाशन - दिल्ली

संस्मरण

१) स्मृतियों के छंद : १९९५ - वाणी प्रकाशन - दिल्ली

मिश्रजी की समीक्षात्मक कृतियाँ

१) हिन्दी आलोचना का इतिहास : १९६० - हिन्दू विश्वविद्यालय - बनारस

२) साहित्य : संदर्भ और मूल्य : १९६१ - एस. चांद एंड के. - दिल्ली

३) ऐतिहासिक उपन्यासकार - वृंदावनलाल वर्मा - वही

४) हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा : १९६८ - राजकमल प्रकाशन - दिल्ली

५) आज का हिन्दी साहित्य : संवेदना और सृष्टि : १९७५ - अभिनव प्रकाशन - दिल्ली

६) हिन्दी समीक्षा : स्वरूप और संदर्भ : : १९७४ - मैकमिलन एन्ड कं. - दिल्ली

७) हिन्दी कहानी : अंतरंग पहचान : १९७७ - नेशनल पब्लिशिंग हाउस - दिल्ली

८) हिन्दी कविता : आधुनिक आयाम : १९७८ - वाणी प्रकाशन - दिल्ली

९) छायावाद का रचना लोक : १९८१ - ज्ञान प्रकाशन - दिल्ली

१०) आधुनिक हिन्दी कविता - सर्जनात्मक संदर्भ : १९८१ - इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन - दिल्ली

११) हिन्दी गद्य साहित्य : आधुनिक आयाम : १९९४ - किताब घर - दिल्ली

संदर्भ सूची

१)	कवि रामदरश मिश्र	ले. डॉ. महावीरसिंह चौहान	पृ. सं. ०१
२)	रामदरश मिश्र के उपन्यासों में घर परिवार	ले. डॉ. यशवंत गोस्वामी	पृ. सं. १६
३)	कितने बजे है ?	ले. डॉ. रामदरश मिश्र	पृ. सं. २०
४)	कितने बजे हैं ?	ले. डॉ. रामदरश मिश्र	पृ. सं. १७
५)	जहाँ मैं खडा हूँ	ले. डॉ. रामदरश मिश्र	पृ. सं. ३१
६)	जहाँ मैं खडा हूँ	ले. डॉ. रामदरश मिश्र	पृ. सं. २०
७)	जहाँ मैं खडा हूँ	ले. डॉ. रामदरश मिश्र	पृ. सं. ७८
८)	जहाँ मैं खडा हूँ	ले. डॉ. रामदरश मिश्र	पृ. सं. १०२
९)	टूटते बनते दिन	ले. डॉ. रामदरश मिश्र	पृ. सं. १४८
१०)	टूटते बनते दिन	ले. डॉ. रामदरश मिश्र	पृ. सं. १४८
११)	बाजार को निकले है लोग	ले. डॉ. रामदरश मिश्र	पृ. सं. ६०
१२)	बाजार को निकले है लोग	ले. डॉ. रामदरश मिश्र	पृ. सं. ६५
१३)	रामदरश मिश्र की सृजनयात्रा	ले. डॉ. महावीरसिंह चौहान	पृ. सं. १३
१४)	रचनाकार रामदरश मिश्र	सं. डॉ. नित्यानंद तिवारी	पृ. सं. २१
१५)	रचनाकार रामदरश मिश्र	सं. डॉ. नित्यानंद तिवारी	पृ. सं. ५१
१६)	रामदरश मिश्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	ले. डॉ. फूलबदन यादव	पृ. सं. २०
१७)	रामदरश मिश्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	ले. डॉ. फूलबदन यादव	पृ. सं. २१
१८)	रामदरश मिश्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	ले. डॉ. फूलबदन यादव	पृ. सं. २१
१९)	सहचर है समय	ले. डॉ. रामदरश मिश्र	पृ. सं. २०
२०)	साहित्यिक निबंध	ले. डॉ. राजनाथ शर्मा	पृ. सं. ११२

अध्याय - 2

आधुनिक हिन्दी काव्य एक परिदृश्य

अध्याय - २

आधुनिक हिन्दी काव्य : एक परिदृश्य

- काव्य की विभिन्न परिभाषाएँ :
  - प्रवृत्यात्मक हिन्दी काव्य :
  - कविता क्या है ?
  - कविता के विषय :
  - काव्य की मूल प्रेरणाएँ :
  - कविता के सौन्दर्य तत्व :
    - भाव सौन्दर्य :
    - काल्पनिक सौन्दर्य :
    - नाद सौन्दर्य :
- काव्य के भेद :
- हिन्दी काव्य का विकास :
- भारतीय कविता : हिन्दी कविता की प्रमुख धाराएँ :
  - कविता का महत्व :
- आधुनिक काल :
- हिन्दी की आधुनिक काव्य-धारा :
- आधुनिक हिन्दी कविता के चार युग :
  - भारतेन्दु युग :
  - द्विवेदी युग :
  - छायावादी युग :
    - छायावाद के प्रमुख कवि और उनका काव्य :
    - छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ :
      - विषयगत प्रवृत्तियाँ :
      - विचारगत प्रवृत्तियाँ :
      - शैलीगत प्रवृत्तियाँ :
  - प्रगतिवादी युग :
    - प्रगतिवादी साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ :

- ➠ धर्म, ईश्वर एवं परलोक का विरोध :
- ➠ पूंजीपति वर्ग के प्रति धृणा का प्रचार :
- ➠ शोषित वर्ग के जीवन की दीनता एवं कटुता का चित्रण :
- ➠ नारी के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण :
- ➠ सरल शैली :

❋ हिन्दी का प्रगतिवादी साहित्य :

❋ प्रयोगवाद और नयी कविता :

- ➪ प्रयोगवाद का सामान्य परिचय :
- ➪ प्रयोगवाद का आरंभ :

❋ हिन्दी की प्रगतिवादी कविता की प्रमुख प्रवृत्तिर्यां :

- ➪ बौधिक्ता :
- ➪ यथार्थवादी वर्णन :
- ➪ अहमवाद और घोर वैयक्तिकता :
- ➪ जीवन के प्रति असंतोष और निराशा :
- ➪ जगत की निस्सारता और जीवन के प्रति अनास्था :
- ➪ असामाजिकता :
- ➪ व्यंग्य और कटूक्ति :
- ➪ काम, कुण्ठा तथा दूषित वृत्तियों का नग्न रूप में चित्रण :

❋ प्रयोगवाद का उदेश्य :

❋ हिन्दी-काव्य में प्रकृति-चित्रण :

❋ हिन्दी-काव्य में नारी रूप :

- ➪ द्विवेदी युगीन राधा :
- ➪ प्रेमाख्यानकों की नायिका :

❋ हिन्दी-काव्य में राष्ट्रीयता की भावना :

- ➪ प्राचीन हिन्दी काव्य :
- ➪ आधुनिक हिन्दी-काव्य में राष्ट्रीयता :

❁ हिन्दी-काव्य में विरह-वर्णन :

- ➪ कबीर की विरहानुभूति :
- ➪ मीरा का विरह-वर्णन :
- ➪ सूर का विरह-वर्णन :
- ➪ जायसी का विरह-वर्णन :

❁ आधुनिक कवियों का विरह-वर्णन :

अध्याय - २

हिन्दी काव्य एक परिदृश्य

काव्य का अर्थ क्रमशः संकुचित होता गया है । प्रारंभ में सम्पूर्ण साहित्य को काव्य पुकारा जाता था, लेकिन आजकल काव्य पद्यबध्ध रचना को ही कहा जाता है । काव्य का संस्कृत में अर्थ ''विस्तृत तात्पर्य'' वाला है । पाश्चात्य विद्वानों ने कविता की परिभाषा उसके तत्वों तथा उदेश्य को द्रष्टिपथ में रखकर निर्धारित की है । मैकाले के कथनानुसार - **''शब्दों को इस प्रकार प्रस्तुत करने की कला जिसमें कल्पना में एक भाव की सृष्टि हो सके, कविता है ।''**

विल्सन के कथनानुसार - **''काव्य अनुभूतियों से रंजित बुद्धि व्यापार है-'' ''Poetry is the Intellect coloured by feelings.''**

बाबु गुलाबराय की परिभाषा समन्वयात्मक है, इसमें उसके तत्वों को भी समाहित किया गया है । उनका कथन है - **''काव्य संसार के प्रति कवि की भाव प्रधान किन्तु वैयक्तिक सम्बन्धों से युक्त मानसिक प्रकियाओं की कल्पना के ढांचे में ढली, श्रेय का प्रेयरूप उद्‌घाटन करनेवाली प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति है ।''**

कविता प्रायः पद्यात्मक एवं छन्दबध्ध रचना मानी गई है । इसमें चिन्तन की तुलना में भावनाओं को स्थान प्रदान किया जाता है । इसमें सौन्दर्य का विधान होता है । कविता के माध्यम से पाठक को रस तथा आनन्द की प्राप्ति होती है । गौण रूप से इससे भाषा भी उन्नत होती है । लेकिन कविता प्रधानतः आनन्द एवं रस का स्त्रोत ही मानी गई है । इसमें तर्क तथा युक्तियों को माध्यम नहीं बनाया जाता, अपितु रसानुभूति का उद्रेक किया जाता है । कविता से कवि जगत की वास्तविकता को स्वयं की अनुभूति के द्वारा वाणी प्रदान करता है । आज के बुद्धिवादी युग में जबकि साहित्य जीवन से अभिन्न रूप में आबद्ध है तथा सबसे अधिक उपयोगी तथा प्रेरणास्पद है । विभिन्न विद्वानों ने अपने अनुसार कविता की परिभाषाएं प्रस्तुत की है । पाठकों के ज्ञानवर्धन हेतु कतिपय परिभाषाएं अवलोकनीय है ।

काव्य की विभिन्न परिभाषाएं

आचार्य विश्वनाथ के शब्दों में - ''वाक्य रसात्मकम् काव्यम्'' अर्थात् 'रसमय वाक्य' ही काव्य है ।

आचार्य जगन्नाथ के शब्दों में - ''रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्द काव्यम्'' अर्थात् रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द युक्त वाक्य को काव्य कहते है । सोमनाथ के अनुसार-

''सगुन पदारथ दोष बिनु, पिंगल नत अविरूद्ध ।
भूषण जुत कवि कर्म को, सो कवित्त कहि शुद्ध ।।

अर्थात् काव्य वह कवि कर्म है, जिसमें शब्द एवं अर्थ सगुण, दोष रहित तथा पिंगल (छन्द) के अनुरूप हो ।

डॉ. श्यामसुन्दरदास के शब्दों में - **''काव्य वह है, जो हृदय में अलौकिक आनन्द तथा चमत्कार की सृष्टि करे ।''**

जयशंकर प्रसाद के शब्दों में - ''काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है, जिसका सम्बन्ध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है ।''[१]

काव्य शब्द कवि शब्द से ही व्युत्पन्न हुआ है । यह इन पंक्तियों से स्पष्ट होगा-

''प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता
तदनुप्राणनाजीवद् वर्णनानिपुणः कविः
तस्य कर्म स्मुतं काव्यम् ।''

अभिनव गुप्तने 'ध्वन्यालोक लोचन' टीका में 'कविनीय काव्यं' लिखकर काव्य की व्याख्या की है । विद्याधर ने अपनी 'एकावली' टीका में- 'कवयति इति कविः तस्य कर्म काव्यम्' लिखकर काव्य की व्याख्या की है ।

वैसे तो काव्य शब्द में समस्त साहित्य आ जाता है, फिर भी काव्य शब्द का प्रयोग साहित्य की अपेक्षा कहीं अधिक सीमित, संकुचित एवं पारिभाषिक अर्थ में मिलता है ।

किसी भी वस्तु की परिभाषा देना एक कठिन कार्य है । कोई भी वस्तु की परिभाषा हमें देनी है, तो वह परिभाषा असंभव दोष, अव्याप्ति दोष और अतिव्याप्ति दोष से मुक्त होनी चाहिए ।

आचार्य भरतमुनि के अनुसार :- **''जो कोमल और ललित पदों से युक्त गूढ शब्द और अर्थ से विरहित, सर्वग्राह्य सबको सुख देने वाला, नृत्य में प्रयुक्त किये जाने योग्य रस की विविध धाराएँ प्रवाहित करनेवाला, सन्धियों से सन्धान्युक्त हो, वही सर्वश्रेष्ठ काव्य कहा जाता है ।''**

अलंकार सम्प्रदाय के प्रवर्तक भामह का मत है - **''शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् ।''**

अर्थात् ''जहाँ शब्द और अर्थ में विशेष प्रकार का सहभाव है, अलंकार योजना के द्वारा उसका सौन्दर्य बढ गया है, ऐसे विशिष्ट शब्द और अर्थ काव्य कहलाते है ।''

दंडी के मत में भी 'अलंकृत शब्दार्थ युगल' ही काव्य का स्वरूप है ।

ध्वनिवादी आचार्य आनंदवर्धन की दृष्टि विशेष रूप से काव्य की आत्मा की ओर रही । काव्य के शरीर रूप से प्रसिद्ध शब्द और अर्थ की ओर उन्होंने कम ध्यान दिया । ध्वनिकार के अनुसार - ''काव्यास्यात्मा ध्वनिः ।'' अर्थात् 'काव्य की आत्मा ध्वनि है ।

वक्रोक्तिकार कुन्तक ''वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्'' कहकर काव्य को इस प्रकार प्रस्तुत

करते है -

''शब्दार्थौ सहितौ वक्रकवि व्यापार शालिनी ।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाल्दकारिणि ।''

वक्रोकितजीवित-काव्य मर्मज्ञों को आनंद देनेवाली सुन्दर कवि-व्यापार युक्त रचना में व्यवस्थित शब्द और अर्थ मिलकर काव्य कहलाते हैं ।

इसके पश्चात् संस्कृत की जो सबसे प्रसिद्ध काव्य परिभाषा आती है, जिसमें आचार्य मम्मट ने सभी लक्षणों का समन्वित रूप प्रस्तुत किया है -

''तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावलङकृति पुनःकवापि ।''

अर्थात् ऐसे शब्द और अर्थ काव्य है जो दोषों से रहित हैं, गुणों से युक्त है और चाहे कहीं अलंकार रहित भी है । अधिकांश परवर्ती आचार्यों ने उसका ही अनुकरण किया है ।

संस्कृत आचार्यों की काव्य-परिभाषाओं के विषय में यह कहा जा सकता कि अपने समकालीन काव्यों के स्वरूप विशेष एक सीमा तक सक्षम है, वर्तमान समय में एक-दो को छोडकर प्रायः सभी परिभाषाएँ निष्क्रिय एवं असामयिक सिद्ध हुई है । संस्कृत आचार्यों की परिभाषाओं के बारे में हम यह कह सकते है कि उन्होंने काव्य के शरीर, आत्मा और उनकी विशेषताओं पर विस्तृत अध्ययन किया है ।

पाश्चात्य विद्वानों के काव्य के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है । वे अन्य कलाओं की भाँति काव्य को भी अनुकृत मानते थे । अरस्तू ने उसे छन्दोबद्ध अनुकृति कहा है ।

वर्डसवर्थ ने कल्पना की अपेक्षा भावना को महत्व दिया है ।

''Poetry is the spontaneous over Flow of Powerfull Feelings. It takes its origin from emotion recollected tranquility !''

अर्थात् काव्य उत्कट भावनाओं का सहजोद्रेक है । इसकी उत्पत्ति शान्ति के क्षणों में संचित अनुभूतियों से होती है । शैली ने सरस काव्य में करूणा को आवश्यक माना है -

''Our sweetest songs are those that tell of saddest tele.''

हडसन के अनुसार काव्य जीवन की व्याख्या, कल्पना और मनोवेग तीनों का समन्वय किया है-

''Poetry is interpretation of life through imagination and emotion.''

पाश्चात्य विद्वानों ने किसी ने कल्पना तत्व, किसीने भावतत्व किसीने बुद्धितत्व और

किसीने शैलीतत्व को महत्व दिया है । वास्तव में सुन्दर काव्य वही होगा, जिसमें चारों तत्वों का मणि कांचन योग हो ।

काव्य के विभिन्न तत्व होने के फलस्वरूप प्रत्येक मनीषी ने स्वयं की रूचि के अनुरूप किसी एक तत्व को प्रमुखता देकर काव्य की परिभाषा प्रस्तुत की है । संक्षेप में कहा जा सकता है कि - ''सरल एवं लय युक्त सार्थक-शब्द-बद्ध रचना काव्य की कोटि में आती है ।''[२]

प्रवृत्यात्मक हिन्दी काव्य

कविता क्या है ?

कविता मनुष्य के आंतरिक भावोद्वेलन की मुखर अभिव्यक्ति है । अनादिकाल से मनुष्य ने अपनी गहरी भावना को बार-बार शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त किया । इस तरह कविता दर असल मनुष्य की निजी एकान्तिक संपति है । इसीको तुलसीदास ने 'स्वान्तः सुखाय' कहा- अर्थात् 'कविता का सबसे पहला उदेश्य कवि के अपने स्वप्नों, आदर्शों, अपनी चिन्ताओं, अपने विचारों और अपनी जीवनानुभूतियों को शब्दों के माध्यम से साकार देखकर आनंदित होना है । यदि कविता कवि के मनको आनंद नहीं देती तो वह परिश्रम से तैयार किया हुआ खेल मात्र है । कविता कवि को और साथ ही साथ पाठक और श्रोता को भी आनंद दे सकती है, जब उसमें व्यक्त किया गया अनुभव सच्चा हो । इसीलिए सच्चाई या 'सत्यम्' और मौलिकता कविता की सबसे पहली शर्त है । सच्चाई कभी भी मानव समाज के लिए घातक और अमंगलकर नहीं होती । इसीलिए जो कविता सत्य को उद्घाटित करती है, वह सार्वभौमिक मंगल-कामना से अभिव्यक्त होती है । स्वभाव से ही सौन्दर्य-प्रेमी होने के कारण कवि अपनी रचना में उद्घाटित इस 'सत्यम्' और 'शिवम्' को एक सुघड सौन्दर्य प्रदान करता है । संसार की किसी भी भाषा, किसी भी समय और स्थान की कविता के शाश्वत गुण यही हो सकते है । इसी को भारतीय आचार्यों ने कविता और साहित्य की परिभाषा करते हुए 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' कहकर परिभाषित किया । ये तीनों गुण मिलकर किसी भी कविता को महान बनाते है ।[३]

कविता के विषय

प्रधानतः मानव ही कविता का विषय स्वीकारा गया है । पशु-पक्षी एवं प्रकृति वर्णन में भी कवि मानव भावनाओं का ही आरोप करता है । समाज एवं व्यक्ति से सम्बन्धित कोई भी विषय कविता में आश्रय ग्रहण कर सकता है । प्राचीन काल के कवियों का घ्यान राजा-महाराजाओं तक ही सीमित था । आज के कवि की द्रष्टि समाज के दीन-हीन तथा उपेक्षित वर्ग की ओर भी उन्मुख है ।

काव्य की मूल प्रेरणाएँ

भरतमुनि के अनुसार - ''काव्य से क्या नहीं हो सकता है ? काव्य केवल मनोरंजन की सामग्री ही नहीं है अपितु धार्मिक, नैतिक एवं दार्शनिक ज्ञान की शिक्षा एवं कायरों को साहस, वीरजनों को उत्साह, शोकार्तजनों को सांत्वना, उद्विग्न चित्तवालों को शान्ति, काव्य प्रणेता कवि को सम्मान, यश एवं द्रव्य की प्राप्ति आदि के लिए काव्य की अद्‌भुत साधना है ।''

मुल्कराज आनन्द के शब्दों में - ''आनन्द की अभिव्यक्ति ही काव्य की मूल प्रेरणा है ।'' सुकरात ने - ''दैवी प्रेरणा को ही काव्य प्रेरणा ठहराया है '' । पोप के शब्दों में - ''आनन्द की प्राप्ति एवं लोकरंजन काव्य की मूल प्रेरणाएँ ठहरती है ।''

सुमित्रानन्दन पन्त ने प्राकृतिक सौन्दर्य एवं लौकिक प्रणय को काव्य रचना का प्रेरक स्वीकार किया है ।

कविता में सौन्दर्य तत्व :

विद्वानों ने कविता के लिए निम्नलिखित सौन्दर्य तत्व निर्धारित किए है -

१) भाव-सौन्दर्य :

भाव तत्व प्रमुख एवं प्रधान माना गया है । जब तक कलाकार स्वयं की अनुभूति से अनुप्राप्ति नहीं होता, उसे काव्य-रचना की प्रेरणा नहीं मिलती । मन में भाव तत्व जाग्रत होते है । इसके उपरान्त कवि के मानस में परिपक्व होते है, इसके पश्चात् ही वे पाठकों के सामने उपस्थित होते है । मानव इसलिए ही मानव कहलाता है, क्योंकि वह संवेदनशील प्राणी है । काव्य का प्रमुख लक्ष्य मानव को संवेदनशील बनाना है । जो अनुभूतियाँ सामान्य जीवन में अप्राप्य है, वे काव्य के माध्यम से कवि को प्राप्त होती है । इस हेतु काव्य का प्रथम तत्व भाव सौन्दर्य है । मानव के हृदय में हर्ष, उत्साह, क्रोध, करूणा तथा प्रेम के भाव विद्यमान रहते है । इसका पृथक्-पृथक् परिस्थितियों में हृदयग्राही चित्रण ही भाव सौन्दर्य की कोटि में आता है ।

वीर, करूणा, बीभत्स, श्रृंगार, हास्य, भयानक, अद्‌भुत, रौद्र तथा शान्त-रस कविता में स्वीकार किए गए है । बाद के मनीषियों ने वात्सल्य एवं भक्ति रस को भी अलग से रस की संज्ञा प्रदान की है । सूर के काव्य में वात्सल्य रस की सरिता उमड रही है । भूषण के काव्य में वीररस यथार्थ रूप में उपस्थित है । सूर ने श्रृंगार रस के संयोग तथा वियोग पक्ष का हृदय ग्राही चित्रण किया है ।

इस भाँति काव्य शास्त्रीय द्रष्टि से रस का अर्थ काव्यानन्द-काव्य के द्वारा प्राप्त होने वाला आनन्द होता है । शब्दार्थ के माध्यम से भाव की कलात्मक अभिव्यक्ति 'काव्य' है और उसका आनन्दमय आस्वाद रस है ।''

२) काल्पनिक सौन्दर्य :

कविता जगत में विचार सौन्दर्य अथवा कल्पना तत्व का भी महत्वपूर्ण स्थान है । विचारों की श्रेष्ठता से कविता में गरिमा तथा नैतिक मूल्यों के प्रतिपादन से कविता सनातन बन जाती है । कबीर, जायसी, सूर एवं तुलसी की कृतियाँ उच्च विचारों से समन्वित होने के कारण साहित्य-जगत में अमर है तथा साहित्य की अनुपम निधि है । मानव जीवन के प्रत्येक पहलू का चित्रांकन इस कविताओं में सजीव रूप से झाँकता है । अमूर्त भावों को मूर्तता-कल्पना अथवा विचारों के माध्यम से ही प्रदान की जाती है । शेक्सपियर का कथन इस संदर्भ में अवलोकनीय है- ''कल्पना अज्ञात वस्तुओं को भी मूर्तरूप प्रदान करती है, शून्य वस्तु को भी सत्ता प्रदान करती है ।'' कल्पना ही ऐसा तत्व है, जिसमें शुष्क तथा नीरस वस्तु भी सरस तथा यथार्थ द्रष्टिगोचर होती है ।

३) नाद सौंदर्य :

कविता को छन्द-बद्ध रचना स्वीकारा गया है । छन्द नाद-सौन्दर्य को जन्म देता है । छन्द के माध्यम से काव्य में लय, तुक, प्रवाह, ओज तथा गति का विधान होता है । शब्दों के समुचित प्रयोग तथा उपयुक्त विन्यास से काव्य में नाद-सौन्दर्य तथा संगीत का संचार होता है । वर्णनीय रस की अनुकूलता के अनुसार वर्णो का बार-बार एवं पास-पास प्रयोग से भी नाद-सौन्दर्य की सृष्टि होती है -

''पर ओछन्द छन्द के छलिया,
जो तुम बंद-बंद के बूंदी ।
सौ-सौ सौगंधों के साथी मैंने तुमको नहीं पुकारा ।।''

इसके अतिरिक्त एक शब्द की आवृति एकाधिक बार हो तथा भिन्न-भिन्न स्थान पर उसका अर्थ भिन्न हो - चमक के कारण भी नाद-सौन्दर्य प्रस्फुटित होता है -

'अविचल पल, जल का छल-छल ।
गिर पर गिर-गिर कर कल-कल स्वर ।।'

इस उदाहरण में भी जल की छल-छल में नाद-सौन्दर्य विद्यमान है, साथ ही गिरि पर गिरकर कल-कल स्वर का निनाद भी ध्वनित है ।[४]

काव्य के भेद :

काव्य के दो भेद है : श्रव्य काव्य और द्रश्य काव्य

श्रव्यकाव्य के दो भेद है : प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य

प्रबन्ध काव्य के अंतर्गत महाकाव्य, खण्डकाव्य एवं आख्यानक गीतियाँ समाहित है ।

मुक्तक काव्य के भी दो विभाग है : गेय मुक्तक और पाठ्य मुक्तक

हिन्दी काव्य का विकास :

हिन्दी भाषा का इतिहास अत्यन्त गौरव से मंडित है । शताब्दियों से हिन्दी भाषा मनुष्यों के भावों तथा विचारों को अभिव्यक्त करती चली आ रही है । उत्तर से लेकर सुदूर दक्षिण पर्यन्त तक तथा पश्चिम से लेकर पूर्व तक मनुष्यों के हृदय तथा मस्तिष्क को स्पर्श करने में हिन्दी सक्षम सिद्ध हुई है ।

हिन्दी-भाषा एवं साहित्य के इतिहास मर्मज्ञों ने हिन्दी का उत्पत्ति काल संवत् 1100 के निकट स्वीकारा है । विद्वानों ने इसका विकासक्रम निम्नवत् निर्धारित किया है -

१) आदिकाल या वीरगाथा काल (संवत् 1100 से 1400 तक)
२) पूर्व मध्यकाल या भक्तिकाल (संवत् 1400 से 1700 तक)
३) उत्तर मध्यकाल या रीतिकाल (संवत् 1700 से 1900 तक)
४) आधुनिक-काल (संवत् 1900 से आज तक)

ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारंभिक काल में युद्धों का नाद गूंज रहा था । इस हेतु हिन्दी साहित्य की उत्पत्ति युद्धोन्माद दशाओं में हुई । युद्ध के अनुकूल काव्य सृजन होने के कारण कविताओं में वीर रस का परिपाक है । वीर रस के साथ-साथ श्रृंगार प्रधान काव्य भी रचा गया । कृतिर्यां प्रबन्ध-काव्य एवं रीति-काव्य ढंग से होती थीं । 'खुमान रासो' नवीं शताब्दी में रचा गया प्रबन्धात्मक वीर काव्य है । चन्दबरदाई का 'पृथ्वीराज रासो' का भी इस युग का उल्लेखनीय काव्य ग्रन्थ है । जगनिक कवि की 'आल्हा' भी इसी काल में अमीर खुसरो तथा मैथिली कोकिल की रचनाएं भी काव्य की द्रष्टि से अनुपम है । विद्यापति के हृदय-स्पर्शी पद भाव एवं कला की द्रष्टि से पुष्ट तथा उन्नत है । इनकी सरसता पाठक को अपनी ओर आकर्षित करने में पूर्ण-रूपेण सक्षम है । सभी कवियों में 'डिंगल' तथा साहित्यिक राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा 'पिंगल' का प्रयोग अवलोकनीय है । 'कवित्त', 'पाघडी', 'दूहा' आदि डिंगल के छन्दों का प्रयोग किया गया है । 'युद्ध वर्णन' में वीररस के साथ ही बीभत्स, अद्भुत तथा रौद्र रसों का भी परिपाक है । स्त्रियों के रूदन में करूण-रस की झांकी है । हास्य एवं शान्त-रस का प्रयोग नहीं मिलता है । पश्चिमी, राजस्थानी या मारवाडी भाषा के साहित्यिक रूप को 'डिंगल' कहा गया है ।

वीरगाथात्मक काव्य की विशेषताएं इस प्रकार है ।

१) दरबारी कवियों के द्वारा अपने-अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा ।
२) व्यापक राष्ट्रीयता का अभाव ।
३) युद्धों के सजीव एवं यथार्थ वर्णन ।
४) वीर रस के साथ श्रृंगार रस का चित्रण ।
५) ऐतिहासिकता की अपेक्षा कल्पना की अधिकता ।

विकास के द्वितीय काल में हिन्दी मंदाकिनी भक्ति-रस से आप्लान्वित है । इस समय मुसलमान हिन्दुओं पर अत्याचार कर रहे थे, तो निराशा के सागर में निमग्न हिन्दू-जनता ने भगवान का आश्रय ग्रहण किया । साहित्यकारों ने भक्ति-भागीरथी में तल्लीन होकर सुख एवं शान्ति की सांस ली । इस युग की काव्यधारा दो रूपों में अवलोकनीय है : १) निर्गुण २) सगुण ।

निर्गुण भक्ति के कवियों ने हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति तथा धार्मिक भावना में समन्वय करने का सफल प्रयास किया है । इस धारा में ईश्वर की एकता तथा मानव-मात्र की समता पर जोर दिया गया है । जाति-गत भेदभाव को समाप्त करने की चेष्टा है । बाहरी आडम्बरों की निन्दा की गई है । संतों का उपदेश था कि भगवान मंदिर एवं मस्जिद में न होकर हर इंसान के दिल में विराजमान है । गुरू भक्ति ही ईश्वर प्राप्ति का सबसे सुलभ-साधन है । इस युग की भाषा शुद्ध नहीं है, न उसमें काव्य-गत सौन्दर्य ही विद्यमान है । लेकिन भाव तथा अनुभूति की द्रष्टि से भाषा प्रशंसनीय है । संतों में कबीर, नानक, दादू तथा रैदास के नाम इस धारा के कवियों में विशेष रूप से उल्लेख के योग्य है । कबीर इस धारा के प्रवर्तक कवि ठहराए गए है ।

इनसे प्रेरणा पाकर जायसी, कुतुबन तथा उसमान ने प्रेम-गाथाओं के माध्यम से अपने आध्यात्मिक संदेश को जन-सामान्य के समक्ष गुंजित किया है । ये सूफी कवि है । प्रेम-गाथा काव्य मनस्वी के ढंग पर लिखिति है । इसमें कहानियों को गद्यरूप में प्रस्तुत किया गया है । दोहा तथा चोपाई छन्द में रचना की गई है । अवधी भाषा का प्रयोग है । जायसी इस सूफी काव्य परम्परा के प्रतिनिधि कवि है ।

सूफियों पर अद्वैतवाद का प्रभाव है । मुसलमान होते हुए भी सूफी कवियों ने वैष्णवों से अहिंसा की भावना ग्रहण की है । उपनिषदों के 'प्रति बिम्बवाद' की झांकी है । संतों की हठ योग की कियाएँ भी द्रष्टव्य है । कवियों ने रहस्यात्मक-प्रेमानुभूति को प्रकृति के धरातल पर व्यक्त करने का प्रयास किया है । रति, शोक, विरह के भावपूर्ण चित्रण अंकित किए है । प्रेम चित्रण में विदेशीपन होते हुए भी भारतीय शैली का प्रभाव द्रष्टव्य है ।

संतों की वाणी तथा प्रेम-गाथा की परम्परा भारतीय परिवेश में विशेष सफल सिद्ध नहीं हुई । इसके पश्चात् रामानन्द की साकार भक्ति का स्वरूप राम की उपासना के रूप में उपस्थित हुआ । महाप्रभु वल्लभाचार्य ने कृष्ण भक्ति के मधुर रूप की मंदाकिनी प्रवाहित की । राम-कृष्ण की भक्ति के माध्यम से जन-सामान्य का मानस पवित्र भावों से अंकुरित हो गया । रामशाखा के कवियों में गोस्वामी तुलसीदास सर्वोत्तम कवि है । इन्होंने श्रीराम की ईश्वर के रूप में उपासना की है । 'रामचरित मानस' तुलसी की सर्वोत्कृष्ट रचना है । इसमें पुरूषोत्तम राम का जीवन-विवरण प्रस्तुत है । कृष्ण-भक्त कवियों ने कृष्णचन्द की भगवान के रूप में उपासना की है । सूरदास, मीराबाई तथा हित हरिवंश कृष्ण-भक्ति धारा के प्रमुख कवि है । भक्त कवियों के अलावा इस काल

में नरोत्तम दास, रहीम, रसखान तथा केशवदास के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

इसके पश्चात् उत्तर मध्यकाल अथवा रीति का आरम्भ करीब संवत् 1700 से स्वीकारा गया है । इस काल तक भक्ति-धारा की गति मंद पड चुकी थी । तत्कालीन शासक भोग-विलास में तल्लीन थे । जनसामान्य से दूर रह कर वे सुरा तथा सुन्दरी की रंगरेलियों में व्यस्त थे । शासकों के अनुरूप लोक रूचि भी श्रृंगारमयी हो गयी । कविगण अपने आश्रयदाताओं की वासनाओं की पूर्ति के लिए श्रृंगार-रस से ओतप्रोत काव्य-रचना करने लगे । नायिकाओं के हाव-भाव तथा नख-शिख वर्णन करना ही कवियों की रचना का मूलाधार बन गया । कवियों ने अपनी कविता में भाषा, शैली, अलंकार एवं रस का चमत्कार दिखाने का भरसक प्रयास किया है । कवियों ने ब्रज भाषा को अपने काव्य का माध्यम बनाया है । धनाक्षरी एवं सवैया छन्द विशेष रूप से प्रयुक्त किए गए है । श्रृंगार-परक रचनाओं के अतिरिक्त यत्र-तत्र भक्ति, वैराग्य एवं नीति विषयक रचनाएँ भी अवलोकनीय है । इस काल के काव्य में लोकहित की अवहेलना है । स्वान्तः सुखाय काव्य रचना को भी विस्मृत कर दिया गया है । राधा तथा कृष्ण को सामान्य नायक तथा नायिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है । इस काल के कवि अपने साहित्यिक उद्देश्य के प्रति जागरूक नहीं है । काव्य-रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नवत् अवलोकनीय है ।

१) लक्षण-ग्रन्थों की रचना ।

२) प्रकृति का उद्दीपन में चित्रण ।

३) मुक्तक काव्य रचना ।

४) लौकिक श्रृंगार का चित्रण ।

५) कला-पक्ष की प्रमुखता ।

६) विरक्ति की भावना ।

७) वीर काव्य की रचना ।

भारतीय कविता : हिन्दी कविता की प्रमुख धाराएँ :

भारतीय कविता का इतिहास बहुत लंबा है और इसकी परंपरा अत्यन्त समृद्ध और उच्चकोटि की है । इसमें कालिदास, अश्वघोष, माघ और जयदेव जैसे महान कवि हो चुके है । हिन्दी कविता का संपूर्ण इतिहास इसी महान भारतीय काव्य सर्जना का उत्तराधिकारी हैं । संवेदना की द्रष्टि से अब तक की हिन्दी कविता को दो युगों में बाँटा जा सकता है । पहला युग सिद्ध साहित्य से लेकर रीतिकाल तक अर्थात् 700 ईस्वी से लेकर 1850 ईस्वी तक है और दूसरा युग 1850 ई. से लेकर आगे । हिन्दी कविता का सारा पहला युग एक प्रकार का संप्रदायबद्ध साहित्य है । इस सारी काव्यधारा की विशेषताओं को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है ।

१) सम्प्रदाय-बद्ध साहित्य :-

वह साहित्य जो किसी न किसी धार्मिक या दार्शनिक संप्रदाय के विचारों को आधार बनाकर लिखा गया है ।

२) सम्प्रदाय के सैद्धांतिक विचारों का प्रचार करना अथवा उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करना, चाहे सरहपा हों, गोरखनाथ, कबीर, जायसी, सूर या तुलसी ।

३) इस काव्यधारा की तीसरी विशेषता वे कविताएँ है, जो अपने आश्रयदाता की झुठी-सच्ची प्रशंसा, उनकी वीरता के बखान और उनके मनोरंजनार्थ लिखी गई है । पृथ्वीराज रासो की वीरगाथात्मक उक्तियाँ या बिहारी देव, धनानंद, रत्नाकर, कबीर, तुलसी, मीरा, रसखान इत्यादि की कविताएँ इसी कोटि में आती है ।

कविता का महत्व :

कविता का महत्व पूर्वी और पश्चिमी सभी देशों में समान रूप से स्वीकार किया गया है । एक ओर अग्नि पुराण का रचयिता काव्य-रचयिता को ब्रह्मा के समकक्ष महत्व प्रदान करता है तो दूसरी ओर शेक्सपीयर कवि के एक नूतन सृष्टि का रचयिता घोषित करता है, देखिए -

अपारे खलु संसारे कविरेव प्रजापतिः ।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ।।

- व्यास

The forms of things unknown, the poet's pen Turns them to shapes and gives to airy nothings A local habitation and a name.

वस्तुतः भावनाओं को आन्दोलित करने की जो शक्ति कविता में है, वह साहित्य के किसी अन्य रूप में नहीं मिलती । आधुनिक युग में बौद्धिकता के विकास के साथ-साथ मानवीय जीवन में रागात्मक तत्वों का ह्रास होता जा रहा है, अतः कुछ विद्वानों के मत में कविता का महत्व भी न्यून होता जा रहा है, किन्तु यह मत भ्रान्तिमूलक है । जिस वस्तु का जितना अधिक अभाव होगा, उतनी ही उसके मूल्य में अभिवृद्धि होगी - इस नियम के अनुसार भावी युग की बौद्धिक शुष्कता से पीडित मानवता को काव्य-उपवन की शीतल हरियाली और भी अधिक अपेक्षित होगी । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में - **''ज्यों-ज्यों सभ्यता बढती जायगी, त्यों-त्यों कवियों के लिए काम बढता जायगा । मनुष्य के हृदय की वृत्तियों से सीधा सम्बन्ध रखनेवाले रूपों और व्यापारों को प्रत्यक्ष करने के लिए उसे बहुत से पर्दों को हटाना पडेगा । इससे यह स्पष्ट है कि ओर कविता की आवश्यकता बढत्ती जाएगी, दूसरी ओर कवि-कर्म कठिन होता जाएगा ।''** अतः कविता का महत्व भविष्य में

भी अक्षुण्ण रहेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं । हाँ, इतना भय अवश्य है कि कहीं कृत्रिम कवियों के बौद्धिक क्रिया-कलापों के फेर में पडकर स्वयं कविता का रूप ही विकृत न हो जाय, जैसा कि आजकल हो रहा है ।

आधुनिक काल :-

(संवत् 1900 से वर्तमान काल तक)

आधुनिक कालीन हिन्दी पद्य साहित्य के विकास पर यदि हम विहंगम द्रष्टि डालें तो इसके विकास का इतिहास करीब सौ वर्ष प्राचीन है । इतने दीर्ध अन्तराल में सामाजिक क्षेत्र में अनेक परिवर्तन हुए । परिवर्तन के ही परिणाम स्वरूप काव्य-जगत में नवीन प्रवृत्तियों, काव्य-शैलीयों तथा अनेक विचारधाराओं का विकास हुआ । विज्ञान के क्रान्तिकारी आविष्कारों के कारण हमारा सम्बन्ध देश की सीमा को लाँधकर अन्य विदेशी राष्ट्रों के साथ हुआ । सम्पर्क के कारण विदेशी साहित्य का हमारे साहित्य पर व्यापक प्रभाव पडा । इससे काव्य-रूप में भी नवीनता का प्रादुर्भाव हुआ । मनीषियों ने आधुनिक कालीन कविता के इस दीर्धकालीन इतिहास को अनेक भागों में विभक्त किया है । विभाजन काव्य की प्रवृत्तियों को आधार मानकर किया गया है, जो छात्रों की सुविधा की द्रष्टि से निम्न प्रारूप में प्रस्तुत किया जा रहा है ।

हिन्दी की आधुनिक काव्य-धारा :-

हिन्दी कविता के आधुनिक काल की स्थिति इससे सर्वथा भिन्न है । यह सन्यासियों अथवा दरबारों में आश्रय प्राप्त रचनाकारों द्वारा लिखा गया साहित्य नहीं है, बल्कि जन साधारण के बारे में, जन साधारण के बीच में उत्पन्न लेखकों और रचनाकारों द्वारा रचा गया साहित्य है । इन्हीं अर्थों में हिन्दी की आधुनिक काव्य-धारा, जो सन् 1870 के आस-पास भारतेन्दु के प्रयत्नों से आरंभ हुई, मध्यकालीन धारा से अलग और आधुनिक है । उसमें नए सिरे से समाज और व्यक्ति की खोज शुरू हुई है । इस खोज को कविता में प्रतिष्ठित करने के लिए सबसे पहला काम ब्रजभाषा को छोडकर काव्यभाषा के रूप में खडीबोली ही सर्वश्रेष्ठ मानी गई । ब्रजभाषा सदियों से जिस तरह संप्रदाय अथवा प्रशस्ति काव्य के लिए प्रयुक्त होती रही थी, वह अपने संस्कारों और स्वभावों से भारतीय आधुनिक समस्याओं की अभिव्यक्ति के लिए अनुकूल नहीं रही थी । खडीबोली का काव्यभाषा के रूप में अपनाया जाना जागरूक हिन्दी कवियों की इसी खोज का परिणाम है । भाषा की यह खोज आधुनिक हिन्दी कविता की दूसरी प्रमुख विशेषता है ।

स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, रामकृष्ण परमहंस, महात्मा गांधी, केशवचन्द्र सेन - इसी नए भारतीय जन-जागरण के परिशोधक और व्याख्याता है । हरिऔंध, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी वर्मा - इन सभी कवियों ने भारतीय इतिहास, पुराण की नयी व्याख्या को अपनी रचनाओं में प्रतिष्ठित किया ।

इसीलिए हरिऔंध के कृष्ण या गुप्तजी के राम, सूर या तुलसी के राम-कृष्ण नहीं, बल्कि आधुनिक भारतीय जीवन की समस्याओं से और उसके समाधान कर्ता आज के प्रतीक चरित्र है ।[४]

आधुनिक हिन्दी कविता के चार युग :-

आधुनिक काल में हिन्दी कविता के विकास क्रम को द्रष्टिगत रखते हुए इसे निम्नलिखित प्रकार से चार युगों में विभाजित किया जा सकता है ।

१) भारतेन्दु युग

२) द्विवेदी युग

३) छायावाद युग

४) प्रगति-प्रयोग युग

रीतिकालीन काव्यधारा अभी पूर्णरूपेण समाप्त नहीं हुई थी कि हिन्दी कविता ने नयी करवट ली । यह कविता अपने प्राचीन संस्कारों को सुरक्षित रखते हुए आधुनिक भावभूमि पर प्रतिष्ठित हो रही थी । इस समय जिन साहित्यकारों ने अपने आपको साहित्य के माध्यम से प्रतिष्ठित किया, उनमें कवित्व की मात्रा बहुत कम थी । इसके विपरीत समाज-सुधारक, प्रचारक और पत्रकार वे अधिक थे । इसका परिणाम यह निकला की इन कवियों ने अपने-अपने पत्रों के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक मिथ्याचारों को प्रकाशित किया ।

१) भारतेन्दु युग :

भारतेन्दु काल में व्यापारी अंग्रेज राजनीतिक क्षेत्र में भी अपने कदम सक्रिय रूप से बढा रहे थे । देश आर्थिक पतन के कगार पर खडा था । भारत के देश-प्रेमियों ने अंग्रेजों की इस दूषित चाल को भली प्रकार जान लिया । सन् 1857 का विद्रोह उसी प्रतिक्रिया का परिणाम था । भारतवासियों का अंग्रेजों के विरूद्ध प्रथम स्वातंत्र्य संग्राम था, लेकिन परस्पर फूट के कारण ये सफल नहीं हो सका । अंग्रेजों ने ईष्ट इंडिया कम्पनी को भंग कर दिया तथा भारत पर पूरी तरह से अपना शासन प्रारंभ कर दिया । इसके फलस्वरूप पराजित भारत राष्ट्र में असंतोष एवं क्रोध के भाव जाग्रत हो गए । लोगों में राष्ट्र-प्रेम की भावना का प्रादुर्भाव हुआ । रीतिकाल के श्रृंगार-परक साहित्य से लोगों का घ्यान भंग होने लगा । देश के लोग भारत की दुर्दशा देखकर कराह उठे । भारतेन्दु हरिशचन्द्र का आविर्भाव ऐसे ही संक्रान्त काल में हुआ । आपको आधुनिक चेतना का जनक ठहराया गया है । भारतेन्दु इस युग की सम्पूर्ण गतिविधियों के मूलबिन्दु है । इस युग में ब्रजभाषा में भी काव्य रचना की गई । रीतिकाल का भी न्यूनाधिक प्रभाव परिलक्षित है । इस काल के साहित्य में देश-प्रेम की भावना मुखरित है । अंग्रेजी सभ्यता एवं साहित्य के प्रति भी करारा व्यंग्य द्रष्टिगोचर है ।

भारतेन्दु कालीन कविता के विकास में जिन कवियों ने विशेष योगदान दिया, उनके नाम हैं - प्रताप नारायण मिश्र, अंबिकादत्त व्यास, रायकृष्णदास आदि । इन सभी कवियों ने देश-भक्ति और राज-भक्ति के स्वर से सम्पूर्ण वातावरण को भर दिया । भारतेन्दु युग आधुनिक कविता का प्रवेशद्वार है । भाषा की द्रष्टि से ब्रजभाषा को काव्य के लिए अपनाया गया, लेकिन गद्य के लिए खडी बोली को ही श्रेयस्कर समझा गया । डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में यह युग - ''प्रथम उत्थान नवयुग का आरंभ मात्र है । इसलिए हमें इस समय की कविता में उस कलात्मकता के दर्शन नहीं होते, जो कालान्तर में सतत प्रयत्न से प्रकट हुई । काव्य-विषयों के सर्वथा नवीन होने के कारण इनकी काव्यपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए समय की आवश्यकता थी ।'' प्रमुख रूप से इस युग की कविता में जन-जीवन का सजीव चित्रण मिलता है । संक्षेप में कहा जा सकता है कि ये कवि अपने कर्तव्य और दायित्व के प्रति पूर्ण-रूपेण सजग थे ।

धार्मिक सहिष्णुता तथा मानवतावादी द्रष्टिकोण का भी विकास हुआ । इस समय के साहित्यकार बदरीनारायण चौधरी एवं लालानिवास भारतेन्दुजी से ही प्रेरणा ग्रहण किए हुए है । पद्य में श्रृंगार एवं भक्ति भावना के साथ देश-प्रेम का भी समावेश हुआ । भारतेन्दु युग में आलोचना, कहानी, नाटक एवं निबन्ध लिखे गए । देशवासियों के मन-मानस में इस युग में प्रचार एवं प्रसार की भावना भी विद्यमान है । इस युग में श्रीधर पाठक ने प्रकृति के दिव्य एवं संश्लिष्ट चित्र अंकित किए है । इस युग में भाषा का उत्तरोत्तर विकास हुआ । देश एवं समाज की भव्य-भावनाएँ जन-मानस में जाग्रत हुई ।

''भोज मरे अरू विक्रमहू किनको अब रोइ कै काव्य सुनाइये ।
भाषा भई उरदू जग की अब तो इन ग्रन्थन नीर डुबाइये ।
राजा भये सब स्वारथ पीन अमीरहू हीन किन्है दरसाइये ।
नाहक देनी समस्या अबै यह ''ग्रीषमैं प्यारे हिमन्त'' बनाइये ।''

- भारतेन्दु ग्रन्थावली

जिस युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अवतार धारण किया, वह हिन्दी भाषा और साहित्य के लिए कितना प्रतिकूल था, इसका आभास उपर्युक्त छन्द से मिलता है । यद्यपि अंग्रेजों का शासन काल भारत में बहुत पूर्व फैल चुका था, किन्तु फिर भी भारतीय जनता को आशा थी कि फिरंगी यहाँ अधिक देर नहीं टिकेंगे । पर 1857 ई. की क्रान्ति की विफलता ने तो इस आशा को भी निराशा में परिणत कर दिया था । इस क्रान्ति से लेकर सन् 1885 ई. तक का समय राजनीतिक द्रष्टि से भारतीय जनता के लिए घोर निराशा और गहरी सुषुप्ति का युग था, जिसमें किसी भी प्रकार की चेतना के दर्शन नहीं होते । ऐसी प्रगाढ निंद्रा में संभव था कि भारतीय जनता नैतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक द्रष्टि से भी सदा के लिए लुट जाती, उसके आदर्शों का पतन हो जाता और

वह प्राणविहीन होकर अपना अस्तित्व मिटा देती, किन्तु ऐसा नहीं हुआ । इसका क्या कारण है ?

बात यह है कि इसी युग में दो ऐसी महान आत्माओं का अवतरण हुआ, जिन्होंने सोयी हुई भारतीय जनता के चारों ओर घुमकर पहरा दिया । एक ने उसकी नैतिक सामाजिक धरोहर की रक्षा की, तो दूसरे ने उसके सांस्कृतिक एवं साहित्यिक गौरव को बचाया । एक ने उसे तर्क के ऐसे तीखे शस्त्र दिए जिनकी सहायता से वह अपने धर्म के विरोधियों से युद्ध कर सकी, तो दूसरे ने उसे वह शक्ति और उत्साह प्रदान किया, जिसके बल पर वह आगे बढ सकी । एक ने आत्म गौरव को जागृत किया, दूसरे ने उसका घ्यान अपनी हीन अवस्था की ओर आकर्षित किया । एक ने उसके मस्तिष्क को समृद्ध बनाया तो दूसरे ने उसके हृदय को सशक्त किया । एक ने समाज को नया जीवन प्रदान किया तो दूसरे ने राष्ट्रीय भावों को आन्दोलित किया । कहने की आवश्यकता नहीं - इनमें एक स्वामी दयानन्द सरस्वती थे तो दूसरे भारतेन्दु ।

उनके काव्य में मुख्यतः निम्नांकित प्रवृत्तियाँ मिलती है -

१) भक्ति भावना एवं धार्मिक उपदेश

२) सौन्दर्य और प्रेम की व्यंजना

३) देश प्रेम की व्यंजना

४) हास्य और व्यंग्य

भारतेन्दु-काव्य की विभिन्न प्रवृत्तियों से स्पष्ट है कि इस महाकवि ने भक्ति, शृंगार, राष्ट्र-प्रेम, हास्य-व्यंग्य आदि विभिन्न भावनाओं का चित्रण सफलतापूर्वक किया है । वस्तुतः उनका काव्य किसी-न-किसी रूप में वीरगाथा-काल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल - चारों कालों के साहित्य का प्रतिनिधित्व करता है । आचार्य शुक्ल के शब्दों में - **''अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो वे पद्माकर और द्विजदेव की परम्परा में दिखाई पडते थे, दूसरी ओर बंगदेश के माइकेल और हेमचन्द्र की श्रेणी में । एक ओ तो राधाकृष्ण की भाँति झूमते हुए नई भक्तमाल गूंथते दिखाई देते थे, दूसरी ओर मंदिरों के अधिकारियों और टीकाधारी भक्तों के चरित्र की हंसी उडाते और स्त्री शिक्षा, समाज-सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाए जाते थे । प्राचीन और नवीन का यही सुन्दर सामंजस्य भारतेन्दु की कला का विशेष माधुर्य है..... प्राचीन और नवीन के उस संधिकाल में जैसी शीतल कला का संचार अपेक्षित था, वैसी ही शीतल कला के साथ भारतेन्दु का उदय हुआ, इसमें संदेह नहीं ।''**

वस्तुतः भारतेन्दु की समता हिन्दी का कोई कवि नहीं कर सकता । अपने साँवरे के गुणों का गान करनेवाले सूरदास में भावुकता तो थी, किन्तु उनकी दृष्टि एक ही क्षेत्र तक सीमित रही । महाकवि तुलसीदास का काव्यक्षेत्र तो व्यापक था, किन्तु उनका

आविर्भाव ही उस युग में हुआ था, जब कि आधुनिक राष्ट्रवादी द्रष्टिकोण का विकास नहीं हुआ था । रीतिकालीन कवि भी कोरी शृंगारिकता तक ही सीमित थे । एक सच्चा भक्त, एक सच्चा रसिक और सच्चा राष्ट्र-भक्त तथा प्राचीन और नवीन - दोनों युगों का प्रतिनिधि कवि यदि किसी को कह सकते है, तो वह हमारी द्रष्टि में एकमात्र भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही हैं ।[९]

२) द्विवेदी युग :

द्विवेदी युग का समय सन् 1901 से 1920 तक ठहराया गया है । द्विवेदी ही इस युग के जनक एवं प्रेरक है । द्विवेदी जी के साहित्य क्षेत्र में अवतरित होने के फलस्वरूप खडीबोली का आन्दोलन जोरों से प्रारम्भ हुआ । आपने मांग की कि हिन्दी की गद्य एवं पद्य की भाषा खडीबोली होनी चाहिए । ब्रजभाषा के समर्थकों ने इसका विरोध किया । द्विवेदीजी के आह्वान पर खडीबोली के पक्षधर कवियों ने खडीबोली में कविता करना प्रारंभ कर दिया । मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, 'हरिऔंध' आदि ने महाकाव्य मुक्तक एवं खण्डकाव्य खडीबोली में लिखे । इन कवियों ने अपनी रचना का आधार पौराणिक कथाओं को बनाया है ।

भारतीय प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति श्रद्धा व्यक्त की गई है । प्राचीन इतिहास को भी वाणी मिली है । भाषा का इस युग में परिष्कार हुआ है । संस्कृत के सरल शब्दों का प्रयोग किया गया है । अतुकान्त छन्दों का प्रयोग भी अवलोकनीय है । खडीबोली के कवियों में मैथिलीशरण गुप्त एवं हरिऔंध के अतिरिक्त रामचरित उपाध्याय, माखनलाल चतुर्वेदी एवं गोपालशरण सिंह के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

नव-जागरण की जिस भावना का उन्मेष भारतेन्दु युग में हुआ था, द्विवेदी युग में उसकी व्यापक प्रतिष्ठा 'सुधारवाद' के रूप में हुई । स्वामी विवेकानंद, रामकृष्ण और दयानन्द सरस्वती के उपदेशों ने लोक जीवन में नैतिक मूल्यों का उन्नयन किया । इसके द्वारा संचालित और प्रेरित आंदोलनों का रूप सामाजिक तथा धार्मिक ही था । स्वयं गांधीजी का आन्दोलन भी धार्मिक सुधारों से ही विकसित होकर राजनीतिक लक्ष्यसिद्धि की ओर उन्मुख हुआ था । इन आन्दोलनों का परिणाम यह हुआ कि जीवन के सभी क्षेत्रों में सुधारों की धूम मच गयी और काव्य के पुरातन विषय पूर्णतः छोड दिये गये । ब्रजभाषा का स्थान खडीबोली ने ले लिया । काव्यजीवन के अधिक निकट आ गया । सन् 1900 ई. में 'सरस्वती' के माध्यम से अनेक नयी प्रतिभाओं को मंच पर लाये । डॉ. श्रीकृष्णलाल के शब्दों में - **''पच्चीस वर्षों में ही एक अद्‌भूत परिवर्तन हो गया । मुक्तकों के 'वन-खंड' के स्थान पर महाकाव्य, आख्यान, काव्य, प्रेमाख्यान काव्य, प्रबन्ध-रीति काव्य और गीतों से सुसज्जित काव्योपवन का निर्माण होने लगा ।''** द्विवेदीजीने व्याकरण का 'रंदा' चलाकर तमाम अशुद्धियों और लयर प्रयोगों को छील निकालने का अपूर्व उत्साह प्रदर्शित किया ।

द्विवेदी युगीन काव्य की विशेषताएँ इस प्रकार है :

१) बुद्धिवाद का प्रभाव ।

२) समाज का यथार्थ चित्रण ।

३) खडीबोली की प्रतिष्ठा ।

४) समाज-सुधार की भावना ।

बुद्धिवाद के प्रभाव कु फलस्वरूप द्विवेदी युग में चमत्कार प्रधान घटनाओं का अंकन नहीं किया है । काव्य के विषय जनसाधारण में फैली गरीबी, सामाजिक अन्याय, नारी-अधोगति तथा अशिक्षा है । खडीबोली की काव्यभाषा के रूप में पूर्ण प्रतिष्ठा है ।

द्विवेदी युग का काव्य प्रायः वर्णनात्मक है । महावीर प्रसाद द्विवेदीने करीब २० साल तक 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का सम्पादन किया । द्विवेदीजी उच्चकोटि के समालोचक, लेखक एवं सम्पादक थे । आपने अनेक नवीन लेखकों तथा कवियों का मार्गदर्शन किया ।

प्रतिभाशाली श्रेष्ठ कवियों की गणना में पं. कामताप्रसाद गुरू, पं. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', पं. श्रीधर पाठक, पं. नाथूराम शंकर शर्मा एवं जगन्नाथ दास रत्नाकर के नाम भी उल्लेखनीय है । द्विवेदी जी ने गद्य एवं पद्य लिखकर कलाकारों का मार्गदर्शन किया । इस युग का आदर्शवाद बौद्धिक आदर्शवाद था । इस युग में मैथिलीशरण गुप्त ''राम, तुम मानव हो'' का प्रश्न करन। को लाचार थे । राम चरित उपाध्याय राम के हेतु ''ईश आपको समझ सभी सुख से सोते थे'' भावनाएँ व्यक्त करके प्राचीन एवं नवीन में समन्वय करने की चेष्टा कर रहे थे । ''सुधारवादी युग (भारतेन्दु युग) गद्य के जन्म का युग था, जिसमें प्रादेशिकता एवं सरलता थी । आदर्शवादी युग (द्विवेदी युग) गद्य के विकास का युग था, जिसमें उसके राष्ट्रीय रूप की प्रतिष्ठा हुई । वह और स्वभावतः काव्य भी, राष्ट्रीय स्तर की संस्कृत निष्ठता से स्वतः सम्पन्न हो गया ।''

काव्य हो अथवा गद्य, इस युग में सर्वत्र आदर्शवाद की छाप अंकित है । आदर्श देश एवं जीवन के कण-कण में समाया हुआ था ।

द्विवेदी युग के अन्त में बंगला, अंग्रेजी तथा हिन्दी की पूर्व परम्परा के आधार पर एक नवीन प्रवृत्ति का विकास हुआ जिसे छायावाद के नाम से पुकारा जाता है ।[१०]

हिन्दी कविता : विविध वाद :

२) छायावादी युग :

हिन्दी कविता के क्षेत्र में प्रथम महायुद्ध (1914-18 ई.) के आस-पास एक विशेष काव्य-धारा का प्रवर्तन हुआ, जिसे 'छायावाद' की संज्ञा दी गई है । यह नामकरण

किस आधार पर तथा किसके द्वारा किया गया, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है । जहाँ तक 'छाया' और 'वाद' का सम्बन्ध है, 'छायावाद' काव्य के स्वरूप या उसके लक्षणों से इनका कोई मेल नहीं है । आचार्य शुक्ल का विश्वास था कि बंगला में आध्यात्मिक प्रतीकवादी रचनाओं को छायावाद कहा जाता था, अतः हिन्दी में भी इस प्रकार की कविताओं का नाम छायावाद चल पडा । किन्तु डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस मान्यता का खण्डन करते हुए कहा है कि बंगला में 'छायावाद' नाम कभी चला ही नहीं । स्वयं छायावादी कवियों ने इस विशेषण को बडे प्रेम से स्वीकार किया है, एक ओर श्री जयशंकर प्रसाद लिखते है –

''मोती के भीतर छाया जैसी तरलता होती है, वैसी ही कान्ति की तरलता अंग में लावण्य कही जाती है ।..... छाया भारतीय द्रष्टि से अनुभूति की भंगिमा पर निर्भर करती है । ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक-विधान तथा उपचार-वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृत्ति छायावाद की विशेषताएँ है । अपने भीतर से पानी की तरह आन्तर-स्पर्श करके भाव-समर्पण करनेवाली अभिव्यक्ति छाया..... कान्तिमय होती है ।'' दूसरी ओर महादेवीजी भी प्रसाद के स्वर में स्वर मिलाती हुई कहती है – ''सृष्टि के बाह्याकार पर इतना लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अभिव्यक्ति के लिए रो उठा । स्वच्छन्द छन्द में चित्रित उन मानव अनुभूतियों का नाम छाया उपयुक्त ही था और मुझे तो आज भी उपयुक्त लगता है ।''

प्रत्येक क्षण अपना मूल्य लेकर आता है । इतना ही नहीं मूल्य के साथ-साथ उसकी कुछ अपनी विशेषताएँ भी होती हैं, जो उसे दूसरे समय अथवा काल से अलग बिठा देती है । कई बार यह परिवर्तन विरोध लेकर आता है और कई बार यह परम्परा के विकास में एक कडी और जोड देता है । यही क्रम साहित्य में भी चलता है । छायावाद द्विवेदी-युगीन कविता के प्रति विरोध करके चला तथा उसने नीरसता-शुष्कता के प्रति आवाज उठाई । भाषा के क्षेत्र में भी विषय के क्षेत्र में भी । इसी कारण से छायावादी कवि जब साहित्य में आए तो कुछ नवीनता लेकर, कुछ प्रेम लेकर और सौन्दर्य-जलधि की बूंदे लेकर ।

आचार्य शुक्ल के शब्दों में – **''छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए । एक तो रहस्यवाद के अर्थ में जहाँ उसका सम्बन्ध काव्यवस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम के आलम्बन मानकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है । छायावाद का दूसरा प्रयोग काव्यशैली या पध्धति के व्यापक अर्थ में है ।''**

डॉ. रामकुमार ने भी शुक्ल की तरह छायावाद को रहस्यवाद से भिन्न माना है । इन्होंने लिखा है कि – **''परमात्मा की छाया आत्मा में पडने लगती है और आत्मा की छाया परमात्मा में यही छायावाद है ।''**

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में - **''छायावाद एक दार्शनिक अनुभूति है ।''** इस प्रकार इन्होंने छायावाद को रहस्यवाद से कुछ मिलता-जुलता बताया ।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार - **''मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आघ्यात्मिक छाया का भाव मेरे विचार में छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है ।''**

डॉ. देवराज का कहना है कि - **''छायावाद गीत काव्य है, प्रकृति काव्य, प्रेम का काव्य है ।''**

छायावाद के प्रमुख कवि और उनका काव्य :

छायावाद के चार प्रमुख स्तम्भ सर्वश्री जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी वर्मा है । छायावादी काव्यशैली का उदय माखनलाल चतुर्वेदी और पन्त से न मानकर 'प्रसाद' के काव्य से मानना चाहिए । पन्त की अपेक्षा प्रसाद काव्य के क्षेत्र में पहले आए । 'झरना' की भूमिका में प्रकाशकीय वक्तव्य में स्पष्ट लिखा है - **''छायावाद के प्रवर्तन का श्रेय इन्हीं को है - जिस शैली की कविता को हिन्दी में छायावाद कहा गया है, उसका आरंभ इसी ग्रंथ से हो रहा है ।''**

श्री जयशंकर प्रसाद प्रारम्भ में ब्रजभाषा में कविताएँ लिखते थे, किन्तु 1913-14 से वे खडीबोली में लिखने लग गये । उनके प्रमुख काव्य-ग्रंथ ये हैं - चित्राधार, प्रेम-पथिक, करूणालय, महाराणा का महत्व, कानन-कुसुम, झरना, आँसु, लहर, कामायनी । उनकी अन्तिम काव्यरचना 'कामायनी' सन् 1936 में रचित हुई थी । इन रचनाओं में से चित्राधार, करूणालय और महाराणा का महत्व को छोडकर शेष सभी छायावाद की प्रवृत्तियों से ओत-प्रोत है । वैसे गौणरूप से इनमें भी छायावाद की कुछ विशेषताएँ मिलती है । 'प्रेम-पथिक' एक लघु प्रबन्ध-काव्य है, जिसमें एक असफल प्रेम की कहानी नायक के मुँह से कहलाई गई है । अनुभूतियों से परिपूर्ण होने के कारण यह रचना अत्यन्त मार्मिक बन गई है । जब नायिका का विवाह किसी अन्य से हो रहा था तो निराश प्रेमी के हृदय के टुकडे-टुकडे हो रहे थे :

किन्तु कौन सुनता उस शहनाई में हृतंत्री झनकार
जो नौबतखाने में बजती थी, अपनी गहरी धुन में -
रूखा शीशा जो टूटे तो सब कोई सुन पाता है
कुचला जाना हृदय-कुसुम का किसे सुनाई पडता है !

वस्तुतः प्रसाद छायावाद के प्रवर्तक के रूप में ही नहीं, उसके नेता और प्रौढ तम कवि के रूप में भी सर्वश्रेष्ठ छायावादी कवि हैं ।

छायावाद के क्षेत्र में पंत और निराला साथ-साथ ही आये । पन्तजी की रचनाओं

का प्रकाशन-क्रम यह है - 'वीणा, ग्रन्थि, पल्लव, गुंजन, युगान्त, युग-वाणी, ग्राम्या, युगान्तर, उत्तरा' आदि । पंतजी सन् 1938 के लगभग छायावादी से प्रगतिवादी बन गये, अतः इस युग से पूर्व की रचनाओं में ही छायावादी प्रवृत्तियाँ मिलती है ।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने कविताएँ लिखना सन् 1915 से ही आरंभ कर दिया था, किन्तु उनका प्रथम काव्य-संग्रह 'परिमल' सन् 1929 ई. में प्रकाशित हुआ । निरालाजी 'तुलसीदास' काव्य के अनन्तर प्रगतिवाद से प्रभावित हो गये थे । अतः उनके परवर्ती ग्रन्थों में छायावाद लुप्त है । निरालाजी की रचनाओं में वैसे तो छायावाद की सभी प्रवृत्तियाँ उपलब्ध होती है, किन्तु उसे अद्वैत दर्शन की सुदृढ आधार-भूमि प्रदान करके रहस्य-युक्त बनाने का श्रेय सर्वाधिक 'निराला' जी को है । निरालाजी की शैली में अस्पष्टता एवं कठोरता अन्य कवियों से अधिक है ।

महादेवी छायावाद के क्षेत्र में सबसे पीछे आई, किन्तु उसका सबसे अधिक साथ भी वही दे रही है । उनकी कविताओं के संग्रह - 'निहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्यगीत' और 'दीपशिखा' आदि शीर्षकों से प्रकाशित हुए है । उनके सभी संग्रहों की मूल प्रकृति प्रायः एक है - पंत और निराला की भाँति उनकी राह में नये-नये मोड या परिवर्तन नहीं आते । उनके काव्य में छायावादी शैली की सभी प्रमुख विशेषताएँ द्रष्टिगोचर होती है, किन्तु विषयगत प्रवृत्तियों की द्रष्टि से उनमें छायावाद से रहस्यवाद अधिक है । नारी होने के कारण वे प्रकृति के मानवी रूप से वैसा स्वच्छन्द-व्यवहार नहीं कर सकीं, जैसा निराला और पंत ने किया है । लौकिक प्रणय और स्थूल सौन्दर्य के चित्रण में भी उन्हें संकोच होना स्वाभाविक था, अतः छायावाद के विभिन्न विषयों में उनके पास अलौकिक प्रेम, विरह और रूदन ही शेष रह गया ।

उपर्युक्त चार प्रमुख कवियों के अतिरिक्त भगवतीचरण वर्मा, रामकुमार वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, अंचल, मोहनलाल महेता आदि का भी छायावाद के साथ नाम लिया जाता है, किन्तु इनमें छायावाद की प्रवृत्तियाँ आंशिक रूप में ही मिलती है ।

छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ :

छायावादी काव्य में मिलनेवाली प्रवृत्तियों को हम मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं -

क) विषयगत प्रवृत्तियाँ :

छायावादी कवियों ने मूलतः सौन्दर्य और प्रेम की व्यंजना की जिसे हम तीन खण्डों में विभक्त कर सकते हैं -

१) नारी-सौन्दर्य और प्रेम का चित्रण ।

२) प्रकृति-सौन्दर्य और प्रेम की व्यंजना ।

३) अलौकिक प्रेम या रहस्यावाद का निरूपण ।

प्रसाद, पंत और निराला के काव्य में इसी प्रेयसी के सौन्दर्य के शत-शत चित्र अंकित है । 'कामायनी' की श्रध्धा का सौन्दर्य-चित्रण द्रष्टव्य है -

''नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघवन बीच गुलाबी रंग ।।''

छायावादी कवियों ने सौन्दर्य के स्थूल-चित्रण की अपेक्षा उसके सूक्ष्म प्रभाव का ही अंकन किया है । उसमें अश्लीलता, नग्नता एवं स्थूलता प्रायः न के बराबर हैं ।

प्रेम के क्षेत्र में छायावादी कवि किसी प्रकार की रूढि, मर्यादा या नियमबध्धता को स्वीकार नहीं करते । 'निराला' ने 'प्रेयसी' में प्रेम का आदर्श स्थापित करते हुए लिखा है -

दोनों हम भिन्न वर्ण, भिन्न जाति, भिन्न रूप,
भिन्न धर्म भाव, पर केवल अपनाव से, प्राणों से एक थे ।

प्रेम निरूपण के क्षेत्र में इन्हें सबसे अधिक सफलता विरहानुभूतियों की ही व्यंजना में मिली है । कुछ पंक्तियाँ देखिए -

''विस्मृत हों वे बीती बातें, अब जिनमें कुछ सार नहीं ।
वह जलती छाती न रही, अब वैसा शीतल प्यार नहीं ।।
सब अतीत में लीन हो चलीं आशा, मधु अभिलाषाएँ ।
प्रिय की निष्ठुर विजय हुई, पर यह तो मेरी हार नहीं ।।

- प्रसाद

शून्य जीवन के अकेले पृष्ठ पर,
'विरह' अहद, कराहते इस शब्द को,
किस कुलिश की तीक्ष्ण, चुभती नोक से,
निठुर विधि ने अश्रुओं से है लिखा !!

- पन्त

एक बार यदि अजान के अन्तर से उठ आ जातीं तुम !
एक बार भी प्राणों की तम-छाया में आ कह जातीं तुम !
सत्य हृदय का अपना हाल !
कैसा था अतीत वह, अब बीत रहा है कैसा काल !
मैं न कभी कुछ कहता, बस तुम्हें देखता रहता !

- निराला

उपर्युक्त विरह-वर्णन वेदनानुभूतियों से ओत-प्रोत है । विरही हृदय की पीडा स्वतः

ही मुखरित हो रही है, उनकी नाप-जोख करने के लिए शारीरिक दुर्बलता, क्षीणता या व्याधि का उल्लेख यहाँ नहीं ! प्रेमी और प्रेमिका - दोनों में से किसी के भी स्थूल अंगों या बाह्य चेष्टाओं का निरूपण किए बिना ही हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं को साकार रूप में प्रस्तुत कर देना छायावादी कला का सबसे बडा जादू है ।

निराला की 'जूही की कली' को भले ही कुछ लोग प्रकृति-वर्णन का श्रेष्ठ उदाहरण मानें, किन्तु हमारी द्रष्टि में तो वह पुरूष और नारी के संगम का ही चित्रण है, उसका भौंरा कोई और नहीं, वे कन्दर्प देव ही है, जो छायावादी कवियों के हृदय में सोए हुए थे और 'जूही की कली' किसी जीती-जागती रति देवी की प्रतिच्छाया मात्र है -

सोती थी
जाने कैसे प्रिय आगमन वह
नायक ने चूमे कपोल
डोल उठी वल्लरी की जड
जैसे हिंडोल !

- 'जूही की कली'

इस द्रश्य को 'प्रकृति-चित्रण' बताना अपनी आँखों को धोखा देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं । हाँ, इतना अवश्य है कि प्रकृति का मानवीकरण - अपितु 'नारीकरण' करने में इन्होंने अपनी काव्य-कुशलता का अच्छा परिचय दिया है ।

प्रेम जितना गहरा होगा, विरह उतना ही अधिक वेदनापूर्ण और दुःसह्य प्रतीत होगा । महादेवी को तो अभी विरह और मिलन का ही अन्तर ज्ञान नहीं है -

विरह का येग आज दिखा
मिलन के लघु पल सरीखा
दुःख सुख में कौन तीखा
मैं न जानी औ न सीखा ।।

(आधुनिक कवि. पृष्ठ-६८)

- **''हेरी मैं तो प्रेम दिवाँणी !**
मेरो दरद न जाणै कोय !!

धायल की गति घायल जाणे !
जे किण घायल होय !!

वस्तुतः मीरा का कहना ठीक था - जो घायल हो, वहीं घायल के दर्द को समझ सकता है, किन्तु केवल घायलपन का अभिनय करनेवाले पात्रों के लिए दर्द और दर्द का न होना - दोनों एक जैसे हैं ।

ख) विचारगत प्रवृत्तियाँ :

हम देखते हैं कि छायावादी कवियों ने प्रत्येक क्षेत्र में आदर्श, व्यापक एवं सूक्ष्म द्रष्टिकोण को अपनाया है । वे जीवन के स्थूल उपकरणों की अपेक्षा सूक्ष्म गुणों को अधिक महत्व देते है । प्रसाद की 'कामायनी', पंत के 'गुंजन' और निराला के 'परिमल' के कुछ स्थलों में उनका विचार-पक्ष व्यक्त हुआ है । कुछ उदाहरण बताए गए है -

१) अद्वैतवाद :

तुम तुंग हिमालय श्रृंग,
और में चंचल-गति सुर-सरिता ।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास,
और मैं कान्त-कामिनी कविता ।।

- निराला

२) व्यापक मानवतावाद :

औरों को हँसते देखो मनु,
हँसो और सुख पाओ ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो,
सब को सुखी बनाओ ।।

- प्रसाद

३) समन्वयवाद :

ज्ञान दूर कुछ किया भिन्न है,
इच्छा पूरी क्यों हो मन की !
दोनों मिल एक न हो सके,
यही विडम्बना है जीवन की ।।

- प्रसाद

४) प्रेम और सहानुभूति का सन्देश :

तप रे मधुर मन !
विश्व-वेदना में तप प्रतिपल !

- पन्त

ग) शैलीगत प्रवृत्तियाँ :

छायावादी शैली की प्रमुख विशेषताएँ ये हैं - १) मुक्तक गीति-शैली २) प्रतीकात्मकता ३) प्रचीन एवं नवीन अलंकारों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग ४) कोमल-कान्त, संस्कृतमय शब्दावली ।

वस्तुतः छायावादी कवियों के कारण हिन्दी की अभिव्यंजना-शक्ति में अभूतपूर्व वृध्धि हुई है । छायावादी शैली की चित्रात्मकता, लाक्षणिकता एवं व्यंग्यात्मकता की प्रशंसा आचार्य शुक्ल जैसे विरोधी आलोचकों ने भी की है ।

भले ही छायावादी इस धरती पर न रमे हो, किन्तु व्यापक आदर्शो एवं सूक्ष्म सौन्दर्य को लेकर चलनेवाला छायावाद अब भी अजर-अमर है !! हाँ, कामायनीकार के शब्दों में हम आज के भूले-भटके छायावादियों से इतना अवश्य कहेंगे -

''हार बैठे जीवन का दाँव,
जीतते जिसको मर कर वीर ।''[११]

३) प्रगतिवादी युग :

'प्रगति' शब्द का अर्थ है - चलना, आगे बढना, अतः प्रगतिवाद का शाब्दिक अर्थ हुआ - वह वाद जो आगे बढने में विश्वास रखता है । इस दृष्टि से इसका अर्थ बहुत व्यापक है, किन्तु आधुनिक हिन्दी में इसका प्रयोग एक विशेष विचार-धारा के लिए ही रूढ हो गया है । दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि साम्यवादी विचारों का प्रचार करनेवाला या साम्यवादी लक्ष्य की पूर्ति में योग देनेवाला साहित्य ही प्रगतिवादी साहित्य कहलाता है ।

प्रगतिवादी साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ :

अस्तु, दर्शन में जो द्वन्द्वात्मक भौतिक विकासवाद है, राजनीति में जो साम्यवाद है, वही साहित्य में प्रगतिवाद है । प्रगतिवाद का सम्बन्ध केवल हिन्दी से ही नहीं, विश्व की विभिन्न भाषाओं से है, अतः हिन्दी के प्रगतिवादी साहित्य पर विचार करने से पूर्व विभिन्न देशों के प्रगतिवादी साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियों पर विचार कर लेना उचित होगा । प्रगतिवादी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं -

धर्म, ईश्वर एवं परलोक का विरोध :

समाज में वर्ग-चेतना उत्पन्न करने तथा शोषित वर्ग को संघर्ष के लिए तैयार करने के लिए सर्वप्रथम ईश्वर, धर्म, परलोक एवं भाग्य सम्बन्धी विचारों का उन्मूलन करना आवश्यक है । जब तक एक मजदूर ईश्वरवादी, धर्म-परायण, परलोक में विश्वास रखनेवाला तथा भाग्यवादी होगा, वह हिंसात्मक क्रांति के लिए तैयार नहीं होगा । शोषक वर्ग इन्हीं अध्यात्मवादी मान्यताओं के बल पर शोषित वर्ग पर अत्याचार करता है । अतः प्रगतिवादी कलाकार 'ईश्वर असफल हो गया है', 'धर्म अफीम का नशा है' - जैसी घोषणाएँ कला के माध्यम से घोषित करता है ।

पूंजीपति वर्ग के प्रति घृणा का प्रचार :

पूँजीपति वर्ग के प्रति घृणा उत्पन्न करने के लिए प्रगतिवादी कलाकार उसके घृणित रूप का चित्रण करता है । प्रायः सभी प्रगतिवादी रचनाओं में एक पूंजीपति को घोर

'स्वार्थी, कपटी, क्रूर एवं निर्दय' के रूप में चित्रित किया जाता है ।

शोषित वर्ग के जीवन की दीनता एवं कटृता का चित्रण :

पूंजीपतियों के प्रति घृणा उत्पन्न करने के साथ-साथ प्रगतिवादी साहित्यकार किसान-मजदूरों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करने के निमित्त उनकी दयनीय दशा का चित्रण करता हुआ दोनों वर्गों के जीवन की विषमता का उद्घाटन करता है ।

नारी के प्रति यथार्थवादी द्रष्टिकोण :

प्रगतिवादी कलाकार नारी के रूपवैभव को कल्पना की आंखों से नहीं देखता, न तो वह उसके सौन्दर्य को स्वर्ग का जादू समझता है और न ही उसकी पूजा करना आवश्यक मानता है । वस्तुतः उसके लिए नारी केवल नारी है, जो पुरूष की ही भांति स्थूल सृष्टि का एक अंग है । यथार्थवाद के नाम पर कहीं-कहीं इन कवियों ने पुरूष और नारी सम्बन्धी गोपनीय व्यापारों को भी नग्न रूप में प्रस्तुत कर दिया है ।

सरल शैली :

प्रगतिवादी साहित्य का लक्ष्य उच्च-वर्ग के सुशिक्षित पाठक नहीं है, अपितु वह जन-साधारण के लिए काव्य की रचना करता है, अतः उसमें जन-भाषा एवं सरल शैली का प्रयोग होना स्वाभाविक है । साहित्य की प्राचीन रूढियों-छंद-अलंकारों आदि - का भी प्रगतिवाद में निर्वाह नहीं किया जाता ।

हिन्दी का प्रगतिवादी साहित्य :

पन्तजी ने अपनी नवीन रचनाओं में धरती के निम्न एवं उपेक्षित वर्ग का चित्रण निरलंकृत शैली में किया । जो कवि छायावादी युग में कल्पना के पंखों पर सवार होकर आघ्यात्मिक लोक में विचरण करते थे, वे ही अब दूसरों को अपनी द्रष्टि धरती तक ही सीमित रखने की शिक्षा देने लगे -

ताक रहे गगन ?
मृत्यु नीलिमा गहन गगन ? निस्पन्द शून्य, निर्जन, निःस्वप्न ?
देखो भू को, स्वर्गिक भू को, मानव-पुण्य प्रसू को !

विषमता का चित्रण करते हुए कुछ प्रगतिवादी कवियों की भी कुछ पंक्तियां नमूने के रूप में देखी जा सकती है -

बर्लिन अब नजदीक है
फासिस्तों की काल-रात्रि में घोर घटा घिर आई ।
चली लाल सेना ज्यों सावन में चलती पुरवाई ।।

- शिवमंगलसिंह 'सुमन'

दुनिया के मजदूर भाइयो, सुन लो एक हमारी बात ।
सिर्फ एकता में ही बसता, इस दुनिया के सुख का राज ।।

– चन्द्रकिरण सौनरिक्सा

है जीने का अधिकार नहीं, हमको किस्मत की मर्जी पर ।
जड रूढिवाद के शव को जो जीवित कहता हे, आह आज !

– नरेन्द्र शर्मा

उपर्युक्त अंशों में मार्क्सवादी विचारधारा का प्रतिवादन अधिक है, उसकी अनुभूति कम, जिससे इन रचनाओं में रागात्मकता नहीं आ सकी ।

प्रगतिवाद हिन्दी में अधिक फल-फूल नहीं सका, किन्तु उसकी जडें अब भी हरी है । चाहे स्वयं प्रगतिवाद ने कोई विशेष महत्वपूर्ण रचना न दी हो, किन्तु इसके प्रभाव से प्रायः सभी वर्गों के साहित्यकारों के द्रष्टिकोण में पर्याप्त विकास हुआ है । हाँ, इतना अवश्य है कि जब तक प्रगतिवादी साहित्य विचारों के शुष्क संकलन से बचकर भावनाओं से ओत-प्रोत नहीं हो जाता, तब तक वह जन-समूह को प्रभावित करने के अपने लक्ष्य में सफल नहीं हो सकता ।[१२]

प्रयोगवाद और नयी कविता :

⇨ प्रयोगवाद का सामान्य परिचय :

प्रयोग का अर्थ है 'नई बात कहना' अथवा पुरानी बात को नये ढंग से कहेना । इस द्रष्टि से युग विशेष की परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप लिखी गई प्रत्येक काव्य रचना 'प्रयोगशील' रचना है । साधन रूप में यह नव्यता कविता शक्ति और स्फूर्ति प्रदान करनी है तथा साध्य रूप में यह विशुध्ध चमत्कार, कौतुक अथवा तमाशे का हेतु बनकर रह जाती है । साधन-साध्य के इस भेद को समज लेने के पश्चात् प्रयोगशील काव्य और प्रयोगवादी काव्य का भेद सहज ही समझा जा सकता है । जिस प्रकार 'प्रगतिवादी' शब्द सामान्य प्रगति का परिचायक न होकर साम्यवादी विचारधारा के पोषक काव्य का परिचायक बन गया है, उसी प्रकार 'प्रयोगवाद' भी विकासोन्मुख तथा कल्याणकारी काव्य प्रयोग का परिचायक न रहकर एक विशेष संकीर्ण विचारधारा का वाचक बन गया ।

सन् 1943 में प्रकाशित 'तार सप्तक' में अन्वेषण की मंजिल के राही होने की चर्चा थी । वह एक प्रकार से प्रगतिवाद को नव-जीवन प्रदान करने का प्रयोग था । अतः हम 'तारसप्तक' को प्रयोगशील कविता का संग्रह कह सकते है । 'तारसप्तक' के कवियों ने न तो प्रयोगवाद जैसे वाद की चर्चा ही की और न नव्यता को काव्य का साध्य ही बताया । परंतु कवियों का एक वर्ग ऐसा आया, जो नव्यता को काव्य का साध्य ही मानता था ।

परंपरावाद और प्रगतिवाद के विरूध्ध प्रतिक्रिया स्वरूप प्रयोगवाद का जन्म हुआ । इसकी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में आधुनिक युग के जीवन की विषाक्त, जर्जरित एवं कठोर परिस्थितियाँ थी । संशय, अपवाद, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन, वर्तमान के प्रति असंतोष आदि के कारण इस मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि को बल प्राप्त हुआ ।

⇨ प्रयोगवाद का आरंभ :

'प्रयोग' शब्द का सर्व प्रथम प्रयोग सन् 1946 में समशेर बहादुर सिंह द्वारा 'नया साहित्य' में प्रकाशित 'तार सप्तक' की आलोचना में किया गया, परन्तु एक साहित्यिकवाद के रूप में प्रयोगवाद के रूप में प्रयोगवाद शब्द का प्रयोग उसमें भी नहीं किया गया था । सन् 1947 में प्रकाशित 'प्रतिक' नामक पत्रिका में नये-नये प्रयोगोंवाली कविता को प्रयोगवादी कविता कहा गया ।

सन् 1947 में प्रयोगवादी कविता शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग होता है । सन् 1954 में 'नई कविता' और 'नये पत्ते' के प्रकाशन के साथ नवीन प्रवृत्तिवाली कविताओं के लिए 'नई कविता' शब्द का प्रयोग उपलब्ध होता है । यही से 'प्रयोगवाद' और 'नई कविता' के मध्य विभाजक रेखा खींचना कठीन हो जाता है और सन् 1960 तक आते-आते प्रयोगवाद का स्थान नई कविता ले लेगी ।

हिन्दी की प्रयोगवादी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ :

हिन्दी कविता में प्रयोगवाद के नाम पर जो रचनाएँ प्रस्तुत की गई, उनकी सामान्य प्रवृत्तियाँ इस प्रकार है -

१) बौधिकता :

रिचार्ड्स ने इलियट की कविता को अति-अधिक बौध्धिक बताकर भविष्यवाणी की थी कि वह अधिकाधिक दूरुह होती जायेगी । हिन्दी की प्रयोगवादी कविताएँ भी इसी कोटि की है । डॉ. नगेन्द्र ने इनके विषय में ठीक ही लिखा है - **''एक गहन बौध्धिकता इन कवियों पर शिशे की पर्त की तरह जमती जाती है ।''**

''आत्मा को न मानु,
तुम्हें न पहेचानु,
तुम्हारी त्वदीयता को स्थिर शून्य में उछाल दुं,
हो,
शायद तभी ।''

\- राजेन्द्र किशोर ।

२) यथार्थवादी वर्णन :

इन कवियों ने यथार्थवादी वर्णनों के नाम पर मानव पशुओं से समबध्ध अनेकानेक

यथार्थ चित्र प्रस्तुत किये । इन्होंने आसपास की साधारण से साधारण वस्तुओं जैसे - चूडी का टुकडा, चाय की प्याली, चप्पल का तल्ला, तेल, लकडी आदि को लेकर कविताएँ लिखी है । कवि श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का यह कथन -

''बैठकर ब्लेड से नाखुन कांटे,
बढी हुई दाढी में बालों के बीच की
खाली जगह को छाँटे,
सर उलझाये खुजलाये,
जम्हु आये ।''

''मैं रथ का टूटा पहियाँ हूँ,
लेकिन मुझे फेंको मत ।'' - धर्मवीर भारती

३) अह्मवाद और घोर वैयक्तिकता :

प्रयोगवाद में व्यष्टि की अभिव्यक्ति को अति अधिक महत्व प्रदान किया गया । किसीने इसे नवीन तथ्य की खोज कहा और किसीने इसको आत्मरति का नाम दिया । प्रयोगवादी कवि ने अपने विषय में बहुत कुछ लिखा है । ये कवि अपने प्रत्येक श्वास को शब्दबध्ध करते हुए नहीं थकते है । भारत भूषण अग्रवाल की इस कविता में घोर वैयक्तिकता उभरकर उपर आ गई है -

''साधारण नगर के,
एक साधारण घर में,
मेरा जन्म हुआ,
बचपन बीता अति साधारण,
साधारण खान-पान,
साधारण वस्त्र परिधान ।''

४) जीवन के प्रति असंतोष और निराशा :

प्रयोगवादी कवि को न तो अतित से प्रेरणा प्राप्त होती है, और न वह भविष्य की आशाएँ, आकांक्षाओं से पुलकित ही रहता है । वर्तमान ही उसके लिये सबकुछ है । उसमें उसको अभिष्ट सिध्धि नहीं मिलती । इस कारण वह जीवन से असंतुष्ट एवं निराश है । वर्तमान में ही सबकुछ कर डालने के इच्छुक कवि की वाणी सुनी -

''आओ हम उस अतित को भूले,
और आज की रग-रग को अंतर को छू ले,
छू ले इसी क्षण,
क्योंकि कल वे नहीं रहे,
क्योंकि कल हम भी नहीं रहे ।''

- मुद्राराक्षस

५) जगत की निस्सारता और जीवन के प्रति अनास्था :

इन कवियों के लिए जीवन का रस समाप्त हो चुका है । उनके लिए जीवन और जगत निस्सार है । 'अंधायुग' में धर्मवीर भारती ने संसार को असार कहा है ।

राजेन्द्र किशोर की कविता - 'कहने को बहोत कुछ है, कहते नहीं बनता' - आदि रचनाएँ इसी घूटन की अभिव्यक्ति है । ये कवि यथार्थजीवन की निराशाओं, कुण्ठाओं से उबकर कहीं अन्यत्र चैन की सांस लेना चाहते है । इसके लिए ये कवि थोडी देर के लिए आत्म विस्मृति चाहते है ।

६) असामाजिकता :

इन कवियों में न तो अपने वैयक्तिक जीवन के प्रति इमानदारी है और न समाज के दायित्व के प्रति जागरूकता ही है । गजानन माधव 'मुक्ति बोध' अपने मित्र सुख को ही जीवन का सर्वस्व मानते हुए लिखते है कि -

''वह मित्र का सुख,
ज्यों अटल आत्मा हमारी बन गई साक्षात,
निज सुख,
वह मधुर त्तम हास,
जैसे आत्म परिचय सामने ही आ रहा है मूर्त होकर
आत्मा के मित्र मेरे ।''

७) व्यंग्य और कटूक्ति :

अज्ञेय यह व्यंग्य करते है कि नागरिक सभ्यता सांप से भी अधिक झहरीली है । कदाचित सर्प ने महानगर के निवासियों से ही डंसना शीखा हो -

''सांप तुम सभ्य तो हुए नहीं, न होंगे,
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया,
फीर कैसे शीखा डंसना ?
विष कहां से पाया ?''

स्पष्ट है कि व्यंग्य- व्यंग्य न रहकर कटूक्ति बन गया है ।

८) काम कुण्ठा तथा दूषित वृत्तियों का नग्न रूप में चित्रण :

निराश, प्रेम एवं अव्यक्त काम की अभिव्यक्ति काम कुण्ठा के अंतर्गत आती है । प्रयोगवाद के कवियों ने इस वर्ग की हजारों अभिव्यक्तियां की है । दमन योग्य अश्लिल असामाजिक एवं अस्वस्थ वृत्तियों के निर्लज्ज उद्‌घाटन में नारी कवयित्रियों को भी संकोच नहीं होता है । 'सुहाग बेला' में शकुंतला की लपक-झपक -

''चली आई बेला सुहागिन
पायल पहने,

बाण विध्ध हरिणी-सी,
बाहों में लिपट जाने को,
उलझने को लिपट जाने को,
मोती की लडी समान ।''

९) प्रयोगवाद का उदेश्य :

प्रयोगवादी कविता जनवादी न होकर व्यक्तिवादी है और वह भविष्य में जन हीत का दावा करती है । इस द्रष्टि से वह या तो केवल मन बहलाने की वस्तु है अथवा किसी प्रकार का स्वार्थ साधन करना चाहती है ।

प्रयोगवादी कवियों का दावा है कि वे प्रबुध्ध और विवेकशील पाठकों का लक्ष्य करके काव्य रचना करते है । इसका अर्थ यह है कि ये रचनाएँ वर्ग विशेष के लिए है, जन हिताय नहीं है । छायावाद स्थूल के प्रति प्रतिक्रिया का परिणाम था और प्रगतिवाद सूक्ष्म के प्रति प्रतिक्रिया का फल था ।

प्रयोगवाद वस्तुतः पूंजी पतियों द्वारा निम्न वर्ग एवं मध्यमवर्ग के शोषण का नजर अन्दाज करानेवाली शक्कर चढी हुई अफिम का काम करता है । निराशा और असंतोष के गीत लिखना उनके लिए एक फेशन है । अथवा स्वार्थ की सिध्धि का एक साधन है ।

धर्मवीर भारती की यह आत्म स्वीकृत्ति प्रयोगवाद का मूल्यांकन प्रस्तुत करती है -

''वाणी इतनी खोखली हुई,
क्यों बच्चों को गिल-बिल,
गिल-बिल ।
सब अर्थ और उत्साह छिन गया,
जीवन का,
जैसे जीने के पीछे कोई लक्ष्य नहीं,
दिल की धडकन भी इतनी बेईमान ।''[१३]

हिन्दी-काव्य में प्रकृति-चित्रण :

हिन्दी के प्रारंभिक काव्य में प्रकृति का चित्रण प्रायः उद्दीपन और उपमान रूप में हुआ है । रासो ग्रन्थों के रचयिताओं ने जहाँ सौन्दर्य-निरूपण के लिए प्रकृति से उपमान ग्रहण किये है, वहाँ संयोग-वियोग की अनुभूतियों के उद्दीपन के रूप में विभिन्न ऋतुओं का वर्णन भी किया है ।

प्रकृति को माया समझने वाले संत और भक्त कवियों ने भी काव्य में उसे महत्वपूर्ण स्थान दिया है । कबीर ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति को माध्यम बनाया है -

''जैसे जलहि तरंग तरंगिनी ऐसे हम दिखलावहिंगे ।
कहै कबीर सुख सागर हंसहि हंस मिलावहिंगे ।।''

आधुनिक युगीन हिन्दी काव्य में प्रकृति की छटा का चित्रण पर्याप्त सूक्ष्मता, सरसता एवं विशदता से हुआ है । विशेषतः छायावादी काव्य तो प्रकृति के वैभव से इतना अधिक रंजित है कि कुछ विद्वानों ने प्रकृति-वर्णन के विशेष प्रकार को ही छायावाद समझ लिया था । यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये है -

स्वतंत्र रूप में -

उषा सुनहले तीर बरसती, जय लक्ष्मी सी उदित हुई ।
उधर पराजित काल-रात्रि भी जल में अन्तर्निहित हुई ।।

- प्रसाद

मानवी करण -

सिंधु सेज पर धरा वधू अब तनिक संकुचित बैठी सी ।
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में मान किए सी ऐंठी सी ।।

- प्रसाद

''अरे, कौन तुम दमयंती सी हो तरू के नीचे सोई ।
हाय ! तुम्हें भी त्याग गया, क्या अलि नल-सा निष्ठुर कोई ।।''

- पंत

''दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है ।
वह संध्या सुन्दरी परी सी,
धीरे, धीरे, धीरे ।।''

- निराला

प्रतीक रूप में -

'' नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ ।
शलभ जिसके प्राग्ग में वह निठुर दीपक हूँ ।
किसी फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ !!''

- महादेवी वर्मा

हिन्दी कवियों के प्रकृति-प्रेम का इससे बढकर प्रमाण और क्या होगा कि उन्होंने प्रकृति के वैभव के समक्ष युवती बालाओं के मन-मोहक सौन्दर्य तक को ठुकरा दिया

''छोड द्रुमों की मृदु छाया, तोड प्रकृति से भी माया !
बाले ! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा हूँ लोचन !![१४]

हिन्दी-काव्य में नारी रूप :

यदि हम एक ऐसे विषय की खोज करें, जिसका प्रयोग विश्व-काव्य में सर्वाधिक हुआ, तो वह विषय हमारे अनुमान से नारी-वर्णन ही सिध्ध होगा । विश्वकाव्य का सर्व प्रचलित रस-रसराज शृंगार है, तो नारी उसी रसराज के प्राणों की आधार है । नारी की मोहिनी शक्ति युग-युग से काव्य-जगत पर एकछत्र शासन करती रही है और संभवतः भविष्य में भी करती रहेगी । वैदिक साहित्य में उसके रूप-वैभव के उन्मादक प्रभाव की अभिव्यक्ति उस उर्वशी के रूप में हुई है, जिसके वियोग में पुरूरवा ने अपने आपको हिंसक भेडियों के सम्मुख डालकर आत्महत्या करने की सोची थी । रामायण में उसके सौन्दर्य की दीप्ति जनक-तनया के रूप में हुई है, जिसकी प्राप्ति के लिए दूर-दूर के नरेश धनुष-यज्ञ में उपस्थित हुए थे । महाभारत में उसने उस द्रौपदी का रूप धारण किया, जिसके एक कटु हास्य ने अठारह अक्षौहिणी योंध्धाओं के नाश का बीज बो दिया । आगे चलकर संस्कृत नाटक-साहित्य में उसने वासवदता, शकुंतला, वसंतसेना, मालती, रत्नावली, दमयन्ती आदि के विभिन्न रूपों में अपने सौन्दर्य के जादू एवं भाव-भंगिमाओं की शक्ति का परिचय दिया । साहित्य में नारी के इन अनन्त रूपों, उसके अद्‌भुत प्रभाव और उसकी अपार शक्ति को देखते हुए कामायनीकार के शब्दों में यही स्वीकार करना पडता है -

हे अनन्त ! रमणीय कौन तुम, यह मैं कैसे कह सकता !

संभवतः नारी-रूप की इसी विचित्रता को देखकर हमारे काव्य-शास्त्रियों के हृदय में उसका विश्लेषण करने की भावना प्रस्फूटित हुई ।

द्विवेदी युगीन राधा :

द्विवेदी युगीन राधा समाज-सेविका के सब गुणों से सम्पन्न होकर उपस्थित होती है । वह अपने व्यक्तिगत प्रेम की विश्व-हित के लिए बलि दे देती है, किन्तु अनुकूल वातावरण एवं घटनाओं के अभाव में, अतः मनोवैज्ञानिक द्रष्टि से यह विकास असंगत है । द्विवेदी युग के कवियों ने गांधी-युग के आदर्शों को महाभारत युग की नारी पर थोपने का प्रयत्न किया है, जिसमें उन्हें सफलता नहीं मिली ।

प्रेमाख्यानकों की नायिका :

राधा के अतिरिक्त हिन्दी-काव्य जगत् की अन्य नायिकाओं में प्रेमाख्यानों की नायिकाओं - पदमावती, मधुमालती, हंसावती, इन्द्रावती आदि - का महत्वपूर्ण स्थान है । वे पुरूष को अनायास ही - विवाह के केवल एक धागे की किंमत पर या दूतिकाओं द्वारा भेजे गए एक सन्देश के बल पर ही प्राप्त नहीं हो जाती, उनकी प्राप्ति के लिए नायक को प्राणों की बाजी भी लगानी पडती है । अतः इतने प्रयत्न से प्राप्त सुन्दरी को नायक एकाएक नहीं त्याग सकता । वे अपने जीवन के अन्त तक अपने प्रिय का सान्निध्य

और प्रेम प्राप्त करती रहती है ।

जहाँ अन्य भारतीय काव्यों में पुरूष को नारी से अधिक कामुक एवं विलासी प्रदर्शित किया जाता है, वहाँ प्रेमाख्यानों की नायिकाएँ नायक से अधिक कामवती दृष्टिगोचर होती है । जायसी की पद्मावती के प्रेम के मूल में भावना की अपेक्षा वासना की प्रेरणा अधिक है –

सुनु हीरामन कहौं बुझाई । दिन-दिन मदन सतावै आई ।।
देस-देस के बर मोहि आवहिं । पिता हमार न आँख लगावहिं ।।
जोबन मोर भयक जल गंगा । देह-देह हम्ह लाग अनंगा ।।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी काव्य में नारी के रूप-वैभव की अभिव्यक्ति तो पर्याप्त मात्रा में हुई है, किन्तु उसके व्यक्तित्व का समुचित विकास दृष्टिगोचर नहीं होता । हाँ, इतना अवश्य है कि विद्यापति, सूर, देव, पद्माकर, हरिऔध आदि के द्वारा चित्रित राधा के विभिन्न रूपों, जायसी की पद्मावती, नरपति नाल्ह की राजमती या धनानन्द की 'सुजान' आदि के रूप में हमें विभिन्न युग के विभिन्न वर्गों के नारी-सम्बन्धी दृष्टिकोण का बोध हो जाता हैं । इन रूपों के आधार पर तत्कालीन समाज की परिस्थितियों को एवं तत्कालीन नारी की अवस्था को समझने में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है ।

हिन्दी-काव्य में राष्ट्रीयता की भावना :

हिन्दी-काव्य में राष्ट्रीयता के मुख्यतः दो रूप मिलते हैं, एक तो विदेशी मुस्लिम आक्रमणकारियों और उनके वंशजों के अत्याचार के विरूध्ध और दूसरा ब्रिटिश शासन की प्रतिक्रिया के रूप में । हमारे प्राचीन काव्य (आदिकाल से रीतिकाल तक) में पहला रूप उपलब्ध होता है, जबकि आधुनिक काव्य में दूसरा । यहाँ क्रमशः दोनों पर प्रकाश डाला जाता है ।

➪ प्राचीन हिन्दी काव्य :

हिन्दी की अनेक आरंभिक एवं मध्यकालीन रचनाओं में वीर रस का चित्रण तो पर्याप्त मात्रा में हुआ है, किन्तु उसमें राष्ट्रीयता का व्यापक भाव सर्वत्र उपलब्ध नहीं होता । महाकवि चन्दबरदायी के काव्य – 'पृथ्वीराज रासों' में विभिन्न युध्धों का आयोजन व्यक्तिगत द्वेष के आधार पर होता है, अतः उसमें राष्ट्रीयता का विकास नहीं मिलता । हाँ केवल जाति-गौरव के रूप में उसकी व्यंजना अवश्य उसमें यत्र-तत्र मिलती है –

'करतार हथ्थ तलवार दिय, इह सु तत्त रजपूत कर ।'
या – **''कहै राज प्रथिराज, मरन छत्रिय सत निध्धि ।''**
राजपूत मरन संसार घर.....

वस्तुतः रासो का रचयिता राजपूती गौरव से अधिक ऊँचा नहीं उठ पाता । उसकी द्रष्टि इतनी अधिक संकुचित है कि पृथ्वीराज और गोरी के संघर्ष को भी जातीय या राष्ट्रीय संघर्ष के रूप में नहीं देख पाता ।

आधुनिक हिन्दी-काव्य में राष्ट्रीयता :

आधुनिक हिन्दी-काव्य का तो विकास ही उस समय हुआ, जबकि समूचे राष्ट्र में ब्रिटिश शासकों के विरूध्ध स्वतन्त्रता का आन्दोलन चल रहा था, अतः आधुनिक हिन्दी काव्य में राष्ट्रीयता की व्यंजना होना स्वाभाविक था । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके युग के अन्य कवियों ने राष्ट्र की दुर्दशा का चित्रण करते हुए भारत की जनता को जाग्रत करने का प्रयत्न किया है ।

भारतेन्दु की राष्ट्रीयता का क्षेत्र बहुत व्यापक है । उन्होंने अपने देश के सब धर्म-सम्प्रदायों, सभी भाषाओं और सभी वर्गों के साथ प्रेम प्रदर्शित किया है । साथ ही उन्होंने स्वदेशी भाषा, स्वदेशी वस्त्रों और स्वराज्य का समर्थन भी बारम्बार किया है ।

द्विवेदी युग के अनेक कवियों ने राष्ट्रीयता की भावना व्यंजित की है, जिनमें मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान और सोहनलाल द्विवेदी उल्लेखनीय है । गुप्तजी की राष्ट्रीयता का मार्मिक रूप 'भारत-भारती' में द्रष्टिगोचर होता है । उसकी यह प्रारंभिक पंक्ति -

''हम कौन थे, क्या हो गए .....

आओ विचारें हम सभी ।'' ही पाठक के हृदय में राष्ट्रीयता का संचार कर देती है । इसके अतिरिक्त गुप्तजी ने अपने काव्य-ग्रन्थों में भारत के प्रायः सभी धर्म-सम्प्रदायों को सहानुभूतिपूर्वक स्थान दिया है ।

'खूब लडी मरदानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ।' जैसी ओजपूर्ण कविताओं की रचना करनेवाली प्रसिध्ध कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान ने अपने गीतों में युवकों को स्वतंत्रता के लिए मर मिटने का आह्वान किया है । वे बहिन के रूप में अपने देश के भाईयों को चुनौती देती हुई कहती हैं -

आते हो भाई ! पुनः पूछती हूँ -
विषमता के बंधन की है लाज तुमको ?
तो बंदी बनो, देखो बन्धन है कैसा,
चुनौती यह राखी की है आज तुमको ।।''

इसी प्रकार ''पुरस्कार कैसा ?'' कविता में वे लिखती है -

आज तुम्हारी लाली से माँ के मस्तक पर हो लाली ।
काली जंजीरें टूटे, काली जमुना में हो लाली ।।
जो स्वतन्त्र होने को हैं पावन दुलार उन हाथों का ।

स्वीकृत है, माँ की वेदी पर पुरस्कार उन हाथों का ।।

अब जबकि हमारा राष्ट्र स्वतंत्र हो गया है तो राष्ट्रीयता की भावना का मंद पड जाना स्वाभाविक है । यह हमारे कवियों का कर्तव्य है कि जन-मानस में राष्ट्रीय भावों का स्फुरणा करके उन्हें नव-निर्माण की ओर अग्रसर करें ।[१६]

हिन्दी-काव्य में विरह-वर्णन :

वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान ।
निकलकर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान ।।

– पंत

साहित्य का सर्वोत्कृष्ट रस शृंगार है और इस शृंगार का भी परिष्कृत रूप विरह-वर्णन में मिलता है । शृंगार के संयोग पक्ष में तो बाह्य चेष्टाओं और काम-क्रीडाओं की ही अधिकता होती है, हृदय की सूक्ष्म भाव-वृत्तियों का प्रकाशन तथा वासना और काम से मुक्त प्रेम के शुध्ध रूप का प्रकटीकरण वियोग पक्ष में ही होता है । व्यापक द्रष्टि से कहा जा सकता है कि जब नायक या नायिका में से कोई एक रूष्ट होकर या अप्रसन्नता के कारण थोडे समय के लिए विमुख हो जाता है, तो दूसरे को जिस वेदना की अनुभूति होती है, वही मान-जन्य विरह है ।

⇨ कबीर की विरहानुभूति :

कबीर की आत्मा परमात्मा के मिलन के लिए उत्सुक हो जाती है, तो उसकी वही अवस्था हो जाती हे, जो लौकिक क्षेत्र में प्रेमी की पूर्वानुराग में होती है –

''कब देखूँ मेरे राम सनेही, जा बिनु दुःख पावे मेरी देही !
हूँ तेरा पंथ निहारूँ स्वामी, कबरे मिलहुगे अन्तरजामी !!''

कबीर जैसा अक्खड भी विरह-वेदना से पीडित होकर दैन्य से ओत-प्रोत हो जाता है । वह जन-जन के सामने हाथ फैलाने लगता है –

है कोई ऐसा पर उपकारी, सूँ कहैं सुनाय रे ।
ऐसे हाल कबीर भये हैं बिन देखे जिय जाय रे ।।

वे दूसरों की स्थिति से अपनी तुलना करते हुए कहते हैं –

''सुखिया सब संसार, खाय अरू सोवै ।
दुखिया दास कबीर है, जगे अरू रोवै ।।''

⇨ मीरा का विरह-वर्णन :

कबीर की ही भाँति प्रेम-दीवानी मीरा ने अपने हृदय के उद्‌गारों को मर्मस्पर्शी शब्दों में व्यक्त किया है । अपने 'गिरधर गोपाल' के विरह में भावाभिभूत होकर उन्होंने शत-शत

गीतियों की रचना की है । कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

''हेरि मैं तो दरद विवाणी होइ ।
दरद न जाणै मेरो कोइ ।।
घायल की गति घायल जाणै, की जिण लाई होइ ।
जौ हरि की गति जौहरि जाणै, की जिन जौहर होइ ।।''

''कहा करूँ कित जाऊँ मोरी सजनी, वेदन कूण बुतावै ।
बिरह नागण मोरी काया डसी है, लहर-लहर जिव जावै ।।''

मीरा की इन पंक्तियों में विरह-वेदना की ऐसी गंभीरता मिलती है, जो बरबस ही पाठक के हृदय को भावोद्वेलित करने में समर्थ है । लौकिक प्रेम की वासना के कर्दम के अभाव में उनका वेदना-स्वरूप और भी अधिक दिव्य और पवित्र हो उठा है ।

➪ सूर का विरह-वर्णन :

महाकवि सूरदास ने कृष्ण और गोपियों के माध्यम से विरहानुभूतियों की व्यंजना अत्यन्त सरस रूप में की है । वियोग की आशंका-मात्र से प्रेम-विवश गोप-बाला राधा के हृदय की क्या दशा हो जाती है, इसका चित्रण देखिए –

सुने हैं श्याम मधुपुरी जात !
सकुचीत कह न सकत काहू सौं गुप्त हृदय की बात !
शैकित बचन अनागत कोऊ कहि जु गई अधरात !!
सूर श्याम संग तै बिछुरत हैं कब ऐहैं कुशलात !!

और जब विदाई की घडियाँ उपस्थित होती है, तो प्रेमिका का हृदय सौ-सौ धाराओं में बह निकलता है –

''हौं साँवरे के संग जैंहौं ।
होनी होइ सु होई उभै लै यश, अपयश काहू न डरैहों ।
कहा रिसाइ करैंगो कोऊ जो रोकिहैं प्राण ताहि दैहों ।।''

➪ जायसी का विरह-वर्णन :

जायसी ने तो अपने काव्य में विरहानुभूतियों की व्यंजना एक ऐसी उत्कृष्ट अत्युकितपूर्ण काव्य-शैली में की है कि उसके विद्वानों को अलौकिकता का भ्रम हो गया । पूर्वानुराग और वियोग का चित्रण जायसी ने पूरे विस्तार से किया है । उन्होंने विरहानुभूतियों की व्यंजना के लिए मुख्यतः दो पात्रों को माध्यम बनाया है । पहला है रत्नसेन और दूसरी नागमती । यहाँ पहले पूर्वानुराग की दशा देखिए –

फूल फूल फिरि पूछों, जो पहुँचौं आहि केत ।
तन निछावर के मिलौं, ज्यों मधुकर जिउ देत !

और फिर इसका विकास –

''तजा राज राजा भी जागी । और किंगरी कर गहेउ वियोगी ।
तन विसंभर मन बाउर रटा । अरूझा प्रेम परी सिर जटा ।।''

आधुनिक कवियों का विरह-वर्णन :

द्विवेदी-युगीन कवियों ने अपने सुधारवादी दृष्टिकोण के कारण श्रृंगार रस को बहुत उपेक्षा की दृष्टि से देखा, किन्तु फिर भी प्रिय-प्रवास, यशोधरा, साकेत आदि में विरह की व्यंजना प्रचुर मात्रा में हुई है । 'प्रिय-प्रवास' में कृष्ण-विदाई की वेला के समय राधा के हृदय की आशंका का चित्र देखिए –

अयि सखि ! अवलोके खिन्नता तू कहेगी,
प्रिय स्वजन किसी के क्या न जाते कहीं है ।
पर हृदय न जाने दग्ध क्यों हो रहा है ?
सब जगत् हमें है शून्य होता दिखाता !!''

'साकेत' की रचना तो विरहिणी उर्मिला के आँसुओं से ही हुई है । स्वयं उर्मिला के ही शब्दों में –

मुझे फूल मत मारो !
मैं अबलाम बाला वियोगिनी कुछ तो दया विचारो !

प्रसाद के 'आँसू', पंत की 'ग्रन्थि' और महादेवी की 'यामा' और 'दीप शिखा' में विरहानुभूतियों की व्यंजना वैयक्तिक अनुभूति के रूप में हुई है । पंत के विरहकातर हृदय की दशा इन शब्दों में –

''शून्य जीवन के अकेले पृष्ठ पर, विरह ! अहह कराहते इस शब्द को,
किस कुलिश की तीक्ष्ण, चुभती नोंक से निठुर विधि ने अश्रुओं से है लिखा !!''

कवयित्री महादेवी तो वेदना की ही मानों साक्षात् मूर्ति है । उनके काव्य की प्रत्येक पंक्ति विरहानुभूतियों से उद्वेलित है । विरह की मधुर पीडा का संचार उनके जीवन में किस प्रकार हुआ –

इन ललचाई पलकों पर, पहरा था जब ब्रीडा का !
साम्राज्य मुझे दे डाला उस चितवन ने पीडा का !!

किन्तु अन्त में उन्होंने अपनी वेदना पर ऐसी विजय प्राप्त कर ली है कि अब उन्हें विरह में मिलन की, दुःख में सुख की अनुभूति होने लगी है –

विरह का युग आज दीखा, मिलन के लघु पल सरीखा !
दुःख सुख में कौन तीखा, मैं न जानी औं न सीखा !!

फिर भी उपर्युक्त विवेचना से एक बात स्पष्ट है कि हिन्दी काव्य के सभी युगों में विरह का निरूपण किसी-न-किसी रूप में अवश्य हुआ है । कोई भी व्यक्ति जो हिन्दी भाषा को समझने की क्षमता रखता है, इस काव्य को पढकर गद्‌गद और भाव-विभोर हो सकता है ।[१७]

संदर्भ सूची

१) वही, पृष्ठ - २०१,

२) साहित्यिक निबंध : डॉ. राजनाथ शर्मा : पृष्ठ - ५९

३) साहित्यिक निबंध : डॉ. राजनाथ शर्मा : पृष्ठ - ६५

४) साहित्यिक निबंध : डॉ. राजनाथ शर्मा : पृष्ठ - १०१

५) साहित्यिक निबंध : डॉ. राजनाथ शर्मा : पृष्ठ - ५०१

६) साहित्यिक निबंध : डॉ. राजनाथ शर्मा : पृष्ठ - ५१०

७) साहित्यिक निबंध : डॉ. राजनाथ शर्मा : पृष्ठ - ५६७

८) साहित्यिक निबंध : डॉ. राजनाथ शर्मा : पृष्ठ - ५७७

९) साहित्यिक निबंध : डॉ. राजनाथ शर्मा : पृष्ठ - ५८४

१०) साहित्यिक निबंध : डॉ. राजनाथ शर्मा : पृष्ठ - ६०७

११) हिन्दी काव्य सौरभ : कविता का स्वरूप और विकास पृष्ठ - ०३

१२) हिन्दी काव्य सौरभ : रमेशचन्द्र कुलश्रेष्ठ : पृष्ठ - ०१

१३) हिन्दी काव्य सौरभ : रमेशचन्द्र कुलश्रेष्ठ : पृष्ठ - ०५

१४) हिन्दी काव्य सौरभ : रमेशचन्द्र कुलश्रेष्ठ : पृष्ठ - ०५

१५) हिन्दी काव्य सौरभ : रमेशचन्द्र कुलश्रेष्ठ : पृष्ठ - ८९

१६) हिन्दी काव्य सौरभ : कविता का स्वरूप और विकास पृष्ठ - ०६

१७) हिन्दी काव्य सौरभ : कविता का स्वरूप और विकास पृष्ठ - ७५

अध्याय - 3

रामदरश मिश्र के काव्य का अनुभूति पक्ष

अध्याय - ३

रामदरश मिश्र के काव्य का अनुभूति पक्ष :

- प्रस्तावना :
- काव्यगत संवेदना :
  - युग-जीवन की विषमताएँ :
  - मध्यवर्गीय लोगों के जीवन की आर्थिक विषमता :
- संवेदना का लोकधर्मी रूप :
  - मिश्रजी के काव्य : मानवीय परिवेश :
- अनुभवों के छन्द : गीत :
  - पथ के गीत :
- संवेदना का सहज एवं गहरा सरोकार :
  - ग्रामीण परिवेश :
- प्रगतिशील अंतर्दृष्टि एवं रागात्मक निष्ठा :
- सम-सामयिक विभिन्न समस्याएँ :
  - नारी जीवन से संबंधित समस्याएँ :
    - नारी सौन्दर्य और प्रणय :
    - कवि के काव्य में प्रणय की आरंभिक दशा :
  - सामाजिक चेतना :
  - मिश्र जी के काव्य में राष्ट्रीय-चेतना का स्वरूप :
  - राजनीतिक समस्याएँ :
  - मातृभूमि के प्रति आकर्षण :
- रामदरश मिश्र के काव्यों में अनुभव का आत्मपरक रूप :
  - 'कंधे पर सूरज'
- जीवन के विविध आयाम : 'दिन एक नदी बन गया' :

❁ यथार्थ का नया धरातल : 'दिन एक नदी बन गया' :

❁ समकालीन जिन्दगी की वास्तविक अनुभूति का चित्रण :

➪ 'जुलूस कहाँ जा रहा है ?'

❁ गहरे मानवीय अनुभव और चेतना का काव्य :

➪ 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' :

➪ 'पथ के गीत' :

➪ वैयक्तिक सुख-दुःख की चेतना :

❁ सहज सौन्दर्य और यथार्थ का द्वन्द्व :

❁ समकालीन यथार्थ की संश्लिष्ट पहचान :

➪ 'जुलूस कहाँ जा रहा है ?' :

❁ आत्मा के शब्दों से कविता लिखने की कोशिश :

➪ 'आग कुछ नहीं बोलती ?' :

❁ जलते हुए समय में हँसी के फूल उगाने की कोशिश :

➪ 'बारिश में भीगते बच्चे' :

❁ आधुनिक कविता के संदर्भ में मिश्रजी की काव्यगत विशेषताएँ :

अध्याय ३

रामदरश मिश्र के काव्य का अनुभूति पक्ष :

प्रस्तावना :

मानव-जीवन और परिवेश की विसंगति और विडम्बना की पहचान नई कविता में अत्यधिक संवेदनशील और रोज-ब-रोज के जीवन के अनुभव-बिम्बों के रूप में प्रकट हुई है । लेकिन इसे देखने और उद्‌घाटित करने के विविध कवियों के संवेदनात्मक उद्देश्य एक जैसे नहीं है । कुछ कवियों में दो विरोधी वस्तु-स्थितियों का सह-अस्तित्व चमत्कार जगाता है । कुछ इसे मानव नियति की अपरिहार्य अनिवार्यता के रूप में देखते है । जीवन और परिवेश की इस विसंगति और विडम्बना को कुछ कवियों ने चुभन और चुनौति के रूप में ग्रहण किया है । रामदरश मिश्र की उक्त कविता में यथार्थ की यह विसंगति कवि-कर्म की विसंगति का भी बोध कराती है । इसमें यथार्थ को उसकी समग्रता में ग्रहण कर सकने की कवि की मर्यादा और उस मर्यादा के अतिक्रमण की बेचैनी भी शामिल है ।

यहाँ एक छोर पर रचनाकार का अपना अनुभव सत्य है, सौंदर्यानुभूति के मधुर स्पन्दन से मुखर तन्मयता का एक आत्मीय क्षण है और दूसरे छोर पर उस अनुभव को काटकर निकलनेवाले युग के क्रूर और अमानवीय यथार्थ का वह संदर्भ है जिसकी उपस्थिति का एहसास मात्र कवि के सौन्दर्य-बोध और उसकी सांस्कृतिक सुरूचि को एक धक्का देता है । लेकिन नई कविता में अपनी अनुभूति के प्रति उक्त प्रकार की आत्म-सजगता को विशेष महत्व नहीं दिया गया । कभी-कभी तो इसे कविता की कलात्मक संरचना में व्यवधान उपस्थित करनेवाला तत्व मान लिया गया । सामाजिक यथार्थ एक तथ्य मात्र है और कोई भी तथ्य अपने आप में कितना ही महत्वपूर्ण क्यों न हो कविता के लिए निरूपयोगी है । 'अज्ञेय' ने कहा था, **'सत्य वह तथ्य है, जिसके साथ हमारा रागात्मक सम्बन्ध हो ।'** लेकिन यह मान्यता अपने आपमें अत्यधिक अर्थपूर्ण होने पर भी यथार्थ के सामाजिक सन्दर्भों को छूनेवाले रचनाकार के मन को संतोष नहीं देती । रामदरश मिश्र के लिए समय का वह अंश भी जिसे उन्होंने अपनी शिराओं की गति में नहीं पाया, अपने आप में महत्वपूर्ण है -

कहते है -

समय अनुभूति है
सूर्य का उगना दिन नहीं
उस उगे हुए को शिराओं की गति में पाना दिन है
सूर्य का बुझना रात नहीं

उस बुझे हुए को
मन के अनकहे सन्नाटे के बीच पहचान लेना रात है ।
लेकिन कवि ने अनुभव किया है कि –
संवेदना और ज्ञान काँपते रहते हैं प्रकाश में
निरंतर कुछ रेखाएँ खींचने को
अंधी चट्टानों पर ।[१]

काव्यगत संवेदना :

रामदरश मिश्रजी का कहना है कि हमारी अनुभूति वस्तुतः किसी वस्तु-तÙ के प्रति हमारी संवेदनात्मक प्रतिक्रिया ही है । लेकिन वस्तु-तत्व उतना ही नहीं होता जितना वह हमारे संवेदनात्मक अनुभव का विषय बनता है । उसका केवल एक ही अंश हमारी चेतना में उभर पाता है । ऐसी स्थिति में एक सच्चा रचनाकार बड़ी बेचैनी से अनुभव करता रहता है कि वह अनुभूति का विषय बननेवाले वस्तु-तÙ को उसकी समग्रता में ग्रहण नहीं कर पा रहा है । अतः रचनाकार की आत्माभिव्यक्ति का वास्तविक संघर्ष अनुभव के इस बिन्दु से प्रारम्भ हो जाता है ।

मिश्रजी अपनी कविताओं में रचनाकार के आत्म-संघर्ष के उसी रूप को उभारतें है जिसका उल्लेख मुक्ति-बोध ने किया है । कवि का अपना अनुभव तो महत्वपूर्ण है ही लेकिन अपने अनुभव की मर्यादा का बोध भी कम महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि इसमें अपने अनुभव जगत को अपेक्षित विस्तार और दिशा प्रदान करने की बेचैनी शामिल है । मिश्रजी के प्रथम काव्य-संग्रह 'पथ के गीत' में जहाँ व्यक्ति मन की पीड़ा और दर्द है, वहाँ उस पीड़ा-व्याप्ति का अभाव है और जहाँ युग-जीवन की असंगतियों, आर्थिक विषमताओं, शोषण और दमन के विरूद्ध संघर्ष का आह्वान किया गया है वहाँ भावना के आवेग और आवेश में अनुभव का निजी संदर्भ धूमिल हो गया है ।[२] 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' में व्यक्ति में समष्टि का अनुभव बोलने लगता है । कवि अपनी ज्ञानात्मक संवेदना के सहारे अपने अनुभव के वृत्र को उत्तरोत्तर विस्तार प्रदान करता जाता है, जीवन के अधिकाधिक तत्त्यवों को अपनी अनुभूति में समेटने लगता है –

गुलमुहर से इस दिन की लाल आभाओं की परिधि
मेरी गोद में न अँटकर, फैलती गई, फैलती गई चारों ओर
आज मैं केन्द्र-बिन्दु हूँ इस परिधि का
यानी इकाई हूँ
ममता की व्यास रेखाएँ मुझे जोड़े है
क्षितिजों की ओर फैलती हुई इस परिधि से

ममता की व्यास रेखाओं के सहारे कवि का यह फैलना कवि की आत्म-स्फीति न होकर उसका अपना सहज आत्म-विस्तार है । वस्तुतः यह अपनों के बीच अपने आप को रखकर अपने अनुभव को परिभाषित करने का उपक्रम है । मिश्रजी में अत्याधुनिकतावादी कवियों का ओढा हुआ अकेलापन या उससे उद्‌भूत ओढी हुई पीडा नहीं है । बल्कि यहाँ कवि की कठिनाई यह है कि वह उन लोगों को भी अब तक नहीं छोड़ सका जो उसको छोडकर चले गए है -

१) **भूख से तडपते चेहरे अभी ताजे हैं**
सपनों में आते हैं मरे हुए मित्र अभी

२) **कि मेरे आसरे की बाट बैठे**
आठ-दस अपने सगे गमगीन चेहरे

३) **ये अतन धुँधले विवश चेहरे**
मुझे क्यों घेरते है
कह रहे जैसे कि पहचानो
मुझे लगता कि
इन मासूम चेहरों को
इन असमय बुझे हँसते चिरागों को
निकट से जानता हूँ ।

ये चेहरे यदि हमारी संवेदना को छूते है तो इसका मुख्य कारण यह भी है कि इनमें कवि का भी 'पीटे गए बालक सा मार खाया चेहरा' शामिल है । मिश्रजी ने अपने मन के दर्पण में इन पथराई हुई छायाओं को प्रतिबिम्बित होते देखा है । ये समय की ठहरी और निष्कंप चेतना में प्रतिबिम्बित हो उठनेवाली मुरझाई हुई धूप के खण्ड़ है -

- **अपने ही दर्पण में अपनी छायाएँ**
पथरा बैठी
जमी सतह पर कितनी धूपें गिरीं
और मुरझा बैठीं

दर्पण में प्रतिबिम्बित 'पथराई छायाओं', और 'मुरझाई धूप' के साथ कवि को अपना भीतरी चेहरा भी दिखाई दे जाता है और यथार्थ का साक्षात्कार आत्म-साक्षात्कार में बदल जाता है । कवि द्वारा देखे गए तड़पते गमगीन और विवश चेहरों की पीड़ा से उत्पन्न करूणा अंततः आत्म-प्रताड़ना का रूप धारण कर लेती है । आत्म-साक्षात्कार के स्तर पर 'समाज पर चीखने' और 'कविता करने' भर से मन के उद्वेलन को शान्त नहीं किया जा सकता । दायित्व-बोध का यह नया रूप है, जिसके रहते रचनाकार शीशे में अपना चेहरा देखने का साहस नहीं जुटा पाता -

- **मैं इन सारी कुरूप छायाओं को बटोर कर**
  समाज पर चीखता हूँ
  और कविता करता हूँ
  और न जाने क्यों
  खुद आईने के सामने आने से डरता हूँ ।[३]

युग-जीवन की विषमताएँ :

मिश्रजी के काव्यों में जगह-जगह पर युग-जीवन की विसंगतियाँ और विषमताएँ - शोषण और दमन..... आदि दिखाई देता है । नई कविता में समूह मानव को भीड़ के रूप में देखने का आग्रह इतना प्रबल हो गया था कि अपने व्यक्तिगत जीवन से हटकर अन्य किसी सत्य की ओर द्रष्टिपात करना किसी कवि को कवि के रूप में अस्वीकार करने का पर्याप्त और वाजिब कारण मान लिया गया था । स्वयं मिश्रजी ने भी क्षण के अनुभव को महत्व दिया है । 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' की अनेक छोटी कविताएँ कवि की विविध मनःस्थितियों के स्वानुभूति मूलक और संवेदनशील चित्र प्रस्तुत करती है । कवि की अनुभूति की आँच में तपकर ही कोई अनुभव-खण्ड़ आन्तरिक निखार ग्रहण करता है । लेकिन काल का एक रूप ऐसा भी होता है, जिसके साथ हम जुड़ नहीं पाते, लेकिन जो अपनी सत्ता और महत्ता से हमें अभिभूत किए रहता है । 'अस्पताल की दोपहर' में डॉक्टर की संवेदनशून्य, निर्मम और निरपेक्ष क्रियाशीलता काल के उस निर्मम विवेक का पर्याय है, जो हमारी भावनाओं की चिन्ता किए बिना सदैव सक्रिय बना रहता है -

- **अलग-अलग चेहरे**
  अलग-अलग शोर
  अलग-अलग पीडाएँ
  मगर सभी कहीं-न-कहीं मिलते है
  कभी एक-दूसरे को काटते हुए
  कभी समानान्तर बहते हुए
  मगर यह डॉक्टर है
  जो न किसी से मिलता है
  न अलग होता है
  इन सारे छटपटाते संवेदनों के बीच
  वह है
  और उसका यंत्र ।

डॉक्टर अपने यंत्र से किस सडे-गले अंश की चीर-फाड करना चाहता है ? दर्द

किस अंग में कहाँ पर है ? इस बात की जानकारी की अपेक्षा कवि से की जानी चाहिए या नहीं, इस विवाद में पड़े बिना मिश्रजी 'अपराध के असली मुकाम पर उँगली रख देते है । यूँ दर्द कई हो सकते है, लेकिन मिश्रजी मुख्यतः उस दर्द की बात करते हैं जो गाँव से शहर तक उनके साथ चला आया और जो ज्योतिर्पटों के भीतर से अपने होने का एहसास कराता रहा –

– **और तुम्हारे ज्योतिर्पटों के भीतर से**
ये रोने-चीखने की आवाजें
कैसी आ रही है ?
लगता है मैं इन्हें पहचानता हूँ
लेकिन ये मेरी पहचानी आवाजों से
अधिक दर्दनाक है ।[४]

आत्म-प्रताड़ना का यह भाव तब उत्पन्न होता है जब रचनाकार अपने आपको प्रश्नों की धार पर लाकर खड़ा कर देता है । तब यह यथार्थ को परखने की अपेक्षा यथार्थ की – आँखें अपने आपको, अपने विचार और कर्म के विरोधाभासों को समझने का उपक्रम बन जाता है । साक्षात्कार का यही वह बिन्दु है, जहाँ कवि के लिए मसीहाई मुद्रा धारण कर सकना संभव नहीं रह जाता । स्फोटक बड़बोलेपन और आत्म-स्फीति से रचना को मुक्ति मिल जाती है । कवि के भावावेग पर उसके आन्तरिक विवेक का अनुशासन आ जाता है, जो अन्ततः रचना के आन्तरिक संयोजन को एक अतिरिक्त कलात्मक अर्थवत्ता प्रदान करता है –

उस मिट्टी को कोसता हुआ उससे भागता रहा
एक अस्वीकार में सोकर दूसरे अस्वीकार में जागता रहा
मैंने क्यों नहीं स्वीकार किया कि
कोई मेरे लिए कपड़ा बुनता है
कोई अन्न उपजाता है
कोई कागज और कलम गढ़ता है
कोई समुद्र में उतरता है
और मैं ?
सिर्फ कागज गोंचता हूँ और अस्वीकार करता हूँ ।
और जब-जब मैं अपने से प्रश्न करता हूँ
तब लौट आता हूँ तुम्हारे पास मेरे देश ।[५]

मध्यवर्गीय लोगों के जीवन की आर्थिक विषमता :

शहर के लोगों का एक वर्ग ऐसा भी है, जिसकी पीड़ा 'रोने चीखने' में प्रकट

नहीं होती । 'मेज पर माथा झुकाए, थकी-सी मुस्कान बेचनेवाले' इस वर्ग में इतनी शक्ति नहीं है कि वह 'काँपती हुई चिमनियों के पैरों को बाहों में जकड़ ले', या 'लपटों को छाती पर सह ले ।' महानगरों की ऑफिसों में काम करनेवाले इस वर्ग के लोगों की नीरस दिनचर्या के यांत्रिक पुनरार्वतन में जीवन-संघर्ष का कोई संभावनापूर्ण अनुभव-बिम्ब नहीं उभरता । एक थका-हारा विवशता और वैफल्य का भाव ही इस वर्ग के जीवन का स्थाई संदर्भ बन चुका है । नई कविता में मध्यमवर्गीय जीवन की निराशा को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर कुछ-कुछ रूमानी अतिरंजना के साथ प्रस्तुत किया गया है । लेकिन मिश्रजी का इस वर्ग के लोगों के दुःख-दर्द को देखने का अपना एक विशिष्ट द्रष्टिकोण है । वे स्वयं भी द्रश्य-चित्रण में द्रष्टि को विशेष महत्वपूर्ण मानते हैं -

दूसरे दरजे के डिब्बे में
अलग-अलग बैठे हुए
तीन यात्री
तीनों के हाथों में
पुस्तकें खुली हैं
जिनके शब्द तो एक है
मगर अर्थ अलग-अलग

मिश्रजी मध्यवर्गीय जीवन के दर्द को छूते है तो उसको जन्म देनेवाले सामाजिक और आर्थिक संदर्भों को भी उजागर कर देते है । कहना चाहिए कि उनकी रचनात्मक भाषा में ही वह विशिष्ट संदर्भ समाहित रहता है, उन्हें अलग से उसकी व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं रहती -

यह वही जंगला
जहाँ से बार-बार वसन्त आकर
उधर कोने में पड़े
खाली कनस्तर में गया है डूब
यह वही छत
जहाँ रातों में पुतलियों ने लिखे
कितने रंगीले नाम गीले नाम
जो लिप पुत गए है
उठे चुल्हे के धुएँ से ।

वसन्त का कोने में रखे खाली कनस्तर में डूबना या रंगीले और गीले नामों का चुल्हे के धुएँ में लिप-पुत जाना, जिन संदर्भ संकेतों को उजागर करता है उनका सीधा सम्बन्ध आर्थिक विषमता से है । ये विशेषताएँ यदि कुंठा में पर्यवसित नहीं होती तो

इसका कारण कवि का यह बोध है कि 'अँधेरे बन्द कमरे' से बाहर भी एक जिन्दगी है । कवि का यह एहसास कि जिन्दगी की सारी संभावनाएँ, इस कमरे के एकान्त में निःशेष नहीं हो गई' उसे जीवन की व्यापक लय में अपनी लय खोजने के लिए प्रेरित करता है । यही कारण है कि मिश्रजी का प्रकृत स्वरूप उनकी कविता के ग्राम्य-जीवन के प्रेरणापूर्ण चित्रों में आकार ग्रहण करता है और यहीं एक 'नए कवि' की द्रष्टि और संवेदना का, उसकी भाषा और शिल्प का एक विरोधाभास हमारे सामने उभरता है । यानी मिश्रजी की कविता में व्यक्त ग्राम्य चेतना, गाँव और परिवार के साथ बनते-बिगड़ते सम्बन्धों की संवेदनशील पहचान, सबको अपने में समेटने, सबके साथ जुड़ने और सब में समाहित होने की ललक और कामना की गँवई मानसिकता को आधुतिकता बोध जो जाने-अनजाने कुंठा, संत्रास, अकेलेपन की पीड़ा का पर्याय मान लिया गया है - कि अनुकूल नहीं माना जा सकता । स्वयं मिश्रजी भी आधुनिकतावादियों के आग्रहों के प्रति आशंकित दिखाई देते हैं । अपनी यह आशंका उन्होंने 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' और 'पक गई है धूप' की भूमिका में व्यक्त की है ।

१) आधुनिकता का समर्थक हूँ मैं - उसे जीकर आकार देने का विश्वासी । किन्तु एक प्रकार के अतिवादी फैशन को आधुनिकता मान लेने में मेरी आस्था नहीं है ।..... 'स्वाभाविक है कि अति आधुनिकता का पोज देनेवाले इन गीतों या गीतात्मक संवेगों-वाली अन्य कविताओं को अपटुडेट न माने' अपटुडेट नहीं, यानी कविता नहीं - 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' ।

२) रूमानी-सी दिखनेवाली कविताओं में भी संवेदना की ताजगी, रंग की विशिष्टता और अपना माहौल उन्हें भीड़ से अलग करने के लिए प्रयत्नशील है । इसीलिए मेरी द्रष्टि में ये कविताएँ पारम्परिक या रूमानी न होकर प्रासंगिक और आधुनिक है । वैसे आज की दुनिया में - जबकि कविता की परिभाषा और समझ वर्ष के हिसाब से बदलती जा रही है या बदलने का शोर किया जा रहा है तथा हर यथार्थवादी कविता आनेवाली पीढियों द्वारा रूमानी करार दी जा रही है तब मेरी यह आत्म स्वीकृति एक खतरा ही उठा रही है - 'पक गई है धूप' ।

वास्तविकता यह है, और जैसा नामवरसिंह ने निर्देश किया है, रामदरश मिश्र ऐसे कवियों में से है, जिन्हें प्रगतिशील आन्दोलन ने ही कवि बनाया ।[६]

संवेदना का लोकधर्मी रूप :

अनुभूति की प्रत्येक व्याप्ति कवि-कर्म की प्राप्ति न भी हो फिर भी कहना होगा कि मिश्रजी का संवेदन विश्व एकपार्श्वी नहीं है, खण्ड़ित नहीं है, नकारात्मक नहीं है । वैयक्तिक दर्द की अंतरतम छवियों से लेकर युगजन्य व्यथाओं के विषय में जाग्रत होने का, मूल्य चुकाने का दायित्व भी है । आये दिन इस विधायक तत्व की सराहना होगी ।

सामान्य रूप से कविता से पाठक की अपेक्षा सौन्दर्यानुभूति की होती है । परन्तु मिश्रजी जैसे कवि मानवीय सम्बन्धों की सच्चाई के आयाम से अनुभूति के सौन्दर्य को शक्ति प्रदान करते है । मिश्रजी के यहाँ के वसन्त के जो विविध रूप है वे उत्तर भारत के ग्रामीण अंचलों की धरोहर है । इनके गीत-लोकगीत जैसे पारदर्शी है, अपनापन जताते है, उनमें लोकचेतना की लय है । गीत-गज़ल सुनते लगता है कि कवि होने और मनुष्य होने के बीच कोई फासला नहीं । कभी कविता की पगदंड़ी पर मनुष्य चल रहा है तो कभी मनुष्य की दीठियों के द्वारा कविता शिखरों को छूना चाहती है । ऐसे गीतकार कभी वर्ग-संघर्ष के ठेकेदार नहीं बन सकते, न तो अपने राग-द्वेष छिपाते है । खुलेपन का माहौल देखिए :

किसी को गिराया न खुद को उछाला
कटा जिन्दगी का सफर धीरे-धीरे !

इस गजल में तो जीवन-द्रष्टि व्यक्त हुई है, अन्यत्र स्वीकारोक्ति के रूप में पाई जाती है ।

शब्दों पर शब्दों के चेहरे
अर्थों पर अर्थों के पहरे
पढा नहीं जाता यह श्याम पट
अक्सर जिस पर लिखा गया हूँ ।[७]

डॉ. रामदरश मिश्र के गीत की ये पंक्तियाँ उनके रचनात्मक वैशिष्ट्य को रेखांकित करने की द्रष्टि से ही नहीं, बल्कि उनकी रचना प्रक्रिया को समझने की द्रष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं । उनके गीत अपनी लयात्मक आवेगशीलता में जिस आत्मीयतापूर्ण और अंतरंग अनुभव-जगत की रचना करते है, उसमें व्यापक जन-जीवन की आशा-निराशा के हल्के-गहरे रंग बड़ी सहजता और एक कलात्मक अनुशासन के साथ घुलमिल जाते है । उनमें व्यक्ति की आत्म-स्थितियों का उद्‌घाटन तो रहता ही है साथ ही जन-संकुलता का भाव भी समाहित रहता है । व्यक्ति मन और व्यापक जन-जीवन के बीच खड़ी की गई दीवार - जिसने नई कविता के चरित्र को दूर तक प्रभावित किया था - मिश्रजी की अनुभूति की आँच में गलकर ढह जाती है, या फिर वह इतनी पारदर्शी बन जाती हैं कि वहाँ अन्तर बाह्य का द्वैत महसूस नहीं होता । मिश्रजी के गीतों में जहाँ एक ओर नई कविता की व्यक्ति संवेदना की एकनिष्ठता है वहीं दूसरी ओर प्रगतिवाद की सामाजिक चेतना का अनुभवात्मक विस्तार भी है । यही कारण है कि वे अपने गीतों में जहाँ आधुनिकता की चुनौतियों का सामना करते है - नगर-बोध, आत्म-निर्वासन और एकाकीपन की पीड़ा के रूप में - वहीं आर्थिक, सामाजिक स्तर पर मानव-मुक्ति के लिए चलनेवाले उस ऐतिहासिक संघर्ष के साथ जुड़े होने का एहसास भी जगाते है, जिसको अनदेखा-अनचाहा छोड़ देना अपने आपको अप्रासंगिक बना लेना है । यह

सच है कि गहरी भावात्मक उत्तेजना निजी संवेदना की गहन आवेगशीलता के बिना गीत की रचना नहीं की जा सकती और अगर की जाती है, तो वह जीवन-जन्य आवेगों से शून्य हृदय की भाव-स्थितियों का बौद्धिक बखान बनकर रह जाता है । लेकिन रचनाकार के अनुभव के इकहरेपन या उसकी संवेदना के आत्मबद्ध रूप तक गीत को मर्यादित कर लेना, उसे एक रचनात्मक शर्त के रूप में प्रस्तुत करना, गीत को जीवन की व्यापकता और संकुलता से काटकर एक ऐसी अंधेरी दुनिया में धकेल देना हैं, जहाँ के दम घोंट वातावरण में वह अपने प्राण खोने लगे । ऐसे में हम या तो उसकी अन्तिम छटपटाहट को ही उसकी पहचान मानकर चलें, या फिर घोषणा कर दें कि गीत की दिशा मर चुकी है और यह कि युग की संक्रमणशील भाव-स्थितियों को व्यंजित करने की क्षमता अब उसमें नहीं रह गई । नई कविता के दौर में इस प्रकार की घोषणाएँ आम तौर पर की जाती रही है । लेकिन इससे गीत रचना में परिमाण और गुणवत्ता के स्तर पर किसी प्रकार की ओट नहीं आने पाई । हाँ यह अवश्य हुआ है कि गीत में एक नए किस्म की आत्म-सजगता पैदा हुई, नई चुनौतियों के आलोक में उसने अपने आपको संशोधित-परिष्कृत किया । यानी अपने निजी अनुभव की संवेदनात्मक तात्कालिकता को सुरक्षित रखकर अपने परिवेश के अधिकाधिक तथ्यों और तत्त्वों को अपने में समेटने का प्रयत्न किया । विशेषता यह है कि गीत का यह आत्मविस्तार आत्म-साक्षात्कार के स्तर पर घटित होता है ।[८]

मिश्रजी के काव्य : मानवीय परिवेश :

हमने प्रारंभ में ही मिश्रजी के गीतों की जन-संकुलता की बात की थी । उनका बादल 'जन-जन के उर का कोलाहल पीकर जीता है ।' उनका वसंत सौ-सौ उजड़े वन-बागों की आहों का झोंका लेकर आता है, मानव उनके अंतर में जग की नव-नव पीड़ा भर जाता है, वे विश्व की हर एक लय पर गति की अमर ध्वनि बाँधते है उनके उल्लास में जीवन की लहरों की क्रीडा और रूदन में मानव की पीड़ा समाहित रहती है । उनको अपनी राह में लाखों लुटी-सी, खोई हुई धडकनें मिल जाती है । उनके एकान्त क्षणों में भी दूर देशों से लौटकर अनेक परछाइयाँ आ जाया करती है । कितने ही 'अजनबी स्वर' उनकी काव्य-पंक्तियों में अपने को अंकित करते है । उनके साथ 'परछाइयों का एक घेरा' लगा रहता है । जैसे मिश्रजी स्वयं अपनी प्रकृति के इस वैशिष्ट्य से पूरी तरह परिचित है, जैसे वे जानते है कि उनकी एकांतिकता में भी जन-संकुलता व्याप्त है । जब वे कहते हैं -

दूरियों-सा मैं स्वयं के बीच
जन-संकुल

तो उनकी इस आत्म-स्वीकृति में न कोई बड़बोलापन है और न कोई आत्म-स्वीकृति ।

यह सचमुच अपनी रचनात्मक प्रकृति को समझने पहचानने का उपक्रम है ।

'सन् ७० के बाद से मिश्रजी की गीत लिखने की गति मंद पड़ गई, गीत लिखे किन्तु बहुत कम । इसका कारण यह है कि मिश्रजी कथा-साहित्य से अधिक जुड़ गए । उसे लगा कि कविता अपने समय के व्यापक और जटिल यथार्थ को व्यक्त करती है, किन्तु वह कथा साहित्य की तरह गली-कूचों में और रोजमर्रा की जिन्दगी की आम हकीकतों तक नहीं पहुँचती और फिर कविता में गीत तो और भी दूर रह जाता है । उसकी प्रकृति ही नहीं है वहाँ पहुँचने की । उसकी प्रकृति के विरूद्ध इधर उस पर सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक यथार्थ का बोझ लादने की कोशिश की गई । किन्तु इसका परिणाम क्या हुआ ? न वह गीत रहा और न उसके माध्यम से जगत की जटिलताएँ ही व्यक्त हो सकीं ।'[९]

युग-जीवन की व्यापक सच्चाइयों को अपने गीत में समेट पाने की अपनी असामर्थ्य की ईमानदार स्वीकृति के बावजूद और इस तथ्य के आत्म स्वीकार के बावजूद कि गीतों के साथ उनका रिश्ता टूट-टूटकर जुड़ता रहा है, हम मिश्रजी के साथ असहमत होने की छूट लेना चाहेंगे । एक ईमानदार रचनाकार और खास तौर से ऐसा रचनाकार जो जीवन के यथार्थ को उसकी व्यापकता और समग्रता में निरूपित करना ही अपने कवि-कर्म की सार्थकता समझता हो, प्रायः अपनी कला के अभिव्यक्त रूपों के प्रति असंतुष्ट बना रहता है । संभवतः इस प्रकार की मानसिकता रचनाकार की संवेदना और उसके बोध के विस्तार तथा उसके अपने आत्म-परिष्कार के लिए निहायत जरूरी है । यदि ऐसा न होता तो मिश्रजी के गीतों में प्रारंभ से लेकर अन्त तक जीवन के यथार्थ के साथ जो एक गहरी सम्पृक्ति और मानवीय पीड़ा के स्त्रोतों तक पहुँचने की रचनात्मक बेचैनी दिखाई देती है, वह सुरक्षित न रह सकी होती । हाँ, यह आवश्यक है कि उनकी सामाजिक चेतना बौद्धिक ढंग से अर्जित की हुई चीज नहीं है, वह उनके रचनात्मक अस्तित्व की एक शर्त है । हर एक रचनाकार किसी-न-किसी स्तर पर अपने आपको समाज से जुड़ा हुआ पाता है । जरूरी नहीं है कि यह सम्बन्ध सामंजस्यपूर्ण ही हो, यह विषम और निषेधात्मक भी हो सकता है । व्यक्तिवादी रचनाकार के लिए समाज एक अवरोधक तत्त्व है । वह उसकी अबाधित स्वतंत्रता को मर्यादित बनाता है । कुछ रचनाकार अपने आपको समाज के प्रति अधिक उत्तरदायी महसूस करते है । कभी-कभी यह दायित्व बोध उन्हें एक अलग किस्म के अतिवाद की ओर ले जाता है । उनके लेखे समाज परस्पर विरोधीं तत्त्वों को एक ऐसा अराजकतापूर्ण संश्लेष है, जिसको नया रूप, नया संस्कार देने का दायित्व उन पर आ पड़ा है । जैसे उसे सुधारने के लिए ही वे जन्मे है - रचनाकार बने है । समाज के साथ मिश्रजी का रिश्ता अपेक्षाकृत अधिक विवेकपूर्ण और अधिक संतुलित है । वह उनके आत्म परिष्कार और आत्म संशोधन के लिए भूमिका का निर्माण करता है -

सौ बार बिछी पथ पर मेरे,
कितनों के अन्तर की काई ।
पर उनमें ही मैं देख सका,
अपने दोषों की परछाई ।।

कितनों की उपस्थिति मिश्रजी की आत्मबद्धता के घेरे को तोड़ती है, उनके आत्मविस्तार को संभव बनाती है ।

निष्कर्षतः मिश्रजी की संवेदना लोकधर्मी है । वैयक्तिक पीड़ा और उल्लास की उत्कट आवेगशीलता उनके गीतों में न हो, यह बात नहीं है, लेकिन अभिव्यक्ति के स्तर पर वे अपने निजत्व को भी सार्वभौमिकता से जोड़ देते है । जैसे वे जिस भाव को अभिव्यक्ति देते है, वह भाव जितना उनका है, उतना ही दूसरों का भी है । जैसे उनके गीत समानधर्म की खोज के उपकरण है । कोई अज्ञात सानिध्य, कोई संवेदनशील मानवीय उपस्थिति, उनके गीतों के भाव-बोध की अनिवार्यता बनकर आती है -

१) **रात में डूबे पथों पर दूर**
रह-रह बज रही है, सीटियाँ ।

२) **पल-छिन मेरा संग न छोड़े,**
यायावर बादल ।

३) **हाँक लगाते कितने बौरे क्षण**
उन्हीं घाटियों से गुजरे होंगे,
जल में खोई रेखाओं जैसे
मेरे-तेरे स्वर उभरे होंगे ।

४) **इन अँधेरी घाटियों में**
मीत कोई गीत गाएँ,
सिर झुका चुपचाप चलने से
उमर कटती नहीं है ।[१०]

जैसे जीवन अपनी समग्रता में एक एकाई है । कवि अपने गीतों द्वारा उस समग्रता को खोजता और परिभाषित करता है । लेकिन इसके लिए उन्हें कोई अतिरिक्त प्रयत्न नहीं करना पड़ता । शब्द में रची-बसी लोक-जीवन की स्मृतियों को वे अपने गीतों में कुछ इस ढंग से नियोजित करते हैं कि उनकी भाषा जीवन के एक से अधिक स्तरों को छूने लगती है । उनका जीवन-बोध अपनी रचनात्मकता में सांस्कृतिक बोध का पर्याय बन जाता है । उसमें लोक-संस्कृति के आदिम राग बोध के तत्त्व अपनी पूरी ऐंद्रिक उत्तेजना के साथ घुल मिल जाते है । ऋतुओं, पर्वों, उत्सवों के प्रति उत्पन्न होनेवाली भावाकुलता उनके शब्दों को, अनुभवात्मक व्याप्ति प्रदान करती है । लेकिन गीत को

आदिम आवेगों-ऐन्द्रिय अनुभूतियों की अभिव्यक्ति तक मर्यादित कर देना मिश्रजी को अभिप्रेत नहीं है । उनका शब्द संयोजन, उनका कला विवेक, वस्तुतः उनके मानवीय विवेक का ही बिम्बात्मक रूपान्तरण है । आज की पूंजीवादी व्यवस्था से जन्म लेनेवाली असंगतियों और अन्तर्विरोधों ने मनुष्य के अन्तर्जीवन के सहज उन्मेष को, मनुष्य होने के उसके एहसास को किस रूप में कुंठित किया है, मनुष्य और मनुष्य के बीच कितनी दुर्लंघ्य खाई खोद रखी है - इन सारी स्थितियों की एक संवेदनशील जाँच-पड़ताल का काम मिश्रजी अपने गीतों के द्वारा उसी सहजता से कर लेते है, जिस सहजता से यह काम उन्होंने अन्य विधाओं के माध्यम से किया है । लगता है कि जब वे अपनी बात को अपेक्षाकृत अधिक वैयक्तिक और अधिक अनुभूत्यात्मक धरातल पर कहना चाहते है, तो गीत-रचना उसकी एक अनिवार्यता बन जाती है । यह सच है कि उन्होंने गीत कम लिखे है, लेकिन जो लिखे हैं, उनमें उनकी अनुभूति की आँच और जीवन का रस-कस है ।[११]

अनुभवों के छन्द : गीत : (डॉ. हरिमोहन)

''मानव संवेदनाओं और मूल्यों के संदर्भ में ही नये-नये प्रयोगों की सार्थकता है, यह विश्वास लेकर मैंने नयी कविता भी लिखी है और नये गीत भी । यों मैं नये गीतों को - नयी कविता नहीं मान पाता ।''

रामदरश मिश्र का काव्य-क्षेत्र में प्रवेश गीतों के माध्यम से ही हुआ । प्राकृतिक और मानवीय सौन्दर्य तथा प्रेममूलक संवेदना की उद्दामता उनके आरंभिक गीतों में मिलती है, जो निश्चय ही रागात्मक है । बाद में धीरे-धीरे उनके गीतों से यह रोमानी प्रभाव, रागात्मक उफान और रागात्मक उत्तेजना का फैलाव छंटता गया और अनुभवों में ठोसपन आता गया है ।

काव्य में केवल विचार-बिम्ब ही पर्याप्त नहीं । कविता में आज विचार की भूमिका होती तो जरूर है, लेकिन विचार को अनुभवों के माध्यम से गुजरना होता है । यदि नहीं गुजरता तो वह केवल एक विचार का प्रवाह या वर्णन भर रह जायेगा । अतः काव्य का बुनियादी रिश्ता अनुभव से ही है और अनुभव अपने स्वभाव में रागात्मक होते हैं । मिश्रजी ने इन तथ्यों को द्रष्टिपथ में रखकर अपने काव्य में संवेदना को ही विशेष महत्व दिया है । यही कारण है कि गीत और नवगीत में जो अन्तर है वही मिश्रजी के 'पथ के गीत' की रचनाओं और 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' तथा 'पक गई है धूप', 'कन्धे पर सूरज' में संग्रहित गीतों में है । यही क्यों ? 'पथ के गीत' तथा 'कन्धे पर सूरज' संग्रहों में उनकी कुछ कविताओं को छोड़कर बहुत-सी कविताओं की अन्तः शक्ति के मूल में रागात्मक मनः स्थिति दिखाई देती है । कहीं-कहीं तो जो लोग नवगीत और नयी कविता को अलग मानना चाहते है वे तय नहिं कर पाते कि मिश्रजी की ये रचनाएँ नवगीत है या नयी कविता । जैसे -

'' हो..... हो..... हो..... हो.....
गाता है पवन
नदी कहती है
सखे...! सुनो
बहती मैं रहूँ
और थामे तुम बांह यों रहो ।

फट गया झुका लंबा-सा कोहरा
उड़-उड़ कर आते स्वर आप
झरते मुझमें छोटे-छोटे पर
लहरों में ढोलक की थाप
जाती है सही न अकेले
साथ-साथ
तुम भी यह ऋतु सखे सहो ।''

('नदी कहती है', 'कन्धे पर सूरज')

इसी संग्रह की 'खो गई सब यात्राएँ साथ की', 'गाँव चार कविताएँ', 'बहती रही नदी', 'कोई ऋतु आयी थी' आदि कविताएँ इसी तरह की है ।[१२]

लयात्मकता काव्य का हृदय तत्त्व है, काव्य में संवेदनशीलता और मर्मस्पर्शन शक्ति का उद्‌भावक तत्त्व भी यही है । कोरी भावुकता आज के काव्य से कोसों दूर है, किन्तु उसने अपने अन्दर इस लयात्मकता के लिए अर्थ की लय का सन्धान किया है । यही बात अगर नवगीत के लिए भी कह दी जाये तो स्वीकार कर लेनी चाहिए । मिश्रजी का काव्य-चेतना, लय और उसके आंतरिक गुणों से परिचित है इसलिए उनके गीतों में आंतरिक प्राणवत्ता और लयात्मकता देखने को मिलती है ।

उनके गीतों में मात्र लयात्मकता ही नहीं, उनमें अर्थ, रंग और गंध का कुशल समावेश भी है । उन गीतों को पढते समय लगता है कि शब्दों में अर्थ के साथ गंध का सहज प्रवाह है और रंगों का सौन्दर्य सूर्य की किरणों के सदृश उनमें आत्मसात है :-

''पके धान-सी धूप झरी पतझर आया
सूना-सा आंगन धरती का भर आया
नारंगी-सी गंध हवा में भाती है
चुप्पी है यह अजब कि छू-छू जाती है ।''

(प्रतिनिधि साहित्य : 1961)

उनके गीतो में प्रकृति के मानवीकरण के छायावादी रंग से ज्यादा आज के हारे

हुए मनुष्य से संबंधित जीवन की एक मौन अनुगूंज है जो आज की मशीनी जिन्दगी में बेहद प्रासंगिक लगती है ।

पाठक के मन पर भाव, मनःस्थिति अथवा परिवेश की गहरी छाप छोड़ने के लिए इसी प्रकार की पुनरावृत्तियाँ अन्य कई गीतों में भी देखी जा सकती है, यथा :-

''पूरबी झरोखे से डाकिया
फेंक गया एक गोल पाती ।
घर आंगन में, मन में
तभी से कबूतर-सी धूप फडफडाती ।
पाती जो खुली
पांती पांती
किरणें झर गयी..... ।''

('धूप फडफडाती', 'पक गई है धूप')

मनश्चेतना में संकल्पित द्रश्य के रूपांकन के लिए वातावरण की सृष्टि अत्यन्त आवश्यक होती है । शब्दों की ध्वनि में विभिन्न अर्थों की अनुगूँज विद्यमान रहती है । मिश्रजी इस तथ्य से परिचित है । उनके शब्द-चयन की यह प्रमुख विशेषता है कि शब्दों का नादात्मक सौन्दर्य अपना अलग आकर्षण रखता है । शब्दों के उच्चारण मात्र से वातावरण जादू की तरह उभर कर आता है और गीत अपना पूरा चित्र मानस-पटल पर अंकित करता है । इन शब्दों से गीतों में गति, लय और स्पष्टता तथा कहीं-कहीं भिन्न अर्थों की व्याप्ति देखी जा सकती है । यथा :

''टन..... टन..... टन.....
थर्रा उठा सारा टीसन'' (बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ)

''झरते झर झर
डरते थर थर
.... पडते ढर ढर
आते भर भर'' (बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ)

मिश्रजी जीवन्त और ताजा अनुभूतियों के सफल कलाकार है । जीवन्त अनुभूतियों का स्वभाव ही मूर्तिमान होने का है ।

अनुभूति की सच्चाई का आग्रह रखने के कारण वे चित्रात्मकता बराबर बनाये रहे है । विषयानुरूप कोमल-मधुर, विराट-विस्मयकारी और विद्रूप बीभत्स चित्रों का उनके गीतों में अभाव नहीं है । उदाहरणार्थ - केवल दो प्रतिनिधि चित्र -

''झर रहीं अनगिनत रेखाएँ महकती

थकी वायु नहा रही है''

इस चित्र में वायु के जल-विहार का सूक्ष्म सांकेतिक द्रश्य प्रस्तुत किया गया है । दिखती नहीं तो क्या हुआ महकती जल-रेखाएँ बता रही है कि कोई आवारा लड़की छिप कर नहा रही है, थकान मिटाने के लिए । कैसी होगी वह जिसके स्पर्श से लहरें महक उठी है । क्या ऐसे महेकते चित्र मैले हो सकते है ? दूसरा चित्र शाम शीर्षक गीत (पक गई है धूप) में :

''फूल-फूल में बंद हो रहा
झूकता-सा आकाश
दिशा-दिशा के बीच झूलता
है पुल-सा बातास
मौन-गूंज-सी एक न जाने किसकी किसके नाम''[१५]

(आती-आती-सी शाम)

मैं यह मानती हूँ कि 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' संग्रह के कुछ गीतों में पूरानापन है - जैसे 'बार-बार तुम आये', 'बाट बहारूँ', 'चैत आया है' । परन्तु उनके परवर्ती गीतों में ताजगी और नवीनता आती गई है ।

रामदरश मिश्र के गीत हिन्दी-काव्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है । आधुनिक जीवन को अपने पूरे प्रभाव के साथ कवि ने अपने गीतों में उतारा है । इन गीतों में प्रकृति के वस्तु-व्यापार कवि के लोक-जीवन के संस्कारों से संकलित निरावृत अनुभूतियों के अन्तरंग में लिपट कर उपस्थित हुए है । सत्य ही उनके गीत नूतन शिल्प के प्रतिमान है । उनके गीतों को 'गीत' कहें या 'नवगीत' कोई अन्तर नहीं पडता ।[१६]

(रामदरश मिश्र : 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' की भूमिका से)

पथ के गीत :

'पथ के गीत' 1951 में प्रकाशित मिश्र जी का सर्वप्रथम काव्यसंग्रह है । इस काव्य-संग्रह को गीत संग्रह कहना अधिक उचित होगा, क्योंकि इसमें संग्रहित रचनाएँ मुख्यतः गीत ही है । प्रस्तुत संग्रह के गीत संग्रह के नाम को सार्थकता प्रमाणित करते है । 'पथ के गीत' का महत्व डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी की भूमिका के कारण बढ जाता है ।

प्रणय, प्रकृति-चित्रण, मानवप्रेम, नारी-उत्थान, 'पथ के गीत' में विभिन्न भाव चित्रों के दर्शन होते है । इसमें प्रणय, प्रकृति-चित्रण, मावनता की सेवा, प्रेरणा स्वरूप नारी सम्बन्धी कविताएँ है । 'गीत' शीर्षक कविता में विरहिणी की व्यथित मनोदशा का सुन्दर चित्रण मिलता है । वेदना को प्रभावी बनाने के लिए कवि ने प्रकृति को उदीपन के

रूप में लिया है । बरसते बादलों को देखकर विरहिणी की व्यथा बढ़ जाती है । 'शारदीया राका', 'रात की पपीहरी', 'भूल नहीं पाता' आदि कविताएँ प्रेम के वियोग पक्ष का भावात्मक उदाहरण है । पहाड की सांझ, फागुन की रात, फागुन की प्रात, पतझर, पावस गीत, जाड़े में आदि प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में कवि ने प्रकृति के विभिन्न रूपों का चित्रण किया है । काव्य में प्रकृति-चित्रण की एक सहज परम्परा रही है । प्रकृति-चित्रण कविता को उत्कर्ष प्रदान करता है - 'काव्य के विषय में देखे तो मानव के पश्चात प्रकृति का स्थान है । भारतीय संस्कृति, दर्शन और काव्य में प्रकृति का विशेष आदर है । आधुनिक कवियों को नायिकाओं से अवकाश मिलने लगा और वे अपने चारों ओर देखभाल कर प्रकृति का यथार्थ और विशद् चित्रण करने लगे ।'[१७]

आधुनिक कविता में प्रकृति प्रेम का चित्रण अनेक रूपों में हुआ है । इस विषय में डॉ. त्रिभुवन सिंह का मत है - ''आधुनिक युगीन काव्य में भी यह प्रेम भावना अनेक रूपों में देखी जा सकती है । प्रकृति प्रेम, नारी प्रेम और दिव्य अथवा रहस्यवादी प्रेम इस की प्रमुख कोटियाँ कही जा सकती है ।''

'पथ के गीत' के किसी गीत में प्रकृति का स्वतंत्र चित्रण किया गया है तो किसी में भाव के उदीपन रूप में चित्रण किया गया है । किसी गीत में प्रकृति का मानवीयकरण किया गया है, जैसे

''यह फागुन की रात रे, मन उड़ उड़ जाए
हँसता मधु का चाँद गगन में
झुर-झुर छवि की धार नयन में
नग्न शिलाओं सी तरू-बाँहों से
छन-छन झरता रस वन में
जीवन के रेतीले पथ पर
यह रस की बरसात रे, मन उड़ उड़ जाए
गंधाकुल आकाश नशीला
पी कर पत्थर भी है गीला
भीग रहे उजले पथ
बरबस मन का बन्धन ढीला
छवि का नर्तन देख रही है
तारों की बारात रे, मन उड़ उड़ जाए ।''[१८]

रा. मि. रचनावली - (फागुनी रात) 23 फरवरी

'बापू के प्रति', 'मालवीयजी की चिता' आदि कविताओं में भावभीनी श्रध्धांजली अर्पित की गयी है, जो कवि के राष्ट्रीय दायित्व को व्यक्त करती है । अन्यन्त घोर संघर्षों

के पश्चात् प्राप्त आजादी का गीत भी कवि ने लिखा है । राष्ट्र प्रेमियों के लिए आजादी का दिन त्योहार से भी बढकर होता है । उन्होंने '15 अगस्त' नामक गीत में भारत की आजादी का गीत गाया है –

''प्राची के शिखरों पर भारत रवि का दीप जलाये
दिखा रहा है जिससे दुनिया मंजिल भूल न पाये
अखिल विश्व की मुक्ति चेतना का बनकर सेनानी
गरज रहा फिर विजय घोष में हिमगिरि शीश उठाये
भारत विजय ! तुम्हारी ही आशा में कितने माझी
दूर सिन्धु में गिर-गिर भी छोडते नहीं पतवार ।''[१९]

'मनाएँ क्या दिवाली हम' कविता में उच्च और निम्न वर्ग की आर्थिक विषमता के विरूद्ध कवि का आक्रोश तथा निम्न वर्ग की दयनीयता के प्रति सहानुभूति व्यक्त हुई है । निम्नवर्गीय व्यक्ति बेचारा अभाव की स्थिति में पर्व मनाने से भी वंचित रह जाता है ।

'सबने जीवन को दान दिया' नामक काव्य में कवि ने उन सब के प्रति जिन्होंने उनके जीवन को कुछ-न-कुछ दिया है, आभार प्रकट किया है ।

'जग में मैं सबका आभारी सबने जीवन को दान दिया
निर्जीव, मूक, अज्ञान, पंगु आँखों में भर सूनी छाया
मैं मिट्टी का पुतला केवल अनजानी धरती पर आया
सबने अपने अनुकूल दिया विश्वास घृणा, मधु हालाहल
मलयज ने उर में फूल दिया, तूफानों ने छाती में बल
मैं खुली आँख से, अन्तर से सबका वरदान लिये आया
मिट्टी के पुतले को सबने मिल बना अमर इन्सान दिया ।'[२०]

इन कविताओं में नारी का मांसल रूप भी व्यक्त हुआ है, साथ ही उसे प्रेरणा के रूप में स्वीकार किया गया है । अंधकारमय निराशापूर्ण जीवन में नारी नवजागरण की शक्ति-सी है ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'पथ के गीत' कवि की भावी सृजन चेतना का आरम्भिक चरण है । इन गीतों में श्रेष्ठ रचनात्मक प्रतिमा के अंकुर खोजे जा सकते है । 'मेरे प्रिय गीत' की भूमिका में मिश्रजी ने स्वयं लिखा है – 'इनमें मेरे किशोर मन के कच्चे-पक्के भावुक उद्‌गार है ।'[२१]

संवेदना का सहज एवं गहरा सरोकार

रामदरश मिश्र हिन्दी-जगत् में ऐसे चिर-परिचित एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति है, जिन्होंने अपनी बहुआयामी प्रतिभा का परिचय उपन्यास, कहानी, कविता, आलोचना एवं निबंध की विधा में दिया है । इन सभी क्षेत्रों में वे चर्चा का खास विषय समय-समय पर बने हैं । लेकिन मिश्रजी की मूल-चेतना कवि की है, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है । मिश्रजी की काव्य-यात्रा प्रारंभ में एक गीतकार के रूप में रही, फिर गीतकार और कवि के आपसी संघर्ष के रूप में और अब एक चर्चित कवि के रूप में रही है । जहाँ कहीं-कहीं कभी-कभी गीतों की संवेदना और ध्वनि का संस्पर्श मिल जाता है, मिश्र जी के चारों संग्रहों के विश्लेषणोपरान्त जो घनीभूत होती प्रवृत्तियाँ मिलती है, वे लोगों के बीच स्थापित गीतकार के 'इमेज' को तोड़ती ही नहीं, बल्कि कई ध्यानाकर्षक बिन्दु उभारती है, जिनकी सविस्तार चर्चा कर उनके प्रकाशित संग्रहों के साथ-साथ एक विकास के रूप में देखेंगे -

ग्रामीण परिवेश

रामदरश मिश्र एक गंवई इलाके में अपनी तरूणाई का हिस्सा व्यतीत कर आए है । इस हिस्से में उनको ग्रामीण सौन्दर्य एवं संवेदना एक विरासत के रूप में मिली है । फिर वे 1946 में बनारस की सांस्कृतिक नगरी में आए, जहाँ उन्होंने अपनी साहित्यिक गतिविधियाँ शुरू कीं । 1958 तक वे छायावादी प्रभाव महसूस करते रहे है, हालाकि इसके बीच नयी कविता की धारा उनके अन्दर बह चली थी । यह नयी कविता सामाजिक अनुभवों की कहानी अधिक थी, एक आन्दोलन और प्रगतिवाद के विरोध के रूप में कम । स्पष्ट रूप में, प्रगतिवादी फोर्मुलों का विरोध, सामाजिक संचेतना और मार्क्सवाद एक 'आइडियोलोजी' के रूप में नहीं बल्कि अन्तर्दृष्टि के रूप में घर कर रहा था । साथ-ही साथ लोक-संस्कृति, जहाँ गाँव की नैसर्गिक सुन्दरता, ठेठपन, सुख और दुःख है, सर्वत्र व्याप्त थी । 1951 में रामदरशजी 'पथ के गीत' संग्रह के साथ साहित्य की दुनिया में आए, हालाकि छायावाद के रूमानी प्रभाव, प्रकृति के साहचर्य और कोमल जीवन के भावुक उतार-चढाव की मिठास के अलावा उस संग्रह ने कई लोगों का ध्यान खींचा । इसके पीछे उक्त संग्रह में लिरिक की मूल संवेदना की निजी छाप, रचना का टटकापन और जीवन से साक्षात्कार की सहज प्रतिक्रिया थी, जो उनके अन्दर संभावनाएँ जगाती थी और पहचान स्थापित करने में सहायक सिद्ध हो रही थी । यह पथ निःसंदेह उनके तरूण अनुभवों का था, जहाँ वे अपनी आँखें खोल रहे थे । जीवन-जगत् और प्रकृति के रहस्यों को समझ-बूझ रहे थे, साथ ही प्रेम, आशा, आकांक्षा, गति, सौन्दर्य, विस्मय और कौतूहल का गीत गुन गुना रहे थे - इन सारे गीतों में जहाँ रचनाकार की आत्म-पीड़ा और आत्म-प्रक्षेपण है, वहाँ ''मैं आषाढ़ का पहला

बादल', 'मेरी राह न बांधो', 'जन-जन के उर का', 'कोलाहल पीकर मैं गाता हूँ' की ध्वनि भी सुनाई देती है । अपनी निरन्तर गति के बीच में उन्हें यह जिज्ञासा भी ध्यान खींच लेती है -

''मैं अषाढ़ का पहला बादल
मेरी राह न बाँधो
जन-जन के उर का कोलाहल पीकर मैं गाता हूँ
मधुर कल्पना-सा फिर नभ में उड़ता लहराता हूँ
फिर भी दूर नहीं है मुझसे जीवन की पगड़ंड़ी
धरती के अधरों पर बन कर बूंद उतर आता हूँ
तुमने केवल तन पहचाना, मन पहचान न पाए
अपनी लघु नौका से मेरा
सिन्धु-अथाह न बाँधो ।'' (13 अगस्त 50)
'पूछता तब मैं स्वयं से पथ के उस पार क्या है,
मूक चोटी से निरन्तर झर रहा एक निर्झर !''

लेकिन यह ध्यानाकर्षण उनके विकासशील मार्ग का अवरोध नहीं बनता, क्योंकि उनकी तन्मयता 'चक्कियों से गीत के स्वर' में है, तो 'पर विद्रोही कब सुनता है', 'आशा और निराशा के बीच' जैसे स्थलों में भी या फिर 'रो उठता हूँ, जब रो उठती', 'अन्तर में मानव पीड़ा', फिर भी 'स्वर्ण-तितली, ग्राम-परियां, रात की पपीहरी, नीम की नंगी बाहें, पाकड़, गंधा कुल आकाश, पीली बेला में कछार की सरसों का वन उन्हें बार-बार 'खेत के बीच बबूल' और 'झुर्रियाँ', 'युग की निशानी' जैसी विसंगतियों से दूर खींचकर ले जाती हैं । मिश्रजी की खट्टी-मिट्ठी अनुभूतियाँ, संवेदनशीलता और प्रकृति के साथ आत्मीय जुड़ाव अपनी सहजता, सरलता और सच्चरित्रता से काव्य-सुख पाठकों को प्रदान करता है और उन्हें खींचकर लाता है, उस पथ पर जो अपने रूप बदलता हुआ 'कंधे पर सूरज' तक फैल गया है, एक व्यापक चौड़ाई के साथ ।[२२]

'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' में मिश्रजी के गीतकार ने 'पथ के गीत' के धरातल को छोड़कर नयी जमीन तैयार की है । इस नयी जमीन की आवश्यकता पर कवि विजेंद्र के विचार उल्लेखनीय हैं, **''जिन सीधी-सादी भाव-स्थितियों को, जब इन कवियों ने 'नयी कविता की बौद्धिक संश्लिष्टता' के बोझ से बचा, एक सहज ढंग से व्यक्त किया, कदाचित् तभी उन्हें एक नये प्रगति लय का बोध हुआ । नयी कविता की लय की अपेक्षा पाठक को इसकी पकड़ आसान थी..... नयी कविता में जिस महत्वपूर्ण मूल्य का अभाव बराबर महसूस किया जा रहा है,**

उसकी पूर्ति इस गीत ने की है । इसी अर्थ में यह नयी कविता का पूरक माना जा सकता है पर उससे अलग और स्वतंत्र भी ।'' दरअसल ऐसा लगता है कि गीतकार के अन्तर्मन को विस्थापित कर कविता लिखने की मनःस्थिति के बीच सदैव द्वन्द्व मिश्रजी ने महसूस किया है । कविता लिखने की मनःस्थिति जो मिश्रजी की गीत लिखने की मनःस्थिति के बाद की है, एक क्रम लिये हुए नहीं है, लेकिन इसके बावजूद मिश्रजी ने अपने व्यापक अनुभव अपनाकर अधिकार, विपुल ज्ञान और वैचारिक संतुलन के द्वारा कविता को हर संकट से बचाने का प्रयास किया है, जिसमें ज्यादातर वे सफल हुए है । शमशेरजी इतना ही कहकर संतुष्ट हो गए - **''मिश्रजी एक सच्चे कवि हैं, बहुत बडे कवि नहीं, मगर बहुत ही संवेदन शील, सच्चे लिरिक जो उनका मूल स्वर है'' । लेकिन अगर मिश्रजी के बारे में शमशेर जी आज फिर सोचें तो निःसंकोच उन्हें अपनी राय बदलनी पड़ेगी - खास कर लिरिक के माने में लोक कला का रंग, भोगे गए धुन और उलझन तथा दुरूहता का अभाव, मिश्रजी की कविताओं के संदर्भ में शमशेर की तरह सबको प्रिय है ।''**

इनका रचना-संसार रेखाओं को तोड़कर विस्तृत हुआ है, जहाँ नयी आकृतियाँ उभर रही है - बस-स्टैंड, थके लोग, देर से चिल्लाती गाड़ी, भीड़, फुटपाथ, पेशेवर धर्मनेता, क्लब, थियेटर, मेनकाएँ, बाजारों की रोशनी, अंग्रेजी की मानसिकता, सब कुछ उनके काव्य-क्षितिज पर उभर रहा है - अब मिश्रजी समय बलवान होता है, जैसी धारणा को बेइमानी समझते है, क्योंकि समय तो सर्वदा उन लोगों का साथ देता है, जिनके पास उत्पादन के साधन है - **''तुम्हारे कांपते हाथों ने / तराजू का पलड़ा, हंमेशा झुका दिया है उस ओर, जिस ओर गेहुंअन सापों का समूह, कुंड़ली मारे बैठा होता है गड़े रत्नों पर, आराम से चूहों को पानी की तरह चुभलाता हुआ'' या फिर ''तुम्हारे पथरीले तूफानों ने, बसंत की अगवानी करते बौरों के सिर फोडे है'' यह समय वह हवा है, जो दीपक की लौ बुझाती है पर आग की आंच तेज करती है - 'धैर्य रखने, सत्य के विजय होने की शास्त्रीय नारेबाजी और देश की स्वतंत्रता खतरे में''** जैसे मुद्दे केवल बरगलाने की मंशा रखते है । मूल समस्या की ओर कोई ध्यान नहीं देता यानी 'बेसिक स्ट्रक्चर' समाज को बदलने की सख्त जरूरत है - 'समय देवता' मिश्रजी की गिनी-चुनी अच्छी कविताओं में से एक है । इस संग्रह की एक कविता -

'धरती (इस देश की धरती - सोना उगले-उगले हीरे मोती)
धरती माने गुरूजी और गो माता
धरती
धरती माने प्रिवीपर्स और बहीखाता

धरती

धरती माने अयूब, जोनसन और चाउ एन लाई

धरती

धरती माने गुप्ता-पाटिल-देसाई

धरती

धरती माने शेख-पादरी-पण्डा

धरती

धरती माने तीन तुमडी का झण्डा

धरती माँ

तुम लायक बेटों-द्वारा

कितने अर्थों में बाँट दी गयी हो !'

- 'पक गई है धूप'

नागार्जुन की 'ओम-शांति मंत्र' जैसी कविता की याद दिलाती है ।[२३]

प्रगतिशील अंतर्दृष्टि एवं रागात्मक निष्ठा

-: **'दिन एक नदी बन गया' - (महेश आलोक)**

''हमारे हाथ में सोने की नहीं

सरकंड़े की कलम है

सरकंड़े की कलम है

खूबसूरत नहीं, सही लिखती है

वह विरोध के मंत्र लिखती है

प्रशस्ति पत्र नहीं लिखती

हम कठघरे में खड़े है, खड़े रहेंगे

और कठघरे में खड़े हर उठे हुए हाथ को

अपने हाथ में ले लेंगे

राजा कौरव हों या पांड़व

हम तो सदा बनवास ही झेलेंगे ।'' ('कलम')

वस्तुतः रामदरश मिश्र के काव्य-संसार की जीवन्तता और उसकी मर्यादा को पकड़ने के लिए, उनकी संवेदनात्मक समझ और काव्य-विवेक से गहरा परिचय प्राप्त करने के लिए और हाँ - उनके अनुभव की ताजगी और बारीकियों से सीधा संपर्क स्थापित करने के लिए जरूरी है कि हम सदा यह ध्यान में रखें कि उनके हाथ में सरकंड़े की कलम

है, जो हंमेशा सही लिखती है । इस सही लिखने में प्रकारान्तर से ठेठ ग्रामीण जीवन और संवेदना से वह गहरा जुड़ावा शामिल है, जहाँ मिश्रजी आत्मिक स्तर से विकसित हुई सहज और सार्थक प्रगतिशील अंतर्दृष्टि की पक्षधरता में खड़े है । पूरी कविता संरचनात्मक स्तर पर निहायत असंवेदनशील सत्तावादी व्यवस्था को बहुत धीमे से खोलती है, जहाँ सच्चाई की ताकत के सहारे संघर्ष कर रहा रचनाकार सदियों से सांस लेता आ रहा है ।

'राजा कौरव हों या पांड़व
हम तो सदा बनवास ही झेलेंगे'

उपर्युक्त पंक्ति में वह संघर्षचेतना कहीं न कहीं विद्यमान है, जिसके बल पर रचनाकार उस शोषक व्यवस्था से समझौता नहीं कर पाता और वह व्यवस्था उसे 'बनवास' की सजा सुना देती है । इस 'बनवास' झेलने की चुनौती को हर उस रचनाकार को स्वीकार करना पड़ेगा, जो सही मायने में प्रगतिशील संवेदना को संघर्ष की तेज धार पर खड़ा रखना चाहता है ।

रामदरश मिश्र के यहाँ तमाम तथाकथित प्रगतिशील कविताओं की तरह वस्तु जगत् का तथ्यात्मक चित्रण नहीं है । उनकी खास विशेषता तथ्य के साथ रागात्मक सम्बन्ध विकसित करने की है । इस 'तादात्म्य' में वह गहरी आत्मीयता सुरक्षित है, जिसके सहज विस्तार ने उनकी कविता शक्ल ग्रहण करती है । इसी रागात्मक आत्मीयता ने उनकी कविता में वह स्वाभाविक और सार्थक जीवन-मूल्य विकसित किए है, जिसे अनुभूति के स्तर से उठाया गया है । संभवतः यही कारण है कि वे किसी-किस्म की गुस्सैल संवेदना के भाषिक रूपान्तरण से पूरी तरह बचते हुए जीवन के प्रति गहरी आस्था को सर्जनात्मक स्तर पर चरितार्थ करते है ।

''देखता हूँ
चारों ओर अंधकार के कटे-कटे खंड़
मांस के बड़े लोथड़ों से लुढ़के पड़े है
उजाले की तलाश में भटके हुए लोग
रह-रहकर सियारों की तरह हुं आते है
और थक कर चबाने लगते है चुपचाप
अंधेरे का एक टुकड़ा'' ।

('अपने में अपने से अलग')

इस देखने में वह गहरी पीड़ा छिपी हुई है, जो 'घिसे हुए विराट मौसम' और यांत्रिक सभ्यता के जंगलनुमा अंधेरे से मनुष्य को खींचने की तरफ उन्मुख है । वस्तुतः परिवेश का दबाव जब इतना गहरा हो उठता है कि हमारी चेतना स्वयं परिवेश का

अंग बन जाए और अंधेरा हमारी नसों में समा जाए या हम थक हार कर अंधेरे को स्वीकार करने के लिए विवश हो जाएँ - ऐसी स्थिति में हम - संवेदनात्मक स्तर पर 'रिएक्ट' नहीं कर सकते । 'रिएक्ट' करने के लिए जरूरी है कि भीतर किसी कोने में सार्थक जीवन मूल्यों का एक संसार दबा पड़ा हो । मिश्रजी इसी कोने वाली जमीन को हलके से दबाते है । कुछ इस तरह जैसे ये जीवन मूल्य हमारी आत्मा की आवाज बनकर उभर रहे हों :

''लगता है मैं भी
कहीं खो गया हूँ इस अनाम जंगल में
अपने में अपने से अलग
लेकिन कौन है
जो रह-रह पुकारता है
मेरा नाम ?'' **('अपने में अपने से अलग')[२४]**

कहना न होगा कि रामदरशजी की चिन्ता के केन्द्र में मानवीय मूल्यों का वह जीवन और अर्थवान संसार संगठित है, जो जीवन की अर्थवत्ता को प्रभावित करता है । इस मूल चिन्ता को वे जीवन के प्रत्येक पक्ष में संयोजित होते देखना चाहते है । इस संदर्भ में दो कविताओं का उदाहरण देना चाहूंगी - पहली कविता - 'औरत' । 'औरत' को पूरे गृहस्थ परिवेश में रखकर उसकी पीड़ा को देखने दिखाने की कोशिश के रूप में चरितार्थ यह कविता लगभग सपाट कथनों का सहारा लेती हुई चलती है । यहाँ परिवार के प्रति उसके समर्पित व्यक्तित्व को सहानुभूति और आंतरिक पीड़ा के जटिल तनाव के द्वन्द्व के साथ खिंचा गया है -

''सोचता हूँ
तुमने क्या किया जिन्दगी भर
गृहस्थी के जुए में जुतने के सिवाय
पति कागज कलम लेकर
बड़े-बड़े संवेदनों और मूल्यों की
रचना करते रहे
और खुद बड़ा बनते रहे
बच्चे खिलते-महकते रहे.....।'' **('औरत')**

दूसरी कविता है 'धर्म' । इस कविता के सहारे मिश्र जी धर्म की उस 'नब्ज' पर अंगुली रखते है, जो जीवन की गतिशीलता और रचनात्मक का जीवन्त प्रतीक है । उसका चरित्र अग्रगामी और पवित्र है । वह तोड़ता नहीं, जोड़ता है । वह हमारी सक्रिय संवेदना का अर्थवान हिस्सा है । मनुष्य ने धर्म की इस मूल चेतना को लगभग भूला

दिया है-

''मैंने पानी से पूछा -
तुम्हारा धर्म क्या है ?
वह कल-कल करता हुआ ?
छोटे-बड़े सभी खेतों की ओर दौड़ चला
और चारों ओर
हरियाली का उत्सव जाग उठा ।'' **('धर्म')**

इसी तरह हवा, आग, आकाश और धरती के सहज स्वभाव को प्रगतिशील अन्तर्दृष्टि अैर रचनात्मक निष्ठा से खोलते हुए वे बहुत आहिस्ता से उसे पाठकीय संवेदना में रूपान्तरित कर देते है । ऐसा लगता है, जैसे मिश्रजी ऐसी उर्वर संवेदनात्मक जमीन का निर्माण कर रहे हों, जिससे धर्म की मूल चेतना का बिरवा फिरसे जड़ पकड़ सके । कविता का अन्त-

''मैंने सोचा
हम भी तो हवा, पानी, आकाश, आग और
धरती से बने हैं
लेकिन हमने उन्हें अलग-अलग धर्मों में
बांट दिया है
उन पर अपने-अपने नाम लिखकर
उनको उन्हीं से काट दिया है ।'' **('धर्म')**

यह सच है कि सदियों से चले आ रहे हिंसा कर्मों की क्रूर निरंतरता ने पूरी की पूरी मनुष्यता को खतरे में डाल दिया है । क्रूर अमानवीय स्थितियों का दबाव धीरे-धीरे इतना गहराता जा रहा है कि आदमी का पूरा का पूरा चरित्र संदेह के घेरे में सिमट गया है । इस खतरे ने जहाँ प्रकृति और मनुष्य के रिश्ते में दरार पैदा की है, वहीं मनुष्य और मनुष्येत्तर जीवों के रिश्तों में भी खौफनाक दहशत का दूषित रक्त प्रवाहित कर दिया है । इस यथार्थ की अनुभूति को पूरे प्रभाव में सर्जनात्मक स्तर पर संभव कर देने की सार्थक कोशिश रामदरशजी के यहाँ चरितार्थ हुई है ।

''कोयल से मैंने कहा -
कुछ सन्नाटा कटे
वह चुप रही
मैंने कहा -
मेरे पास आओ
कुछ सन्नाटा कटे

वह डाल पर बैठी रही
मैंने कहा -
अच्छा सुनो मैं ही गाता हूँ
उसने सहमी निगाहों से चारो ओर देखा
और एकाएक उड़ गयी'' **(बसन्त)**

कोयल का सहमी निगाहों से चारों ओर देखना और एकाएक उड़ जाना - मनुष्य के उस चरित्र पर बहुत बड़ा प्रश्नचिह्न है, जिसे उसने प्रकृति और मनुष्येत्तर प्राणियों के संसार में नकारात्मक हस्तक्षेप करके विकसित किया है ।

एक त्रासद अनुभव -
''चिड़िया
उड़ती हुयी कहीं से आयी
बहुत देर तक
इधर-उधर भटकती हुई
अपना घोंसला खोजती रही
फिर थक कर एक जली हुयी डाल पर बैठ गयी
और सोचने लगी
आज जंगल में कोई आदमी आया था क्या ?'' **('चिड़िया')**

अंतिम पंक्ति में निहित तीखी व्यंग्यात्मक चमक आदमी के नृशंस चरित्र को एक तिलमिला देने वाली सहजता से खोलकर 'वसन्त' कविता में निहित प्रश्नचिह्न या टिप्पणी को और संतुलित और अनुभूतिगत यथार्थ की संवेदना से संयमित कर देती है ।[२५]

इस 'प्रगतिशील समझ' का अर्थवान रिश्ता उस लोक जीवन और आस-पास के परिवेश से है, जहाँ से कवि ऊर्जा ग्रहण करता है । स्पष्ट है कि रागात्मक अन्तःवृत्ति को सामाजिक सरोकारों से जोड़कर गहरी करूणा और संघर्ष करने की अनुभूतिजन्य द्रष्टि विकसित करते हुए मिश्रजी जिस जमीन पर खड़े होते है, वह अपनी जातीय और सांस्कृतिक परम्परा की समझ की है, उसकी पड़ताल की है । कविता का अन्तिम हिस्सा अत्यंत मार्मिक है -

''रथों पर बैठे है ऊँचे लोग
और लाखों फटे हाल लोग
रथ खींच रहे है
जिन्हें नहीं मालूम कि
यह जुलूस कहाँ जा रहा है '' **('जुलूस')**

रथ में जुटे लाखों फटेहाल लोगों की दिशाहिनता पर की गई यह महज टिप्पणी या भावुक हृदय से उछाला गया सवाल भर नहीं है, बल्कि आगे बढ़कर उस पूरी सामाजिक व्यवस्था को जड़ से हिलाने की कोशिश है, जहाँ से इस प्रक्रिया की शुरूआत होती है । सदियों से धार्मिक गुलामी के संस्कार से संस्कारित निरीह जनता के भीतर वैचारिक समझ विकसित करने की कोशिश है, जो धार्मिक शोषण-तंत्र के विरूध्ध एक आवाज बनकर खड़ी हो सके । इस अर्थ में जुलूस एक बड़ी रचना है ।

वस्तुतः रामदरश मिश्र की कविताओं से गुजरते हुए यह एहसास बराबर बना रहा है कि हम यथार्थ की पुनःरचना के बीच खड़े न होकर यथार्थ को अनुभूति के स्तर पर घटित होते हुए महसूस कर रहे है । एकदम चुपके से हमारी संवेदना का जरूरी हिस्सा बनती ये कविताएँ मानसिक यथार्थ और वस्तुजगत् के यथार्थ को ऐसे बिन्दु पर संगठित करती है, जहाँ मानवीय मूल्यों का एक जीवित संसार पूरी सर्जनात्मक आस्था से प्रकाशित हो उठता है । जटिल परिवेशगत दबाव के नीचे विकसित होती तमाम विद्रूपताओं, विसंगतियों और हिंसक कारवाइयों की पहचान करने तथा उनके खिलाफ आवाज उठाने और संघर्षशील तेवर विकसित करने की समझ पैदा करती ये कविताएँ निश्चित रूप से 'प्रगतिशील अन्तर्दृष्टि तथा रागात्मक अन्तर्निष्ठा' की कविताएँ है ।[२६]

सम-सामयिक विभिन्न समस्याएँ :

सम-सामयिक विभिन्न समस्याओं के अंतर्गत कोई भी साहित्य समस्या के बिना अधूरा माना जाता है । मिश्रजी का साहित्य भी समस्याओं से भरा पड़ा है । उनकी हर एक कविता कोई-न-कोई समस्या लेकर आती है । मिश्रजी ने इन सभी समस्याओं के समाधान पर द्रष्टिपात किया है । समस्याएँ निम्नलिखित है -

नारी जीवन से संबंधित समस्याएँ

नारी सौन्दर्य और प्रणय

प्राचीन काल से ही नारी काव्य प्रेरणा की स्त्रोत रही है । भक्तिकाल के कवियों ने नारी को माया, बला, पुरूष को भव-सागर में डुबोनेवाली कहा है । रीतिकालीन कवियों ने नारी के सौन्दर्य को केवल सीमित रूप में देखा । उसके अनेक रूप सामने नहीं आये केवल भोग्य रूप ही दिखाई पड़ा । वासना की आँधी में नारी का स्वतंत्र अस्तित्व गायब हो गया है ।

छायावाद के कवियों ने नारी को देवी, माँ, सहचरी के रूप में चित्रित किया है । नारी-सौन्दर्य का विशेष रस के साथ अंकन किया है; किन्तु बदली हुई द्रष्टि के कारण न तो आकार शोभा से युक्त मात्र भोग्या युवती है और न तो आदर्शमयी वीरांगना, वीर माता है, वह अपने सभी रूपों से आती है ।

आधुनिक काल के कवि नारी को भी पुरूष के समान अधिकार देने के पक्षपाती है । उनके अनुसार पुरूष के समान नारी को भी प्रकृति के सारे वरदान मिले है, इसलिए समाज में जीवन के सारे कार्यों में समान रूप से उन्हें पूर्ण अधिकार मिलना चाहिए । आधुनिक काल के कवि स्वभावतः प्रेम और सौन्दर्य के बोध के साथ-साथ जीवन के अन्य अनुभवों को अपने में समेट लेते हैं और व्यक्तिगत प्रणय के ही गीत न गाकर, लोक-जीवन के सुख-दुःख को, यातना और संघर्ष को गहराई से उभारते है तथा उनकी व्यक्तिगत प्रणयानुभूति भी एकांतवासिनी न रहकर प्रायः लोक-गंध से ऊष्म हो उठती है ।

कवि रामदरश मिश्र मूलतः गीतकार है, उनकी संवेदना को गीतों का माध्यम अधिक अनुकूल लगता है और गीतों में विशेष रूप से व्यंजित होने वाला भाव है - प्रणय ।

प्रणय की आरम्भिक दशाओं से लेकर मिलन, विदा और विरह के सभी भाव मिश्रजी के गीतों में अभिव्यक्त हुए है । प्रणय गीतों की नायिका अपरिचित है, लेकिन वे उस अज्ञात प्रियतमा को कई रूपों में कई प्रकार के भावों से सजाकर हमारे सामने लाते है । उसके कई रूपों में से एक रूप यह भी है -

''तुम निराशा की अमा में प्रातः की पहली किरण हो
तुम सुनहली स्वप्न-सी भी शक्ति की नवजागरण हो
मेघ जब घिर-घिर बरसते पथ पर मेरे अन्धेरा
रूप में जलती हुई तुम ज्योति की चपला चरण हो ।''[२७]

कवि के काव्य में प्रणय की आरम्भिक दशा

मिश्रजी के 'प्रणय' की आरम्भिक स्थिति का चित्रण 'एक नीम मंजरी' नामक सुन्दर गीत में हुआ है । आंगन में एक नीम मंजरी के झरने से लोहे के द्वार कांप उठते है -

''एक नीम मंजरी
मेरे आंगन झरी
कांप रहे लोहे के द्वार ।''[२८]

एक बूंद में मानों सारा समुद्र सिमट गया है, मात्र एक निमिष में सारा समय सिमट गया है, रग-रग में थर-थरी है, सन्नाटा नाम लेकर पुकार रहा है । ये सारे भाव प्रणय की प्रथम अनुभूति है ।

'क्षणे क्षणे यन्नयतानुपैतितवदै रूपं रमणीयतायाः'

सौन्दर्य की यह व्याख्या कवि के इस गीत में अच्छी तरह अभिव्यक्त हुई है । 'बार-बार तुम आये' लेकिन हर बार नये सिरे से मन भाए । प्रणयी मन की बार-बार देखने की चाह और देखने की अनुभूति का चित्रण इस गीत में हुआ है -

'बार-बार तुम आये, छाये-छाये-छाये
लेकिन हर बार लगा पहले-पहले आये
आँखों ने कहा तुम्हें बार-बार देखा है
लेकिन हर बार खिंची नयी-नयी रेखा है
ओठों ने कहा - तुम्हें बार-बार गाया है
लेकिन हर बार रहे तुम जैसे अनगाये ।'[२९]

देखने की ही अनुभूति के भाव का चित्रण 'चाँद को आज रात-भर देखा' गीत में भी हुआ है -

'जब से देखा है तुझे ओ मासूम
सारे जग को नयी नजर देखा
तुझको देखा कि घन अंधेरे में
जैसे कोई ज्योति का शिखर देखा ।'[३०]

प्रणय की एक दशा यह भी है कि प्रियजन जान-बुझकर पास नहीं आता है । आवाज अजनबी-सी होने पर भी लगता है मानो उससे युगों का नाता है । कवि ने भी उसी भाव को 'दूर ही दूर से बुलाता है' गीत में चित्रित किया है । यह कौन है, जो मेरे बंद तन्हाइयों के कमरों ने झांक-झांककर चला जाता है । किसी से मेरी ही बात करता है, किन्तु मेरे पहुंचते ही चुप हो जाता है और -

'गुजरा शायद अभी यहीं से है,
गंध से रास्ता नहाता है
उसके ओठों से छटकर जैसे
नाम मेरा ही थरथराता है ।'[३१]

इस गीत में कवि ने अज्ञात प्रियतमा का सुन्दर चित्र खींचा है । उसका रूप अदेखा है, लेकिन ऐसा है जैसे कोर्ल फूल महमहाता है -

'रूप उसका सदा अदेखा पर
जैसे कोई फूल महमहाता है
बंद तनहाइयों के कमरे में
जैसे कोई झांक-झांककर जाता है ।'[३२]

प्रेमी मन नहीं जानता है लेकिन फिर भी रग-रग में जैसे वही एक सुगन्ध भर गयी है । दूर ही दूर रहते उस प्रियतम के इन्तजार में कवि बैठा-बैठा ख्वाब संजोता है । रह-रहकर उसे यही लगता है कि कभी तो कोई दिशाएँ चीर कर मेरे लिये आयेगा -

'रह-रह लगता, चीर दिशाएँ कोई आयेगा, आयेगा

इस अगाध वीरान में भी कोई गायेगा, गायेगा
हारा-हारा प्रहर प्रतीक्षा का यों जीत-जीत जाता है ।'

'भरी-भरी गगरी छलक जाये रे' गीत में कवि ने नायिका के पूर्ण युवा अवस्था का चित्र खींचा है -

'मेरे पनघट का भी आम बौरा गया
घेर आने लगे है भंवर बेहया
कोई कैसे किसी को भी समझाये रे
आज प्यासा कोई मेरे घर आये रे ।'[३३]

'भींज गया' गीत में कवि ने प्रेमी मन की उत्कंठा के भाव का सुन्दर चित्र खींचा है -

'कौन बयार बही रे, बरबस तन-मन भींज गया
आज जागरण इतना मधुर कि रूखा सपना भी है
महक-महक उठता अन्तर - 'ज्यों कोई अपना भी है,
अपने और परायेपन का बंधन भींज गया ।'[३४]

अद्रश्य होने पर भी मानो प्रेयसी सामने ही है ।

'एक महकती हुई लहर साँसों से सटकर
हर क्षण निकल-निकल जाती है
एक गुनगुनाता स्वर हर क्षण
कानों पर बह-बह जाता है
एक अद्रश्य रूप सपनों-सा
आँखें तैर-तैर जाता है ।'[३५]

कवि शाम से ही यूकिलिप्टस की विरल पत्तियों की छाया में बैठकर अपने प्रिया की प्रतीक्षा कर रहा है । आसमान में चाँद उगकर छिप गया, पहर आये और चले गये, लेकिन वह नहीं आयी । उसके पश्चात् सबेरा हुआ, अदेखा कर वह चली गयी और वह अपनी बाँह में बाँह डाले रह गया -

'भोर फूटी सुनहली धनताल
हिलने लगे
तुम्हें देखा गीत पकड़े
काफिलों में जगे
अदेखे तुम मुझे चलती गयी
खड़ा-सा मैं डाल अपनी बांह अपनी बांह में ।'[३६]

'बौरा-बौरा बसन्त' में प्रणयी मन का दीवानापन चित्रित है । वह कहता है प्रिय ! आओ आज तुम्हारी उड़ती अलकों में दिशाएँ गूंथ दूँ । बसन्त आया है, सहमे अधरों पर अनन्त स्वर कस दूँ -

'आओ प्रिय !
आज गूंथ दूँ उडती अलकों में दिग्-दिगन्त
देखो आया बसन्त
कस दूँ ये स्वर अनन्त
देखो आया बसन्त ।'[३७]

'हमें पुकार रही है कोई' में कवि ने किसी अज्ञात नायिका का जिक्र किया है । कवि कह रहा है कि शून्य क्षितिज से कोई हमें पुकार रही है । भीगें तारों से आँख-मिचौनी खेल रही है । इसके परिचित श्रृंगार से मेरा सोया प्यार सिहर उठता है । नभ की पलकों से अपनी अलकों को आज कोई सँवार रही है । किरणों के झूले में बैठी हमें निहार रही है । अपने कोमल हाथ से दीप जला, आरती कोई उतार रही है -

'शून्य क्षितिज के अन्तराल से हमें पुकार रही है कोई,
खेल रही है आँख मिचौनी लुक-छिपकर भीगे तारों से
सोया प्यार सिहर उठता है इसके परिचित श्रृंगारों से
कलियों की अलसित बांहों पर माधव अलसाकर सोता है
नीरव राका झाँक रही है, पवन सिहर कर पग धोता है ।'[३८]

'भूल नहीं पाता' में कवि किसी स्नेही को किसी जीवन संघर्ष के बीच भी यदि करता रहता है वह कहता है - जग के इतने कोलाहल में भी मन तुमको नहीं भूल पाता । तूफान की लपटों में भी तुम फूलों-सी मुस्काती हो । आग पीते-पीते ये मेरे नयन ज्वाला बन गए है । फिर भी मैं उन पलकों की कोरों में पलते सावन को भूल नहीं पाता हूँ -

'तूफानों की लपटों में भी तुम फूलों-सी मुस्काती
बहता जाता मैं सागर में तुम कूलों-सी मुस्काती
पीते-पीते आग नयन ये आग बन गये ज्वाला में
फिर भी उन पलकों में पलता सावन भूल नहीं पाता
इतने कोलाहल में भी तुमको मन भूल नहीं पाता ।'[३९]

कवि एक अन्य गीत में कह रहा है कि मेघों से ये किसके नील नयन सजल हो बह रहे है । किसने एक स्वर्णिम पीड़ा में जीवन को बांध-सा दिया है -

'बह रहे सजल नयनों में ये मेघों से किसके नील नयन

सुरधुन की स्वर्णिम रेखा-सी पीड़ा में बांध दिया जीवन ।'[४०]

कवि प्रकृति के भिन्न-भिन्न प्रतीकों द्वारा बंधा हुआ है, इस संदर्भ में वह कहता है कि कुछ खोजते-खोजते भरा-भरा-सा यह मन सब कुछ खो देता है । सौन्दर्य सुधा की प्रथम घूंट हमेशा के लिए हाला बन गयी है और शान्त सरोवर की लहर विरह में ज्वाला-सी बन गयी । स्मृति की किरणों को जितना सुलझाता हूँ, वे उतनी अधिक उलझती जाती है, हँसता हूँ लेकिन हँसने में मूक रूदन छिपा रहता है -

'सौन्दर्य सुधा की घूंट प्रथम बन गयी चिरंतन हाला-सी
वह शांत सरोवर की लहरी बन गयी बिरह में ज्वाला-सी
पूनो के पहले यौवन में किसने अभिशाप दिया मुझको
सुलझाता हूँ स्मृति की किरणें वे बनती जाती है उलझन ।'[४१]

मिश्रजी की कविता में विरह की अनुभूति प्रवण चित्र मिलते है । विरहानुभूति को प्रभावी बनाने के लिए कवि ने छायावादी कवियों की भाँति प्रकृति का उद्दीपन रूप में प्रयोग किया है । मनोरम प्रकृति नायिका के वियोग को उदीप्त कर देती है । मनोहर वातावरण में उसे अपना प्रेमास्पद निरन्तर याद आता है, वह व्यक्ति मन से बोल उठता है -

'न जाने घन बुंदों से कौन घाव खुल जाता है सजनी
घटा की आँखें छल-छल देख, हृदय भर आता है सजनी
गगन में काले बादल हृदय भर आता है सजनी ।'

और इतना ही नहीं, जब तिमिर के घूंघट के उस पार मुस्काते हुए चांद को देखती हूँ, साँझ के दृग में काजल देखकर मेरा हृदय भर आता है -

'तिमिर के घूंघट के उस पार चांद मुसकाता है सजनी
सांझ के दृग में काजल देख हृदय भर आता है सजनी ।'[४२]

प्रिय की याद से उद्विग्न हो बादल से प्रार्थना करती है कि तू इस तरह मत बरस- तू इस तरह मत बरस । कहीं दो दिन में यौवन ही न डूब जाय -

'बादल घेर-घेर मत बरस
रह-रह कांपे हिया हवा में, खुले खेत में धान
आँखों में परदेशी कांपे, रोम-रोम में बान
याद का बांध उठा है टूट कि बिरहा के ये छन डूबे ।'[४३]

प्रिय के चले जाने के बाद घर कैसा लगता है, इसका भाव इस गीत में है -

'तुम बिन कुछ खोया-खोया-सा
कुछ सूना-सूना लगता है

रीते घर का हर रीतापन

कुछ दूना-दूना लगता है ।'[४४]

एक अन्य गीत में कवि का मानना है कि बिरहिन की आस अमर है -

'मेरी बुझी हुई धूपों के टीले

पथराये गेंदे के पहर रंगीले

पूछ रहे बांसुरी किसी ने टेरी ?

कोई भी तो वायु संदेशा देरी ।'[४५]

एक अन्य कविता में विरहिणी घने बादलों को देखकर कहती है कि है बादरा, मेरे प्रियतम परदेश में छाये है, कभी एक पत्र भी नहीं आया -

'मेरे परदेशी हरि छाये परदेश में

कभी-भी न पतिया पठाए घन बादरा ।'[४६]

एक कविता - 'रात की पपीहरी' में कवि ने पपीहरी के माध्यम से विरहिणी की व्यथा को व्यक्त किया है । रात के समय जब दशों दिशाएँ शांत होकर सोती है, आकाश मौन हो जाता है, पवन मंद-मंद चलता है । उस समय विरहिणी अपने प्रियतम की याद में सिहर-सिहर उठती है -

'विरहमयी पपीहरी खड़ी किसे जगा रही

दिगन्त शांत सो रहा, अनंत मौन हो रहा

पवन चुरा-चुरा मरन्द डालियाँ भिगो रहा

वियोग बीन तार को सजा सजा मुहु-मुह ?

कि स्मृति प्रमाद में पड़ी सिहर-सिहर के गा रही ।'[४७]

'सावन की सांझ' नामक गीत में बादलों को देखकर कवि कहता है कि यक्ष विरह के ये पागल दिन फिर किसके जीवन में भर आये ? शायद उसी विरह की आहों का धुआँ लिये ये मेघ गनन में भर आये है । पुरवैया का थका हिया सांसों की तरह कांपता है । अमराई से पपीहा हौले-हौले पिया-पिया बोलता है । आँखों से कहीं पथ पर झपकी ले-लेकर दिया जल रहा है । दिशारूपी बंधुआँ की अंगड़ाई से यादों के फूल झर रहे है । न जाने कितने ही सपने सूने नयनों में छल-छल कर भर आये -

'फिर यक्ष विरह के पागल दिन किसके जीवन में भर आए ?

जिसकी आँखों का धुआँ लिये ये मेघ गगन में घिर आए ।'

झर रहे याद के फूल कहीं दिग्बंधुओं की अंगड़ाई से

कितने बीते सपने छल-छल, सुनसान नयन में भर आये ।'[४८]

कवि एक अन्य विरह गीत में अपनी प्रेयसी को संबोधित करता हुआ कह रहा है कि मैं लहरों में अपनी पतवार संभाले चला जा रहा हूँ । तेरे अगम पथ पर चलकर भी शूल नहीं जाना । तट पर उठते तूफानों को कभी प्रतिकूल नहीं जाना । तेरे उपवन में कितने ही मधुमास सुरभि लेकर आयेंगे किन्तु मैं सदा के लिए पतझार संभाले जा रहा हूँ –

'चला जा रहा हूँ लहरों से फिर पतवार संभाले
मैंने तेरे आगम पथ पर चलकर शूल न जाना
तट की उठती झंझाओं को भी प्रतिकूल न जाना
किन्तु अर्चना से प्रतिमा के पलक नहीं खुल पाये
लौट रहा हूँ फिर भी कहता पंथी भूल न जाना ।'[४९]

'प्रवाह' नामक गीत में कवि ने जिन्दगी के अविरल प्रवाह का चित्र खींचा है, प्रवाह एक क्षण को भी रूकता नहीं है । हर क्षण एक महकती हुई लहर साँसों में सटकर निकल जाती है । एक गुनगुनाता हुआ स्वर कानों पर बह–बह जाता है, एक अद्रश्य रूप सपनों सा आँखों में तैर–तैर जाता है । मेरे द्वार पर से ही एक बसंत मुझे मानो आमंत्रण देता है, लेकिन मैं सभी पा जाने के चक्कर में कुछ भी नहीं पा सकता और प्रवाह अपनी राह फिर अविरल हो बहने लगता है और मैं भाग्यहीन –

'एक दिन इसी तरह मैं चूक जाऊँगा
कहता हुआ
आह ! पा सका नहीं, जिसे मैं पा सकता था ।'[५०]

विरह गीत के साथ–साथ 'मिलन सावन' नामक गीत में कवि ने संयोग श्रृंगार का बड़े ही अच्छे ढंग से वर्णन किया है । कवि कहता है कि यौवन के उजड़े हुए मरूस्थल में नीलम धन रूपी पाँखों को खोलकर मधु की बूंदों की रिमझिम हो रही है । पलकों से सावन बरस रहा है । प्रिय, आओ आज हम प्रलय का पथ नाप लें । आज तूफान भी हमें रोक नहीं सकता । तुम मेरे साथ हो, तुम मेरी जीवन संगिनी हो तो मुझे रास्ते के सुख–दुःखों का, फूलों और काँटों का कोई घ्यान नहीं है –

'हम आज प्रलय पथ नापेंगे कुछ कर सकता तूफान नहीं
तुम ही, मुझको जीवन–पथ पर फूलों, शुलों का घ्यान नहीं ।'[५१]

सामाजिक चेतना

मिश्रजी की कविताओं में समाज के यथार्थ का चित्रण हुआ है । इसलिए यहाँ समाजवादी यथार्थ का विवेचन करना अप्रांसगिक न होगा । साहित्य में सामाजिक यथार्थ का रेखांकन मार्क्सवादी दर्शन से प्रेरित है – 'मार्क्सवादी कलात्मक द्रष्टिकोण साहित्य

को समाजवादी व्यवस्था की स्थापना में एक अत्यन्त उपयोगी और महत्वपूर्ण साधन के रूप में अपनाये जाने पर जोर देता है ।'[५२] मार्क्सवादी चिन्तनधाराने अनेक लेखकों को प्रभावित किया है - मार्क्सवादी एक जीवन दर्शन के रूप में उभरा । इसका आधार जीवन की कर्मठता और संघर्ष चेतना से है । जीवन में गतिशील रहने के लिए कर्मशीलता अनिवार्य है - 'समानवादी यथार्थवाद घोषित करता है कि जीवन कर्म है, रचनात्मक है, जिसका उदेश्य है मनुष्य की सर्वोत्तम वैयक्तिक योग्यताओं का प्रकृति की शक्तियों पर विजय के लिए पृथ्वी पर जीवित रहने के महान आनंद के लिए निर्बांध विकास । इस पृथ्वी को अपनी आवश्यकताओं के अनवरत वृध्धि के अनुरूप सम्पन्न कर वह एक ही परिवार के रूप में संयुक्त मानव जाति का भव्य वास स्थान बनाना चाहता है ।'[५३] समाजवादी यथार्थवाद की मूल आकृति समाज के विभिन्न वर्गो की यथास्थिति से सम्बध्ध होती है । यथार्थवादी आन्दोलन चाहे पुराना रहा हो किन्तु उसका संबंध समाजवादी यथार्थ से 20 वीं. शताब्दी में ही जुड़ता है ।

भारत की आजादी के बाद रचनाकारों का कार्य अधिक कठिन और जटिल हो गया । परिवर्तन की प्रक्रिया विषमताओं की ओर बढ़ने लगी । समृध्ध वर्ग और अभावग्रस्त के बीच खाई बढ़ती गयी । इसलिए यथार्थ के प्रति लोगों का द्रष्टिकोण बदला । इस सम्बन्ध में शिवदानसिंह चौहान का मत उल्लेख्य है -

'जो भी हो, भारत की आजादी ने जिस व्यापक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और सांस्कृतिक विकास की संभावनाओं के नये क्षितिज खोले थे, अपनी विशिष्ट सामाजिक परिस्थितियों और अन्तर्राष्ट्रीय प्रभावों के कारण इस बीच हमारे साहित्य का विकास, उनसे हटकर कुछ अधिक संश्लिष्ट रूपों में हुआ है ।'[५४]

समाजवादी यथार्थ के उपर्युक्त विवेचन के आलोक में रामदरश मिश्र के सामाजिक यथार्थ से सम्बन्धित काव्य का मूल्यांकन करना उचित होगा क्योंकि यहाँ यह भी स्पष्ट कर सकने में सुविधा हो सकेगी कि समाजवादी यथार्थ मिश्रजी के काव्य में किस प्रकार काव्यगत परिणति पा सका है और उसका मूल स्वरूप किस प्रकार का है । 'सामाजिक यथार्थ पर आधारित साहित्य शोषक वर्ग के अत्याचार और सामाजिक कुरूपताओं को अभिव्यक्त करता है । शोषित वर्ग के मन में उनके प्रति घृणा उत्पन्न कर सामूहिक संघर्ष की प्रेरणा देता है । प्रकारान्तर से जनसामान्य को निराशा से उतार कर उनके मन में अड़िग आस्था का संचार करता है । स्वयं मिश्रजी का मत है कि 'यह निर्विवाद सत्य है कि साहित्य मानव समाज की यथार्थ समस्याओं, आकांक्षाओं, विचारों, भावों और कार्यों का जिक्र है ।'[५५]

डॉ. रामदरश मिश्रजीने अपने काव्य-संग्रहों में परिवेश को जीकर प्राप्त किये गये अनुभव सत्यों को लिपिबध्ध किया है । 'पक गई है धूप' में स्पष्ट किया है - 'मेरे

अनुभवों की यात्रा अत्यन्त अन्तरंग 'स्व' से लेकर बृहत्तर सामाजिक यथार्थ तक है, मन की एकान्त सौन्दर्य-प्रतीतियों से लेकर सामाजिक विघटन, मूल्य-मूढ़ता और मानव यातना की उद्विग्नताओं तक है, धूप की तरह एक फूल से लेकर आकाश के आन्दोलित विस्तार तक है ।' मिश्रजी को पीड़ित जनता के कष्टों, भ्रष्टाचार, शोषित और शोषकों के संघर्ष ने सर्वाधिक प्रभावित किया है । 'मनाएँ क्या दिवाली हम' कविता में कवि ने मानवीय दर्द की बेबस चीख-पुकारों का मर्मस्पर्शी चित्र खींचा है -

'ऐसे देश में कितने अभागे कुल
पड़े से सो रहे हैं भूख की ले
आग आँखों में, दिवाली के
महोत्सव की घटा में ।
ये कृषक, मजदूर, भिखमंगे
जमाने के कुशल शिल्पी
कलेजे से जगत की राह में
ये तोड़नेवाले शिल्पा के खंड़
क्या जाने,
दिवाली क्या तमाशा क्या ?'[५६]

उपर्युक्त कविता का भाव यह है कि दिवाली क्या है, तमाशा क्या है ? क्या जाने जो लोग पेड़ की तरह भूख को लेकर सो रहे है, उनकी आँखों में दिवाली महोत्सव की छटा के समय भी आग है । एक अन्य उदाहरण हम और ले सकते है -

'दिवाली रोज आती है अटारी पर
नहीं आती कभी इक वर्ष में
इक बार भी इनके मजारों पर
कभी उजड़ी हुई इस आँख के
सूने कगारों पर
मनाओ तुम दिवाली नाच कर गाओ
खुशी के गीत, तुमको लूटते शिखला दिया है
दीप दोनों का जलाना ।'[५७]

दिवाली रोज अटारियों पर आती है । जो लोग महलों में रहते है, उनके यहाँ तो रोज दिवाली ही रहती है, लेकिन कभी भी गरीबों के मजारों पर दिवाली नहीं आती है ।

'शव साधना' नामक कविता में कवि ने सामाजिक स्थितियों का सुन्दर चित्र खींचा है । कवि कहता है कि 'शव साधना' में तुम प्राणों का फूल चढाते हो । पत्थर की

आराधना में देवता की बलि चढाते हो । आबरू की दमम चांदी के हाथों से लूट लेते हो । प्यार को नंगी और भूखी वासना में कैद कर लेते हो । तुम्हें प्रातः के सुनहरे स्वप्नों के सिन्धु में जीवन नहीं मिलता । तुम तो सांझ की टिप-टिप किरणों की छोटी-सी तलैया में जीवन का जाल डाले जा रहे हो, लेकिन नये सृजन की राह जो उठ रही है, क्या उसे मिटा दोंगे ? मनुज के देह पर यह मरघट की धूल तो नवसृजन के मंगल गान का मूल है और जयमाला तुम डालकर जा रहे हो, वह तो तेरी ही चिता की आग की लपट है -

'धूल मरघट की मनुज शिव देह पर
नव सृजन का मूल मंगल गान है
है लपट तेरी चिता की आग की
जो कि तुम जयमाला डाले जा रहे ।'[५८]

भारत का जनमानस स्वाधीनता-प्राप्ति से अनेक सुख-सुविधाओं की आशा की ज्योति जमाये बैठा था । उसे लगता था कि बहुत जल्दी ही हमारे दुःख-दर्द हमसे विदा लेंगे । परन्तु आजादी के पच्चीस साल बाद जब युवक गाँव से शहर आया तो स्थिति का दूसरा ही चित्र दिखायी पड़ा । उसका मोह भंग-सा हुआ -

'राजधानी में आकर पाया कि
शहर ऊँचा होता जा रहा है
सडकें चौड़ी होती जा रही है
कारखानों के गंदे शोर लोहों से टकराकर
सोने का संगीत उगल रहे हैं
सरकारी महलों में दिन-रात
चाँद और सूरज जल रहे है
बेतहाशा उगते झंड़ों की रंग-बिरंगी छाँहें
खाइयों और खंदकों को ढंक रही है
और उन पर टंगा हुआ समतल प्रकाश का एक सपना
धीरे-धीरे पक रहा है ।'[५९]

उस समय की तानाशाही और उसके बीच पिसते मध्यवर्ग के लोगों को उन्होंने केन्द्र में रखा है, उसी में सब पिस रहे है, शहर और गाँव के बीच की दूरी बढ़ती गयी है । जहाँ राजधानी रंगीन हो गयी है, लेकिन गाँवों में आज भी सबके सिरों पर जो गट्ठर पहले थे, वे कुछ और भारी हो गये है । शहर सम्पन्नता की ओर बढा, गाँव विपन्नता की लपेट में जकड़ता गया । आजादी के पश्चात् तो स्थिति सुधरने की आशा थी, वह बिगड़ी ही है ।

आज हमारा सामाजिक ढाँचा चरमराकर टूट रहा है । कानून और व्यवस्था कमजोर पड़ गयी है । लोगों का जीवन असुरक्षित हो गया है । लोगों के लिए रातें खौफनाक बन गयी है । हत्यारे आकर लोगों की निर्मम हत्या करके चले जाते है, किन्तु किसी में हिम्मत नहीं कि उनके खिलाफ आवाज उठायें । असामाजिक तत्वों का बोलबाला है । उनके खिलाफ हाथ उठाकर कोई भी अपना सर्वनाश नहीं करना चाहता । समाज के इस विकृत स्वरूप का चित्रण मिश्रजी ने अपनी कविता 'हँसी से हम और भी डर जाते है' में बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ किया है । इस कविता के पढते ही हमारे सामने एक ऐसा द्रश्य आ जाता है, जिसमें लोगों की आँखों का भय, असुरक्षा, चीख-पुकार प्रशासन की लापरवाही स्पष्ट रूप से दिखायी देती है । हमारे रक्षक जीवन, मृत्यु, सुख-दुःख से परे रहकर सब कुछ देखते है और फिर हँस पड़ते है और जब वे हँसते है तो हम और भी डर जाते है -

'और तुम हमारे रक्षक आका
सुख-दुःख जीवन मृत्यु
सबसे परे होकर
यह सब कुछ देखते हो
और मन ही मन कुछ हिसाब लगाते हो
लपटों और चीखों के साथ
अपने रिश्तों का
और हँस पड़ते हो एक अबुझ हँसी
इस हँसी से हम और भी डर जाते है ।'[६०]

जहाँ व्यवस्था और समाज दोनों में अराजकता जड़ जमाये बैठी है, वही हमारे नेता अभिनेता बन गये है । स्वयं लोगों के घरों में आग लगाते है और फिर आग बुझाने का नाटक करते है । गरीब निरीह जनता का घर जल जाता है, वे स्वयं झुलस जाते है । इस बीच एक दर्शक वर्ग भी है, जो अभिनेता के दोहरे रूप को देखता है और उसकी कला पर प्रसन्न होकर तालियाँ बजाता है । बेचारे जले, अनजले लोग अपने भविष्य के लिए छटपटाते रहते है -

'प्रिय दर्शकों
दोनों भूमिकाओं में एक ही कलाकार था'
'लेकिन मेरी नजर उन झोंपड़ों की ओर थी
जिनमें से अभी भी आग की लपटें उठ रही थीं
और जले अनजले लोग
भविष्य के लिए छटपटा रहे थे ।'[६१]

समकालीन विसंगतियों से भरे राष्ट्रीय जीवन की विड़म्बनाओं और सामाजिक जिम्मेदारी के प्रति फैलती उदासीनता को कवि के 'अपने से अपने तक' कविता में उद्‌घाटित किया है –

'लोग चार घरों में
रेडियो की छाया में बहसें करते है
और रोज की तरह
चाय पीकर निकल जाते है
एक सस्ता फिल्मी गीत गुनगुनाते हुए ।'[६२]

निम्नवर्गीय, मध्यवर्गीय परिवार आर्थिक विवशता का जीवन जीते है, वे अपने बच्चों को जीवनावश्यक वस्तुएँ भी नहीं प्रदान कर पाते है । इस आर्थिक कुंठ का सफल चित्रण मिश्रजी की इस कविता में देखा जा सकता है –

'मेरे बेटे
मैं नहीं जानता
कि तुम्हारी आँखों के आकाश में क्या-क्या है
हाँ इतना जानता हूँ कि
मेरी मुट्‌ठी में कुछ नहीं है
पता नहीं, तुम्हें कहाँ तक पहुँचना है
मैं तो तुम्हें आँगन से
सडक तक पहुंचा सकता हूँ,
आओ मेरे बेटे,
मेरी अंगुली पकड़ लो
इसके सिवा मेरे पास है ही क्या ?'[६३]

देश की भूखी और नंगी जनता को उम्मीद है कि उसकी सरकार उसके लिए कुछ करेगी । वह बार-बार राजधानी की ओर मुंह उठाकर देखती है कि क्या उसके भले के लिए भी कुछ योजनाएँ तैयार हो रही है । परन्तु उसे कुछ सुनाई नहीं देता । गरीब देखता है कि सरकार की सारी योजनाओं में वह सम्मिलित नहीं है –

'चीथड़े लपेटे, भूखे-नंगे लोग
हथेली की ओट देकर
कभी दिल्ली की ओर देखते है
कभी अपने शहर की ओर
और आपस में पूछते है

भाइयो,
इनकी आपसी बातचीत में
हमारा नाम क्यों सुनाई दे रहा है
बार-बार ।'[६४]

आज का गरीब पेट की आग से त्रस्त है । उसे किसी प्रकार की सुविधा उपलब्ध नहीं है । सरकार के झूठे वायदे की हवाओं के बीच आज की जनता झुलस रही है । यह भाव हम पंचभूत कविता में देख सकते है -

'जी हुजूर
आपके राज्य में
हमें जीने के लिए सब कुछ मिल गया है
पेट की आग है
मिलों के पिछवाड़े से आता हुआ पानी है
आपके चौड़े मुख की धौंकनी से फूटती
वायदों की गरम-गरम हवा है
और आकाश ।'[६५]

सारी बुराइयों के बीच एक अच्छाई है । अच्छाई इन बुराइयों से घिरी है । अगर अच्छाई तक पहुंचना है तो बुराइयों को तोड़ना होगा । अनेक दुर्जन व्यक्तियों के बीच एक सज्जन व्यक्ति घिरा है । दुर्जनों की ताकत अधिक है, इसलिए सज्जन सहमा हुआ है । इस सामाजिक विषमता को 'पता' नामक कविता में हम देख सकते है -

'चारों ओर काँटों का जंगल है
और भीतर कहीं
एक डरी हुई लता है
जाओ चले जाओ
यही उसके घर का पता है ।'[६६]

महानगरों में रहनेवाले कितने गरीब मजदूरों को जीवनभर खूले आसमान के नीचे अपना जीवन गुजार देना पड़ता है । ऐसे लोगों का चित्रण करते हुए कवि ने कहा है कि इन लोगों की सारी क्रियाएँ भीड़ में ही होती है । इनके मन में एक सुरक्षित मकान के अन्दर रहने की कल्पना अधूरी ही रह जाती है -

'मुझे एक मकान चाहिए
जिसकी छोटी-सी क्यारी में
एक नन्हा-सा बिरवा रोप सकूं

जो केवल अपना हो
जिसकी छत के नीचे लेटुं
तो सदियों से जगी मेरी आँखों में भी
एक निजी सपना हो
मैं एक छोटा-सा मकान खोज रहा हूँ
ऊँची इमारतों वाले इस शहर में ।'[६७]

वास्तव में हमारे देश का स्वरूप गाँवों में है । परन्तु लोग इसकी कल्पना शहरों से करते है । शहरों के अनुरूप देश की व्याख्या की जा रही है । वास्तव में यह शहर लोगों को भ्रम में डाले हुए है । इसलिए शहरों की चकाचौंध से लोग आकर्षित हो जाते है । वास्तव में शहरी जीवन उलझा हुआ है । लोगों का जीवन एक-दूसरे से टकराया हुआ है । कोई किसी को देखता नहीं है । कवि ने इस सामाजिक विषमता को 'सड़क' कविता में उद्घाटित किया है -

'अपने गाढ़े का कुरता देखा
और लगातार भागते एक अलग किस्म के लोगों को
देखने लगा
कहाँ है वे लोग
जिन्हें अब तक देखता आया था
यदि यह देश है, तो वह क्या था ?'[६८]

आज देश की जनता का जीवन असुरक्षित हो गया है । चारों तरफ भय का सन्नाटा व्याप्त है । कब भेड़िया आकर किसे उठा ले जाये । अब तो गरीब और असहाय जनता के सामने एक ही विकल्प रह गया है कि वह स्वयं एकजुट होकर इस क्रूर भेड़िये का सामना करने के लिए एकजुट होकर शक्ति इकट्ठी करे -

'आओ, अब हम सब एक-दूसरे को आवाज दें
और सारी आवाजों को आपस में बुनकर
एक बड़ी-सी आवाज बना लें
हाँ, वे फिर आयेंगे थोडी देर में
हमें आवाज देते हुए ।'[६९]

'पत्थर' कविता में कवि ने पत्थर के माध्यम से गरीबों का चित्रण किया है -

'आखिर क्या हम कुटने के लिए बने है ?
कोई तो हमें प्यार से निहारता
और हमें फेंक कर

तहखानों के बड़े-बड़े तालों पर मारता
कोई तो हमें तनी हुई संगीनों से टकराता
और हमारी ताकत को आजमाता
कोई तो हमारे सिरों से बीच की दीवारें तोड़ता
और हमें हमारे अर्थ से जोड़ता
कोई तो ..... आखिर हमें कब तक इन्तजार करना पड़ेगा ।'[७०]

आज गाँवों में उठती जन-चेतना से भी कवि परिचित है । ग्राम चेतना उठ रही है । अभावों की आग उन्हें जगा रही है और यही कारण है कि गाँव के लोग अपने नेताओं से मांग ही नहीं करते, खुली चेतावनी भी देते है, जो आज का बदलता भाव-बोध है । शोषण के गढ़ को भेदने का संकल्प भी दिखायी पड़ता है -

'हम मिलकर
खुद इनसे अपनी एक नयी पहचान बनायेंगे
नहीं तुम वापस नहीं करोगे
वापस करने की आदत तुम भूल चुके हो
हमें खुद तुम्हारे किले को तोड़ना होगा ।'[७१]

'अपने में अपने से अलग' कविता व्यक्ति और समाज के आपसी रिश्तों में रिक्तता और टूटने का एहसास कराती है तथा समाज की उन विसंगतियों की ओर भी संकेत करती है, जिनके कारण व्यक्ति के चारों ओर अंधेरा बढ़ रहा है । इस अंधेरे में खोये कवि की चिन्ता सच्ची है ।

मिश्रजी मजदूर व सर्वहारा वर्ग के पक्षधर है । गरीब मजदूरों व शोषित वर्ग के प्रति उनके मन में पूर्ण सहानुभूति है । मजदूर वर्ग अपने मालिक के लिए कठिन से कठिन श्रम करने को तैयार है, परन्तु मालिक उन्हें झूठे आश्वासन देकर फुसला देता है । ऐसी स्थिति में कवि की सहानुभूति मजदूर वर्ग की ओर हो जाती है -

'हम हाथ में लेखनी लिए
कभी तुम्हें देखते है, कभी उन्हें
और तुम धीरे-धीरे
हमारी लेखनी में समाते चले आ रहे हो ।'[७२]

मिश्रजी ने भारतीय नारी के सुख-दुःख और आकांक्षा को बहुत ही निकट से जाना और अनुभव किया है । नारी समाज का एक पहिया होते हुए भी पीछे छूट गयी है । वह स्वयं को अंधेरे में रखकर पुरूष के लिए रोशनी की मूर्ति गढ़ती रहती है । स्त्री जिन्दगी-भर गृहस्थी के जुए में जुती रहती है । वह अपने पति और बच्चों की खुशी

के लिए अपना सारा जीवन समर्पित कर देती है । उनके जीवन में चूल्हा-चक्की के सिवाय और कुछ नहीं है । चाहे कड़ाके की सर्दी हो या बरसात, औरत सुबह चार बजे उठ जाती है, सभी लोगों के लिए चाय बनाती है, उन्हें जगाती है । परिवार के सभी लोगों को चाय-नाश्ता देती है । परिवार के हर सदस्य की इच्छा पूरी करती है । वह हर आदमी की फरमाइशों के साथ घर-भर में भागती-फिरती है । रात का बिखरा हुआ घर सुबह व्यवस्थित हो जाता है । घर-भर के कपड़े धोती है, बर्तन साफ करती है, फटे-पुराने कपड़े सिलती है । इस प्रकार वह मेहनत के द्वारा घर के टूटे हुए सारे सूत्रों को जोड़ती है । औरत के आराम का कोई समय नहीं होता । औरत के त्याग और बलिदान के बल पर ही पुरूष यश प्राप्त करते है । वे बड़े-बड़े संवेदना और मूल्यों से भरे साहित्य की रचना करते है । औरत के परिश्रम के कारण ही उसके बच्चे खिलते और महकते रहते है । उनके चरण नये-नये क्षितिजों की ओर बढते रहते है । एक दिन पति व बच्चों के यश की लाली चारों तरफ फैल जाती है । उनकी सफलता की जय-जयकार होती है । ऐसे समय में कोई नहीं देखता -

'कि एक औरत थी
जो चूल्हे-चक्की
बरतन भाँडे की लय पर
जीवन के मंत्र पढ़ती रही
जो खुद को अंधेरे में रखकर
जिंदगी-भर
रोशनी की मूर्ति गड़ती रही ।'[७४]

यहाँ स्त्री त्याग व करूणा की मूर्ति है, वहीं पुरूष क्या, सम्पूर्ण समाज स्वार्थी और क्रूर है । लड़की के माँ-बाप उसे अनेक मर्यादाओं की शिक्षा देकर ससुराल के लिए विदा करते है । किन्तु ससुराल में आकर लड़की लोभ व नफरत के चक्रव्युह में फँस जाती है । लोग उसे अनेक प्रकार की शारीरिक व मानसिक पीड़ा पहुंचाते है । ससुराल में लड़की का कोई नहीं होता, जिसे वह सहायता के लिए पुकार सके । अधिक दहेज के लिए लड़कियों को इस तरह प्रताड़ित किया जाता है कि वे विवश होकर आग में जल जाती है अथवा रस्सी से गला कसकर आत्महत्या कर लेती है । लड़कियों की इस करूण कथा का चित्रण मिश्रजी ने अपनी कविता 'लड़की' में बड़ी ही सफलतापूर्वक किया है -

'उसके आगे
पैसों की प्यास से जलती
भेड़ियों की आँखें गुर्राती रहेंगी

सोते-सोते
उसे आग दिखायी पडेगी
या छत पर लटकती हुई रस्सी
और वह चीख भी नहीं पायेगी ।'[७५]

मिश्रजी ने समय के साथ यह अनुभव किया है कि लड़कियों के अन्दर इस बुराई से लड़ने के लिए ताकत पैदा करना बड़ा जरूरी है । माँ-बाप का यह कर्तव्य है कि वे लड़कियों को इस प्रकार का संस्कार दे, जिससे वे अन्याय और अत्याचार को सहने के बदले उससे लड़ सकें ।

'काश ! ये माँ-बाप
लड़की को थोड़ा-सा सही प्यार दे पाते
उसे ढाल बनने के साथ
हथियार बनने का भी संस्कार दे पाते ।'[७६]

यह कितनी विड़म्बना की बात है कि एक तरफ स्त्री का शोषण होता है तो दूसरी तरफ वहीं स्त्री दूसरों का शोषण करती है । मर्द के इशारों पर वह अपने से अपने को मार रही है । स्त्री का यह माँ और सास का दोहरा व्यक्तित्व कितना अजीब लगता है । एक तरफ तो वह जलती हुई लड़की से अपनी बहू को जलाने के लिए सदा तैयार रहती है तो वही स्त्री दूसरी तरफ अपनी बेटी को अधिकाधिक सुखी देखना चाहती है । अपनी बहू से दहेज की पेटी छीनकर बेटी की तरफ सरका देती है -

'एक दिन रूलाती हो
एक दिन रोती हो
एक दिन छीनती हो
एक दिन खोती हो
औरत
तुम कितनी अजीब हो ।'[७७]

अन्त में कवि ने नारी को दयनीयता से मुक्ति के लिए संघर्ष की प्रेरणा दी है -

'औरत
तुम कितनी अजीब हो,
तुम कब तक जीत के नाम पर हारती रहोगी
अपने को पहचानो
तुम्हीं बहू हो तुम्हीं बेटी हो
मर्द के इशारों पर

कब तक अपने से अपने को मारती रहोगी ।'[७८]

कवि को समाज में व्याप्त साम्प्रदायिक कटुता खलती है । वह सोचकर दुःखी है कि भाषा, धर्म, जाति व प्रान्त भेद को लेकर मानव-जीव कडुआहट से भर गया है । लोग एक-दूसरे को मारने पर तुले है । कवि महसूस करता है कि एक ही माँ-बाप के बेटे आपस में टकरा रहे है । यह बस्ती ही हमारी माँ है । हम सबकी माँ है । इसी के अन्न-जल से पलकर हम बड़े होते है । धरती माँ ही हमारी रगों में रक्त का संचार कर रही है । इस बात पर यदि घ्यान दिया जाय तो लगे कि -

'तुम न हिन्दू हो, न मुसलमान हो
न सिख हो, न ईसाई हो
तुम सब एक ही दर्द जीते हुए
एक ही सपना देखते हुए
सगे भाई हो ।'[७९]

कवि को स्वार्थ साधन के रूप में उपर्युक्त धर्म अमान्य है । साम्प्रदायिकता फैलाने वाले स्वार्थी लोगों पर उन्होंने 'धर्म' कविता में अपना आक्रोश व्यक्त किया है । उनकी द्रष्टि में सभी मानव का एक धर्म है ।

धर्म, आर्थिक शोषण से व्यक्ति का घ्यान बंटाता है और राजनीति उसे प्रश्रय देती है । तहखानों पर गद्दी बिछाये धर्म-ग्रन्थ लिये ये रामनामी दुपट्टा ओढ़ने वाले कितने घिनौने है । एक तो यह है कि जिन शाश्वत मूल्यों की तान चर्चा वे कर रहे है, वे उसके अधिकारी नहीं, दूसरे भेड़ की खाल में छिपे इन भेड़ियों का अभीप्सित उद्देश्य ज्ञान चर्या न होकर अनपढ़ जनता को धर्म भुलावा देना है । तीसरे ये आर्थिक रोगी है, उनके पेट में अर्थ की कब्ज है और कब्ज के बावजूद हवश इतनी है कि गद्दी पर बैठे-बैठे ही सारे वातावरण को दुर्गन्धित करते है । इन मोटे सेठों के नंगेपन को ढंकते-ढंकते एक बड़ा-सा झंड़ा भी नंगा हो जाता है । लगता है सारे वातावरण में कोई विराट षड्यंत्र की नियोजना है, जिसमें धर्म और राजनीति की मिली-झुली साजिश है और सब अपने आर्थिक जीवन में उसके निरीह शिकार है -

'तहखानों के ऊपर गद्दियाँ है
गद्दियों पर धर्म-ग्रंथ
धर्म-ग्रंथों पर बैठे है आत्मा-छाप आदमी
जो रह-रहकर
चिरन्तन सत्यों का वायु विस्फोट
चिड़ियाँ भड़-भड़ाकर उड़ जाती है
और एक बड़ा-सा झंड़ा

इन सबको ढंकने की कोशिश में
स्वयं नंगा हो जाता है ।'[८०]

राजनीतिज्ञ हर तरफ से अपना फायदा उठाना चाहता है । विज्ञान ने अनेक प्रकार के ध्वंसक हथियार बनाये है । धार्मिक नेता सम्प्रदाय का इन्द्रजाल बुनकर भोली-भाली जनता को फांस रहे है । राजनेता कभी युद्ध का भय दिखाकर अपना उल्लू सीधा करते है तो कभी धर्म के नाम पर । मिश्रजी की कविता 'नयी शताब्दी' में राजनीति की हँसी का बड़ा ही सुन्दर चित्रण हुआ है -

'विज्ञान परमाणु बम सजा रहा है
और धर्म सम्प्रदाय का इन्द्रजाल
राजनीति मुस्कराकर
कभी उसे देखती है, कभी उसे
और सहमा हुआ आदमी
राजनीति की हँसी देख रहा है
हाँ, नयी शताब्दी के आने में अब देर नहीं है ।'[८१]

मिश्र जी के काव्य में राष्ट्रीय-चेतना का स्वरूप

राष्ट्र की पहचान और उसके हित से सम्बन्धित सभी तथ्य राष्ट्रीय चेतना के अन्तर्गत आते है । स्वस्थ परम्पराओं की जीवन्तता से ही किसी राष्ट्र की संस्कृति एवं पहचान सुरक्षित रहती है, तो रूढ़ियों का खंड़न राष्ट्र-हित के लिए आवश्यक है । जन्मभूमि और मातृभाषा तथा राष्ट्रभाषा-प्रेम, जनता के दर्द, राजनीतिक गतिविधियाँ, नेताओं के कारनामें तथा स्थान विशेष प्रकृति एवं संस्कृति आदि राष्ट्रीय चेतना के मूल में है ।

हिन्दी में राष्ट्रीय काव्य का सृजन देश की स्वतंत्रता-प्राप्ति की भावना से प्रेरित रहा है । स्वाधीनता-प्राप्ति में हिन्दी कवियों की राष्ट्रीय कविताओं का योगदान महत्वपूर्ण है । द्विवेदी-युग में राष्ट्रीय कविताओं का प्रणयन अधिकता के साथ हुआ । इस क्षेत्र में मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, सियारामशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' तथा अन्य कवियों के योगदान विशिष्ट है । छायावाद-युगीन कवियों में राष्ट्रीय काव्य की द्रष्टि से जयशंकर प्रसाद के नाटकों के गीत अपना अलग महत्वपूर्ण स्थान रखते है । छायावादी इन कवियों ने अतीत का गौरव-गान करके जन-जीवन में राष्ट्रीय चेतना जगाने का कार्य सम्पन्न किया । कुछ कवियों ने ऐतिहासिक प्रसंगों को भी राष्ट्रीय चेतना जगाने की द्रष्टि से काव्य का विषय चुना । कवियों का यह उद्देश्य था कि देशवासियों में आत्म गौरव एवं स्वाभिमान का भाव जागे ताकि वे पराधीनता के बन्धन से मुक्ति के लिए सचेष्ट हो सकें । आजादी के पूर्व सामान्यतया सम-सामयिक

बोध का आधार पराधीनता की यातनाओं से निर्मित हुआ ।

गांधीजी पर काव्य-सृजन करने वाले अनेक कवियों ने गांधीजी का गौरवगान किया है । गांधीजी के सत्याग्रह आन्दोलन ने जनता में शहादत की भावना उत्पन्न की - **'राष्ट्र की बलिवेदी को अपने मस्तक से सजा देने की दीक्षा उनके सत्याग्रह ने दी । हिन्दी के कवियों ने इसका मंगलाचरण और इसकी प्रशस्तियाँ अपनी वीणा पर छेड़ी । सत्याग्रह के मार्ग पर गाने वाले सत्याग्रह को कारागार कृष्ण मंदिर हो गये और बंधन की कड़ियाँ और बेड़ियाँ छंदों में झनझनाने लगीं ।'**[८२]

नागार्जुन ने भी गांधीजी के प्रति आस्था व्यक्त करते हुए उनके मतानुयायियों के पाखंडीपन पर व्यंग्य किया है । गांधीजी के स्वप्नों को ध्वस्त होता देख कवि कहता है -

'दलित के सपने-सपने है मैं देख रहा,
टाटा-बिड़ला ही अपने है, मैं देख रहा ।'[८३]

सुमित्रानन्दन पन्तने गांधीजी के महत्व को काव्यमय पंक्तियों में रूपायित किया है । सियाराम शरण गुप्त ने 'बापू' काव्य की रचना की । नरेन्द्र शर्माने गांधीजी पर आधारित 'आकाश पुरूष' नामक कविता का सृजन किया । इसमें उन्होंने यह बताया है कि समाज की असंगतियों एवं विकृतियों के अंत के लिए धरती पर शेष मानवों का अवतरण युग-जीवन की प्रवाह मानता के लिए आवश्यक है ।'[८४]

छायावाद के युग के बाद प्रगतिवाद का जो आंदोलन चला, उसमें एक नये साहित्यिक युग को जन्म दिया । इस आन्दोलन की पृष्ठभूमि में समाजवादी मार्क्सवादी, विचारधारा की प्रेरणा थी । इस विषय में डॉ. शिवकुमार मिश्र का मत है - **'यहाँ केवल इतना ही कहना आवश्यक है कि गांधीवाद और समाजवाद या मार्क्सवाद को लेकर जो उलझनें राजनीतिक नेताओं के समक्ष उपस्थित हुई, देश की सामान्य जनता और साहित्यिक बुद्धिजीवियों के बीच वे उतना प्रसार न पा सकीं और स्पष्ट रूप से साहित्य में इसी समय समाजवादी, मार्क्सवादी विचार उदित हुआ, जिसने राष्ट्रीयता के अब तक के चले आते हुए स्वरूप को एक नया आवरण और रूपरेखा प्रदान की ।'**[८५]

स्वतंत्रता के बाद राष्ट्रीय चेतना से सम्बद्ध कविताओं का मूल स्वर मोहभंग और अभावग्रस्त समाज के प्रति जिम्मेदार व्यक्तियों के प्रति आक्रोश है । रचनाकारों ने यह अनुभव किया कि देश के कर्णधारों के मन में समाज-निर्माण का संकल्प भाव अत्यन्त क्षीण है और यदि वह कहीं दीखता भी है तो वहाँ संकल्प और सिद्धि के बीच कर्म का सेतु अनुपस्थित मिलता है । नेताओं में किसी बड़े राष्ट्रीय ध्येय या लक्ष्य के प्रति समर्पित होने की चेतना का अभाव सर्वत्र दिखाई पड़ता है । स्वार्थांध जीवन द्रष्टि

परतंत्रताकालीन मानसिक जड़ता से मुक्ति दिलाने में सबसे बड़ी बाधा है । समाज को निष्क्रिय बनानेवाले भाग्य और नियति के बद्धमूल संस्कार हमारे बीच कायम है ।

उपर्युक्त सभी बातें हमें मिश्रजी के काव्य में देखने को मिलती है । मिश्रजी के काव्य को देखकर यदि कहा जाय कि कवि ने समग्र भारतीय जीवन को ही अपने काव्य में प्रतिबिम्बित कर दिया है, तो अनुचित नहीं होगा । अन्य रचनाकारों के साथ रामदरश मिश्रजी भी देश, समाज की रचना के लिए नये जीवन-मूल्यों की खोज में लगे दिखाई पड़ते है । वे व्यापक द्रष्टि और गंभीर निरीक्षण के आधार पर समाज के शोषित-पीड़ित वर्ग के भाग्य को बदलने में रचनाकार के दायित्व को स्वीकार करते है । इसलिए अनेक स्थानों पर अपनी व्यंग्यपूर्ण कविताओं द्वारा शोषण के प्रति आक्रोश का भाव व्यक्त करते है । स्वतंत्रता-प्राप्ति के कुछ वर्षों बाद राष्ट्रीय-सामाजिक चेतना से अनुप्राणित कवियों ने देश व समाज का जो चित्र प्रस्तुत किया है, वह असन्तोष, आक्रोश, विषमता, नैतिक पतन और सांस्कृतिक ह्रास आदि का भयानक किन्तु यथार्थपरक चित्र है ।[८६]

राजनीतिक समस्याएँ

मिश्रजी ने अपनी कई कविताओं में राष्ट्र के अमर सपूतों के प्रति श्रध्धाभाव व्यक्त किया है । 'बापू के प्रति' कविता में कवि ने महात्मा गांधीजी को मानवता के चिरन्तन पूत, दानवता के विद्रोही और कंटक-पथ के मौन बटोही आदि विशेषणों से अभिहित किया है । नवयुग के निर्माता गांधीजी को संबोधित करते हुए कवि कहता है कि, हे बापू, तुम्हारे चरणों के स्पर्श से आशा के शव पुनः प्राण बन गये । तुम्हारी करूणा का पानी इस राह की अमर कहानी बन गया । तुम्हारे ही प्रताप से शस्य-श्यामला भारत-माता मुक्त हुई -

'युग निर्माता हे !
विकल निशा नत तम-कन अलसित
मलय-पवन में तरूदल पुलकित
किरन ज्योति अवतरित धरनि पर
मुक्त पंख विहंगावलि हर्षित
अखिल विश्व में मुखरित तब, स्वन
घ्वनित धरा प्रतिघ्वनित गगन-बन
तब साँसों की अमर बीन पर
नव युग गाता है ।
युग निर्माता है ।'[८७]

महात्मा गांधी के दुःखद अवसान पर उनके कवि-मन को गहरी ठेस लगी और उन्होंने गांधीजी को गीतमय श्रध्धांजलि अर्पित की-

'रात घनी है बादल छाए, कांप रहे है पंथी के पग
अंध निशा में जग के जगमग दीपक का अवसान हुआ क्यों ?
धरती की पलकें बोझिल है, भीग रहा आँसू से अंतर
विधवा-सी ये शून्य दिशाएँ रोती है अम्बर से झर-झर
यह दिल्ली की सांझ घुसरित खोज रही यौवन की घडियाँ
माँग रही माता अम्बर से अपना बापू आहें भर-भर
देख रही मानवता अपने सपनों की वीरान चिताएँ
नव गुंजन से गुंजित यह वन जल सहसा सुनसान हुआ क्यों ?'[८८]

कवि के हृदय पर गांधीजी की मृत्यु के पश्चात् जैसी ठेस लगी थी, वैसी ही ठेस मालवीयजी की मृत्यु के पश्चात् भी हुई थी । मालवीयजी की जलती हुई चिता को देखकर कवि ने अपना भाव इस प्रकार प्रकट किया है -

'पुनः प्रातः होगा सुमन फिर खिलेगा
दिवाकर नई ज्योति लेकर मिलेगा
मगर ढल गया जो दिवाकर हमारा
नहीं फिर मिलेगा, नहीं फिर मिलेगा
लिए दर्द दिल में सदी जल रही है
व्यथा की कथा ले पवन हिल रहा है ।'[८९]

जहाँ कवि ने नेताओं के दुःखद अवसान पर श्रध्धांजलि अर्पित की है, वहीं आज के परिवेश में सुविधा-भोगी नेताओं पर व्यंग्य भी किये है । 'हम कहाँ है' कविता में कवि ने हमारे नेताओं का वास्तविक स्वरूप प्रस्तुत किया है । इन नेताओं की करनी व कथनी में जमीन-आसमान का अंतर है । इनमें कुर्सी के लिए होड़ लगी हुई है । अनेक राजनैतिक पार्टियाँ अलग-अलग प्रकार के झण्ड़े प्रयोग करती है । परन्तु उनका वास्तविक स्वरूप एक-सा है । राजनैतिक पार्टियाँ एक-दूसरे से लड़ती हुई भी घायल नहीं होती । इनकी आपसी लड़ाई में गरीब जनता ही मारी जाती है । विभिन्न दलों के राजनेता आपस में लड़ते हुए भी सम्पन्न होते जा रहे है - मोटे होते जा रहे है । लड़ते तो है गरीब जनता के उद्धार के लिए, लेकिन परिणाम ठीक उल्टा हो रहा है -

'अजीब जादू है
कि ज्यों-ज्यों ये लड़ते है
मोटे होते जा रहे है
और जिनके लिए ये लड़ने का शोर कर रहे है
उनकी लाशें गिरती जा रही है लगातार ।'[९०]

चुनाव आते ही पोस्टरों से दीवारें रंग-बिरंगी हो जाती है । चारों तरफ माइकों की चीख से कान बहरे हो जाते है । पार्टियाँ अलग-अलग नारों का प्रयोग करती है । कोई गरीबी दूर करता है तो कोई भ्रष्टाचार । तरह-तरह के आश्वासन दिये जाते है किन्तु चुनाव समाप्त होते ही गायब हो जाते है । कवि के मकान के सामने जो कच्ची सड़क है, उसे पक्की बनवाने का वायदा करके गये । चुनावी दौर में सड़क की हालत पहले से भी खराब हो गयी । सड़क पर धूल का अंवार लग गया है । कवि अब हवा से भी डरने लगा है -

'पक्की सड़क देने के वायदे में
वे मेरे घर के सामने की कच्ची सड़क
रौंद कर चले गये
हाय वे क्या कर गये
कि अब मैं हवा से डरने लगा हूँ ।'[९१]

राजनीति का आज हर तरह से अपना फायदा उठाना चाहता है । विज्ञान अनेक प्रकार से ध्वंसक हथियार बना रहा है । धार्मिक नेता सम्प्रदाय का इन्द्रजाल बुनकर भोली-भाली जनता को फांस रहा है । राजनेता कभी युध्ध का भय दिखाकर अपना उल्लू सीधा करता है तो कभी धर्म के नाम पर । मिश्रजी की कविता 'नयी शताब्दी' में राजनीतिक व्यंग्य बहुत प्रखर है -

'विज्ञान परमाणु बम सजा रहा है
और धर्म सम्प्रदाय का इन्द्र जाल
राजनीति मुस्कराकर
कभी उसे देखती है, कभी उसे
और सहमा हुआ आदमी
राजनीति का हँसी देख रहा है
हाँ, नयी शताब्दी के आने में देर नहीं है ।'[९२]

आपकी रचनाओं में जहाँ जीवन के तनावों, दबावों, संगति-असंगति, संगठन-विघटन के सूक्ष्म अनुभव की अभिव्यक्ति हुई है, वहीं देश की राजनैतिक स्थिति के प्रति गहरा क्षोभ प्रकट होता है । कवि महसूस करता है कि राजनेता सदैव स्वार्थपूर्ति में लगा हुआ है । उसे धन कमाना है, अपने कुर्सी को बनाये रखना है । जब कभी देश किसी मुसीबत में पड़ता हे, गरीब जनता की आवाजें ऊँची उठने लगती है, कुर्सी खतरे में दिखायी पड़ती है, तो देश के नेता झट चिल्लाने लगते है, सबका ध्यान सीमाओं की ओर खींचते है और कहते है - देश की सुरक्षा खतरे में है । परिणाम गरीब जनता को ही भुगतना पड़ता है -

'एक धरती बंट गयी है कितने टुकड़ों में
और हर टुकड़े को बारी-बारी खा रहा है
बडे इत्मिनान से
एक अकाल
एक महंगाई
एक बेकारी
ये सब तुम्हारी ओर आ रहे है
हां तुम्हारी स्वाधीनता की ओर
और ऊपर उठी हुई आवाजें
धीरे-धीरे सीमान्त की ओर सरकने लगती है
नीचे बिछे हुए टुकड़ों को
अलग-अलग फिर से खाने लगता है
एक अकाल
एक बाढ
एक महंगाई
एक बेकारी ।'[९३]

मिश्र जी की रचनाओं में विद्रोह की भावना भी व्यक्त होती है । अन्याय, चापलूसी, शोषण, तानाशाही आदि सामाजिक बुराइयों के प्रति कवि ने क्षोभ के साथ-साथ विरोध भी व्यक्त किया है । कवि सही लिखेगा, किसी की खुशामद नहीं करेगा । उसे तो वनवास झेलना ही है - चाहे राजा कोई भी हो ।

चुनाव अभियान में नेता बड़े-बड़े वायदे करते है । कहते है हमें वोट दो । हम तुम्हारे लिए दिल्ली जाकर तुम्हें कुसियाँ देंगे । परन्तु वायदे कभी पूरे नहीं होते । रामदरश मिश्रजी ने जनता के मनोभावों एवं नेताओं के वायदों का बडा मार्मिक चित्रण किया है अपनी कविता 'तुमने कहा था' में -

'तुमने कहा था
कि तुम हमारे लिए राजधानी जा रहे हो
राजधानी में पहूँचते-ही तुमने हमारे कंबल का झंड़ा बना लिया
और उस पर हमारे उदास चेहरों की तस्वीर छाप कर
चिल्लाने लगे -
नहीं, अब तुम वापस नहीं आओगे
हमारे चेहरे वापस कर दो
हम बेपहचान हो गये है

हमारे कंबल वापस कर दो
खुद इनसे अपनी एक नयी पहचान बनायेंगे ।'[९५]

एक तरफ दिल्ली सजी हुई है, बड़े-बड़े नेता गणतंत्र दिवस का राष्ट्रीय पर्व धूम-धाम से मना रहे है और दूसरी ओर वहीं गरीबी का नग्न चित्र मन को विचलित कर देता है । कितनी भयानक है इस देश की आर्थिक विषमता ।

'उसके सामने से गुजरता है
दातुन बेचता हुआ एक नंगा काँपता बच्चा
दार्शनिक की तरह ठठाकर हँसता हुआ एक पागल
पीठ पर किसी सिपाही के डंड़े झेलता एक भिखारी
सिर पर दूसरे का बोरा लादे एक मजदूर
छाती से बच्चा चिपकाये एक सूखा छातियाँ वाली माँ
अनन्त नर-नारियों के चेहरे मुस्कानों से धुले है
वातावरण में जैसे सहस्त्रों रंग-बिरंगे फूल खिले हैं
नेता
अभिनेता
सेठ
अफसर
सभी दे रहे हैं गणतंत्र दिवस को सलामी ।'[९६]

जिनके पास भावनाएँ है, विचार है, समाज के प्रति चेतना है, जागरूकता है, ऐसे लोगों को समाज में सरकारी व्यवस्था में जी पाना असंभव हो गया है । चारों तरफ घूसणखोरी, पक्षपात, भाई चारा-वाद का बोलबाला है । कवि ने न्यायालय जैसे पवित्र स्थान पर पनपते भ्रष्टाचार का बड़ा ही यथार्थ चित्रण किया है । वहाँ का हर इन्सान मुर्दा बन गया है, भावना-शून्य हो गया है । उसे सिर्फ नोटों का बंड़ल चाहिए । जो घूस देने में अभ्यस्त लोग है, वे सफलतापूर्वक आगे बढ़ जाते है और ये मुर्दे उन्हें पकड़कर पीछे ढकेल देते है, जो जीवित है -

'कबहरियाँ बाजार-सी बजबजा रही है
छाया में चारों ओर
कुर्सियों पर तख्तों पर
मुरदे बिछे है
जिनके बीच से
जीवित होने की पीड़ा लीये
गुजरते है कुछ लोग

मुरदों के हाथ फैले है
जिनमें चुपचाप नोट ठुंसकर
अभ्यस्त लोग आगे सरक जाते है
यों ही गुजरने वाले जीवित लोगों को
वे हाथ पकड़ लेते है
और ठेल देते है पीछे ।'[९७]

मातृभूमि के प्रति आकर्षण

मातृभूमि के प्रति आकर्षण राष्ट्रीय चेतना का मूलाधार है । मातृभूमि का प्रेम व्यापक होकर अंततः राष्ट्रप्रेम में परिवर्तित हो जाता है । आजकल पश्चिम के प्रति जो आकर्षण लोगों के मन में है, वह राष्ट्रीय चेतना के लिए घातक है । इस संदर्भ में आचार्य शुक्लजी का कथन स्मरणीय है - **'किसी को कोई स्थान बहुत प्रिय हो जाता है और वह हानि और कष्ट उठाकर भी वहाँ से जाना नहीं चाहता । हम कह सकते है कि उसे स्थान का पूरा लोभ है । जन्मभूमि का प्रेम, स्वदेश प्रेम यदि वास्तव में अंतःकरण का कोई भाव है, तो स्थान के लोभ के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । इस लोभ के लक्षणों से शून्य देश का प्रेम कोरी बकवास या फैशन के लिए गढा हुआ शब्द है ।'**[९८]

महानगर के परिवेश में रहते हुए भी कवि रामदरश मिश्र में अपनी धरती से कटे हुए होने का गहरा अहसास और उससे जुड़ने की तीव्र ललक है । यह छटपटाहट और बेचैनी उनकी कविताओं में नये भाव-जगत् का निर्माण करती है । महानगर की कश्मकश जिन्दगी को भोगते हुए भी वे भावों के प्रति भावात्मक लगाव को भुला नहीं पाते है -

'मैंने अपनी बीमार माँ से कहा था -
माँ,
मैं तेरी दवा लेने दिल्ली जा रहा हूँ ।
माँ ने पहले तो रोका -
वह जादू-नगरी है बेटे,
वहाँ जाकर लोग भेड़-बकरे
या कि सांप-सूअर बन जाते है
फिर मौन यातनामयी आँखों से बिदा ढरका दी
मुझे इन आँखों की भाषा पढ़ते डर लगा था ।'[९९]

'लौटा आया हूँ मेरे देश' कविता अपने देश और धरती के प्रति गहरे लगाव को व्यंजित करती है । अपने गाँव के प्रति कवि का विशेष आकर्षण है । वे शहर जाते है और पुनः लौट आते है । कवि को अपने गाँव के गड्ढे, ताल, खेत, कच्चे रास्ते,

मिट्टी के मकान आदि से अत्यधिक लगाव है । यह भावबोध हम इस कविता में देख सकते है –

'ये हांफते हुए गड्ढे.....
ये काइयाँ भरे ताल
ये टूटे हुए कुएँ
ये ही सब मेरे है
लेकिन दूर के सागर पर मैं कब तक भटकता रहता
अपनी कटी-फटी धरती को छोड़कर
कब तक पराए आकाश में टंगा रहता ?
यह धूल
यह रेत
यह खेत
ये कच्चे रास्ते
ये मिट्टी के मकान
मुझमें लिपटकर मुझे गंदा कर देते है
लेकिन इनसे छूट कर
चिकने पत्थरों के बीच कब तक जी सकता हूँ ?
लौट आया हूँ मेरे देश
तुम्हारी मैली पगड़ंड़ियों से तुम्हारे पास ।'[१००]

मातृभूमि के प्रति कवि का आकर्षण राष्ट्र-प्रेम ही है । मातृभूमि में उसे आत्मीयता का भाव उपलब्ध होता है, जो शहरी चमक-दमक के बीच दुर्लभ है । उसे गाँव का धूल-धूसरित वातावरण पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित शहरी संस्कृति में अधिक प्रिय है । सहज आत्मीयता से हीन शहरी संस्कृति में वह जी नहीं सकता । वह कष्ट उठाकर भी गाँव में निवास करेगा ।

मातृभूमि के प्रति आकर्षण और देश के किसी अन्य भू-भाग के प्रति मोह में राष्ट्रीय चेतना की द्रष्टि से साम्य है ।

यदि दक्षिण का साहित्यकार उत्तर की प्राकृतिक सुषमा का चित्रण करता है और उत्तर का साहित्यकार दक्षिण की, तो इन रचनाओं से वह राष्ट्रीय रागात्मकता का भावबोध जागृत करता है । 'कन्याकुमारी : छः कविताएँ' में कवि कन्याकुमारी के सौन्दर्य को देखकर आश्चर्यचकित है । उत्तर के कवि का कन्याकुमारी के प्रति यह आकर्षण देश की अखण्ड़ता का भावबोध व्यक्त करता है । एक कविता देखिए –

'चारों ओर अगाध अनंत नीला जल
बीच में यह एक छोटी-सी चट्टान
प्रबल वेग से राशि-राशि उर्मियाँ आती है
चट्टान से टकराती है
उछलती है, लहराती है
चट्टान को पीटती है
दूर तक उसके तन पर
अपने क्रोध की आग छींटती है
न जाने कब से चल रहा है यह क्रम
चट्टान ज्यों की त्यों
अविचल निरूद्वेग खड़ी है
वह छोटी ही सही
दूर तक धरती में गड़ी है ।'[१०१]

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी राष्ट्रीय भाषा होती है । राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत कवि में राष्ट्रीय भाषा के प्रति निश्चय ही गर्व की भावना पायी जाती है । इस भाषा का अहित और अपमान वह सहन नहीं कर पाता । राष्ट्रीय भाषा के प्रति भारत में विपरीत परिस्थितियाँ रही है । अंग्रेजी भाषा के प्रति मानसिक गुलामी अभी भी यहाँ सुविधा भोगी लोगों के मन में बनी हुई है । कवि रामदरश मिश्र के अनुसार अंग्रेजी भाषा का अस्तित्व मानसिक गुलामी का ही प्रतीक है । वह शोषण का हथियार बनी हुई है । 'समय देवता' कविता में कवि ने स्पष्ट किया है कि अंग्रेजी भाषा में शिक्षित लोग ही जीवन की सुविधाएँ इकट्ठा कर पाते है -

'जंगलों से वैसे ही खाली दिशाएँ झांकती है
बच्चे वैसे ही गंवई स्कूलों में पढ़कर
पब्लिक-परीक्षाओं के लिए मूर्ख करार दिये जाते है
सभ्याचरण-विहीन, अंग्रेजी-विहीन ।'[१०२]

कवि ने अपने निबंधों में भी उन लोगों पर व्यंग्य किया है जो अपनी मातृभाषा या राष्ट्रभाषा के प्रति उपेक्षा भाव रखते है । यह भावबोध हम इन पंक्तियों में देख सकते है - **'गुलामी चाहे शारीरिक हो, चाहे मानसिक, उसमें आदमी विकास नहीं कर सकता । यह सच है कि तुम्हारा देश आजाद हो गया है, लेकिन तुम्हारा मन अभी आजाद नहीं हुआ है - वह अभी अंग्रेजी और अंग्रेजियत की दासता से बुरी तरह जकड़ा हुआ है ।'**[१०३]

अन्यत्र उन्होंने कहा है - **'भाषा की आजादी के बिना, देश की आजादी की**

कल्पना भी नहीं की जा सकती । भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं है – वह हमारे चरित्र का एक अंग है, वह हमारी अनुभूति, हमारे चिन्तन और हमारे जीवन-संघर्ष में रसी-वसी होती है ।'[१०४]

रामदरश मिश्र की रचनाओं में व्यापक राष्ट्रीय चेतना उपलब्ध होती है । उपर्युक्त उदाहरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि उनकी रचनाओं में मातृभूमि के प्रति आकर्षण है, साथ ही वे मातृभाषा और राष्ट्रभाषा का असम्मरन सहन नहीं कर पाते । मातृभूमि के अतिरिक्त संपूर्ण भारतीय भूमि से उनका आत्मीयसंबंध है । इसी कारण वे किसी स्थल पर अपनी रचनाओं में कन्याकुमारी की सुषमा में खो जाते है, तो कहीं हिमालय की ऊँचाइयाँ उन्हें पुकारती है । राष्ट्रीय चेतना का एक पहलू सामान्यजन के हित से जुड़ा हुआ है जिसका समर्थन कवि की अधिकांश रचनाओं में स्पष्टतया देखा जा सकता है । सामान्यजन के शोषण के विरोध में कहीं वह राजनीति पर व्यंग्य करता है, तो कहीं सेठ-साहूकारों पर व्यंग्य करता है । सामान्यजन के हित को लेकर ही कवि की राष्ट्रीय चेतना सशक्त रूप में व्यक्त हुई है ।[१०५]

रामदरश मिश्र के काव्यों में अनुभव का आत्मपरक रूप

('कंधे पर सूरज')

'कंधे पर सूरज' डॉ. रामदरश मिश्र का चौथा कविता-संकलन है । जरूरी है कि इन कविताओं पर कुछ कहने से पहले कवि के अब तक के रचना-कर्म की उन खूबियों को समझ लिया जाए, जिनका विकास इस संकलन की रचनाओं में देखा जा सकता है ।

रामदरशजी के पिछले पच्चीस वर्षीय लेखन का एक विशिष्ट प्रगतिशील चरित्र रहा है । पूर्ण प्रतिबध्धता उनके लेखन में भले ही कभी न रही हो लेकिन संघर्षरत तबक्कों के प्रति हार्दिक सहानुभूति का भाव इनकी प्रत्येक कृति में दिखलाई पडता है । मानवीय मूल्यों के प्रति भावात्मक प्रतिश्रुति ने रामदरशजी की रचना-दृष्टि को हर जगह उस मानवीय विवेकशीलता से जोड़ा है, जो सामाजिक यथार्थ की द्वंद्वात्मक स्थितियों में बिना किसी अतिरिक्त आयास के शोषित वर्ग के प्रति अपनी सहानुभूति निर्धारित और व्यक्त करती चलती है । 'नयी कविता' के उस दौर में भी जब एक बड़ा लेखक-समूह 'अस्तित्व' को जीवन से बहुत ऊपर घोषित करता हुआ सामाजिक यथार्थ से 'पलायन के आदर्शीकृत रास्ते' खोज रहा था, जब कला की स्वायत्तता तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता का नारा देकर व्यवस्था के मूलभूत अन्तर्विरोधों से पाठक का ध्यान हटाकर उसे अनुभवों के एक ऐसे अजनबी संसार में भटका देने की कोशिश की जा रही थीं ताकि वह सही सोच और सामाजिक संघर्ष के जीवित सन्दर्भ से बिल्कुल कट जाय, तब रामदरशजी

उस दौर में भी 'नींव के पत्थर', 'सत्य से साक्षात्कार' तथा 'आत्महत्या से पहले' जैसी प्रगतिशील यथार्थवादी कविताएँ लिख रहे थे । रहस्यवादी तो वे किसी स्तर पर रहे ही नहीं है । इससे पहले कविता-संकलन 'पक गयी है धूप' की भूमिका में उन्होंने स्वयं लिखा है, **''मूल प्रश्न तो यह है कि कलाकार अपने जीवन्त परिवेश को कहाँ तक जी सका है, उसके और अपने बीच के तनावों, दबावों, संगति-असंगति, संघटन-विघटन को कहाँ तक कितनी दूर तक महसूस कर सका है । मैंने अपने परिवेश-जन्य अनुभवों को सदा महत्व दिया है । इसलिए न तो मैंने बहुत-से आधुनिक कहे जा सकने वाले कलाकारों की तरह विश्व के अनुभवहीन यथार्थ को अपने से पैबन्द की तरह जोड़ा है और न अकवितावादियों या इस तरह की अन्य स्वकेन्द्रित, अस्वीकृतिमयी, छद्म धाराओं के कवियों की तरह परिवेश को अस्वीकारा ही है ।''** मेरा अपना खयाल है कि रामदरश मिश्र साफ तौर पर अज्ञेय और भारती की व्यक्तिवादी धारा से अलग परम्परा के कवि है ।'[१०६]

यदी गौर से देखें तो रामदरशजी के समूचे रचनात्मक लेखन के केन्द्र में एक खास व्यक्ति का चेहरा है । उनकी हर एक कविता में यह चेहरा अपने विशिष्ट व्यक्तित्व के साथ मौजूद है । अपनी अतिरिक्त संवेदनशीलता के कारण कविता में तो इस चेहरे को और अधिक आसानी से पहचाना जा सकता है । 'पथ के गीत' से लेकर 'कंधे पर सूरज' तक सभी रचनाओं में यह चेहरा अपनी पहचान विकसित कर रहा है । यह चेहरा है एक ऐसे संवेदनशील व्यक्ति का जो महानगरीय परिवेश की जटिलताओं के बीच अपने को विस्थापित अनुभव करता है, यंत्र सभ्यता की गिरफ्त में कसी जिन्दगी के तनावों के बीच झटके खाते हुए एक अजीब-सी घुटन महसूस करता है । इस घुटन से उबरने के लिए वह अपने गंवई-जवार की उस सौंघी महक से जुड़ना चाहता है, जो उसकी स्मृति में, उसके संस्कारों में कहीं गहरे बसी हुई है । धरती की यह सौंघी महक वर्तमान के अनजाने दबावों और भयों से उसे मुक्त कर-ले जाती है, उस खुले प्राकृतिक परिवेश में जहाँ सूरज है, आईने जैसा चाँद है, जंगल है, अजनबी हवाएँ हैं, धूप है, ताल है, पहाड़ी झील है, बहती नदी है, विस्तृत आकाश है, यायावर बादल, गुलमुहर के फूल-सा दिन तथा फागुनी शाम है और है 'वसंत' - जो मिश्रजी की कविताओं में सबसे ज्यादा आया है ।

'हम कबसे प्रतीक्षा में थे उस वसंत की
जो हमारे उपवनों के बीच
सुगंधित हवाओं का एक सेतु बन जाता है
हम बोलें या न बोलें
हमारे उपवनों के फूल
एक-दूसरे से बोलने लगते है

अनजाने ही धीरे-धीरे
अपनी काँपती पंखड़ियों से
अपने भीतर का राज खोलने लगते है
और लगता है कि
अनेक फूलों का
एक रंग-बिरंगा फूल बन गया है ।
हम कबसे प्रतीक्षा में थे उस वसंत की
जिसका कहीं कुछ नहीं होता
किन्तु जो सबका होता है
जो अपने लिए कोई आकार नहीं धरता
किन्तु जिसमें हर आकार जागता और सोता है ।'[१०७]

प्रकृति में मुक्ति खोजने का यह प्रयास ठीक वैसा ही नहीं है, जैसा कि '**द वर्ल्ड टू मच विद अस**' की चिंता से भरे रोमान्टिक कवियों तथा कुछ अंशों में उनसे प्रेरित - '**वाले तेरे बालन्जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन**' की दुविधापूर्ण स्थिति में पड़े हुए कुछ छायावादी कवियों में था । गुणात्मक दृष्टि से यह एक भिन्न रचनात्मक दृष्टि और अनुभव-स्तर है । यहाँ कवि गाँव को महज प्रकृति नहीं मानता । उसके कई गाँव जीवंत सामाजिक परिवेश और एक ठोस अनुभव संसार है । इस परिवेश में वह मूल्यों की खोज करता है और अनुभवों के बीच नये-पुराने सामाजिक सम्बन्धों की पहचान और उनके टकराव की स्थितियों को प्रत्यक्ष करता है । शायद यही वजह है कि ग्रामीण परिवेश और प्रकृति के दृश्यों की सहज सामान्य संयोजना में भी उसकी कविता की अर्थ-प्रक्रिया दुहरे स्तरों पर सक्रिय हो उठती है -

'आकाश की खिलती धूप में
रंग-बिरंगे पंख उड़ रहे है
नंगी डालियों पर लाल-लाल पत्ते बिछे है
एक जीवन दूसरे जीवन की आँच से जुड़ता चला गया है
और बसन्त आ गया है ।'[१०८]

पिछले दिनों साहित्य में खास तौर पर कविता एवं गीत में गाँव बनाम शहर की बात जोर-शोर से चलाई गई थी और आज की राजनीति में भी निहित स्वार्थों वाले प्रतिक्रियावादी लोग इसे उठा रहे है । गाँव बनाम शहर की समस्या गलत सन्दर्भो में उठने पर एक प्रगतिविरोधी रवैया बन जाती है । भविष्य की मानवीय व्यवस्था की आशा इन्हीं महानगरों में केन्द्रित है । ऐसी हालत में समूचे महानगरीय परिवेश को कारखानों के गंदे शोर, धूल, धुआँ, भीड़ से अंटा हुआ या यांत्रिक, अमानवीय एवं घुटन से भरा

हुआ घोषित कर अस्वीकृत कर देना, उस भाववादी और अंततः इतिहास-विरोधी रूख का परिणाम है, जो अनुभूति को एकांगी ढंग से अतिरंजित करती हुई यथार्थ के पहलू को संपूर्ण मान लेती है और इस तरह विचार और यथार्थ के बीच अलगाव पैदा कर देती है ।

महानगरीय परिवेश में आत्मनिर्वासन के इस अनुभव के अपने कारण, अपना स्वभाव और अपनी विशेष स्थिति है, जो वर्तमान समाज के ढांचे और उसके अन्तर्विरोधों से उत्पन्न हुई है । **''इस निर्वासन का सामाजिक और इससे भी अधिक आर्थिक संदर्भ है । मशीनीकरण की प्रकिया में फँस कर, महानगर की घोर विषमता में रहता हुआ आदमी एक 'डिप्रेशन' मेहसूस करता है । यूँकि उसका अपनी मेहनत से पैदा की गई वस्तु से कोई लगाव नहीं होता, यंत्रों की तरह संबंधहीनता और जड़ता उसमें समाती जाती है, जो सारे सामाजिक सम्बन्धों और दायित्वों तक फैल जाती है ।'**[१०९]

यह खुशी की बात है कि 'कंधे पर सूरज' की इन कविताओं में कवि महानगर से भाग कर ग्रामीण प्रकृति के आंचल में दुबकने की प्रवृत्ति तथा गाँव बनाम शहर की बेमतलब बहसों के माहौल को काफी पीछे छोड़ आया है । यहाँ एक ही आर्थिक-सामाजिक संरचना के आधीन शहर और गाँव के दोनों यथार्थ-वृत्त अपनी समानान्तर घुटन को पूरी भयावहता में प्रत्यक्ष करते है । उसे मेहसूस होता है कि -

'अब गाँव हो या शहर
सब पर एक ही घिसा हुआ विराट मौसम बिछा हुआ है
और एक घरघराती मशीन दौड़ रही है ।'

इस द्रष्टि से 'गठरी' इस संकलन की एक महत्वपूर्ण कविता है ।[११०]

मुक्तिबोध ने एक जगह लिखा है कि **'मैं कलाकार की स्थानान्तरगामी प्रवृत्ति पर जोर देता हूँ । आज के वैविघ्यमय, उलझन भरे, रंग-बिरंगे जीवन को यदि देखना है, तो अपने वैयक्तिक क्षेत्र से एक बार तो उड़ कर बाहर जाना ही होगा । बिना उसके, इस विशाल जीवन-समुद्र की परिसीमा, उसके तट-प्रदेशों के भूखंड़ आँखों से ओट ही रह जायेंगे । कला का केन्द्र व्यक्ति है, पर उसी पर केन्द्र को अब दिशाव्यापी करने की आवश्यकता है ।' मुक्तिबोध की इस बात को यहाँ दोहराने का एक खास मक्सद है ।**

रामदरशजी की पिछली कविताओं 'फिर वही लोग' में और यहाँ भी 'साक्षात्कार', 'वसंत की सुबह' -

'चन्दन वनों को बन्द कर लिया गया है
संगमरमरी मकानों में

डाल-डाल पर लिपटे हुए साँप
हवाओं को
अपने फेफड़ों में कैद करते रहते है
और सुबह होते ही
उन्हें छोड़ देते है अपने जहर से दाग कर
सारे शहर पर
शहर से गाँव पर..... ।' ('साक्षात्कार')

'कीचड़ से लथपथ पंख
साँसों में लाशों की दुर्गन्ध
चेहरे पर अनगिनत धाव
आँखों में बुझी हुई थकान ।
लगता है -
रात की दलदली धाटियों में
तुम बहुत भटकी हो हवा !'

तुम हवा हो
फसलों की धुन पर
गाओ बनजारों की तरह आवारा प्रेम-गीत
जो जंगलों मैदानों घाटियों का अंतराल तोड़कर
बहता रहे..... बहता रहे..... ।[१११]

('वसंत की सुबह'- 1977)

सब जुलूसों तथा सभी झण्ड़ों को एक-सा मानकर सबका समान भाव से विरोध बार-बार दिखलायी पड़ता है ।

सामान्य निष्कर्ष यही निकलता है कि राजनीतिक प्रयत्नों के प्रति कवि की यह प्रतिक्रिया यथार्थ की वस्तुनिष्ठ समझ की देन न होकर उसके संस्कारों में कहीं गहरे बसी हुई, राजनीति मात्र के प्रति नफरत की ही उपज है । यह नफरत बारह वर्ष पहले लिखी गयी कविता 'फिर वही लोग' में भी है

'फिर वही लोग जा रहे है इस सड़क से
जो कल गये थे
आज उनकी वर्दियाँ और झण्ड़े बदले है
आवाजें वही है
नारे नये है

कल भी वे जनता की सेवा को बेचैन थे
आज भी है' ।[११२]'' **(1966)**

वास्तव में ऐसी प्रक्रियाएँ मध्यवर्गीय विभ्रमों में कैद व्यक्ति की उस सामान्य राजनीतिक समझ के ही प्रमाण जुटाती है, जो बुनियादी सामाजिक परिवर्तन का एक स्वतःस्फूर्त प्रक्रिया मान कर चलती है । आत्म निरूपण की अकेली चिंता कवि को आत्मसजग प्रतिक्रियाओं से आगे नहीं बढ़ने देती तथा उसका पूरा रचना-कर्म आत्मपरक परिणतियों पर केन्द्रित होकर अपनी अलग-अलग स्थिति को जस्टीफाई करने की प्रक्रिया में व्यस्त हो जाता है -

'और मैं फिर नहीं जा पाऊंगा
कागजों के पार ।
लेकिन मेरे जीने के लिए यह बोध कम तो नहीं
कि वह मुझसे छूटा नहीं है ।'[११३]

लेकिन 'कंधे पर सूरज' की कुछ कविताओं जैसे 'गठरी', 'लौट आया हूँ मेरे देश', 'वह इसी मौसम में आता है', 'दो किनारे', 'तुमने कहा था' में आत्म संघर्ष की वह प्रक्रिया स्पष्ट होने लगी है । जहाँ कवि 'अपने वैयक्तिक क्षेत्र से उड कर बाहर आने' की कोशिश कर रहा है । आत्म निरूपण से आगे बढ़कर आत्म साक्षात्कार की यह प्रक्रिया उसे अपनी सीमाओं के बारे में नये सिरे से, पर पूरी ईमानदारी के साथ सोपने को विवश करती है -

'मैंने कमरे में
खिड़की के सामने एक बड़ा-सा आईना लगा रखा है
सुबह से शाम तक
आइने के एक किनारे बैठा
देखता रहता हूँ
आईने में गिरती सारी सड़क को
छायाएँ
छायाएँ
छायाएँ
अंत में
मैं इन सारी कुरूप छायाओं को बटोरकर
समाज पर चीखता हूँ
और कविता करता हूँ
और न जाने क्यों

खुद आईने के सामने आने में डरता हूँ ।'[११४]

'जंगल में', 'रूपान्तर' तथा 'कविता का आकाश विस्तृत हो गया है' - जैसी कविताओं में कवि की बेबसी, तिलमिलाहट और तीखे अस्वीकार की मुद्राएँ अपने काव्यात्मक अनुशासन में काफी प्रभावशील हो उठी है । मुझे व्यक्तिगत रूप से इस संकलन की अंतिम कविता बहुत प्रिय है । कवि के निजी अनुभव में पूरी आत्मीयता के साथ हम सब भी शरीक हो सकते है -

'पर्वत अपने-अपने झरनों के शोर भीतर दबाये
इस उड़ती हुई धूल और आवाज में समा गये है -
एक विराट अस्तित्व.....
बादल और धुएँ का फासला टूट कर गिर पड़ा है एक चट्टान पर
और हम कहते है कि
कविता का आकाश विस्तृत हो गया है ।' (सन् 1975)

जीवन के विविध आयाम : 'दिन एक नदी बन गया' :

डॉ. मिश्र जहाँ नवगीत के शीर्ष कवि है, वहीं इन्होंने आज के त्रासदी भरे युग में, मनुष्य के घुटन, बिखराव, मानवतावादी मूल्यों की खोखली अर्थवत्ता तथा शान्ति-पूर्ण ग्रामीण जीवन तथा सभ्यता की मृत्यु शय्या पर अपनी मौत के भयानक स्वप्न तथा ब्रह्मराक्षसों की पैशाची हँसी से काँपते अकेले मनुष्य के दर्द को बड़ी तीखी अनुभूति तथा सच्चे कलाकार की संवेदनात्मक संचेतना से मर्मी एवं पैनी कलम द्वारा अपनी नयी कविताओं में रेखांकित किया है ।

'दिन एक नदी बन गया' शीर्षक काव्य-संग्रह में मात्र ५७ कविताएँ है, जो बहु-आयामी है और किसी बोझिल दिन की तरह-तरह के त्रास 'बेचैनी' नगर सभ्यता के बांझपन तथा कराहते अन्तर्मन के बौनेपन के चौखट में कैद जीवन और विज्ञान, औद्योगिक विकास के फैलते जहर में ग्राम्य सौन्दर्य, नैसर्गिक सुख-शांति आदि आधुनिक युग की आतंकित मानसिकता के कारण नष्ट होते जा रहे है और जो विकृत, नीरस अन्तहीन यात्रावाली नदी की तरह किनारे के झोंपड़ों को तबाह करती, संवेदनशील कवि के मन की निष्ठा के सन्मुख प्रश्न चिन्ह उपस्थित कर प्रबुद्ध और भावप्रवण पाठकों के सागर रूपी मानस में भी ज्वारभाटा का तूफान सहज रूप में उत्पन्न कर देते है और जो इन कविताओं की जीवन्तता और ताजगी तथा मार्मिकता की सार्थकता के सच्चे-सही मापदंड़ है । अब संक्षेप में इस संग्रह की प्रत्येक कविता पर भी विचार करेंगे -

''हमेशा आकाश से झरती है एक नदी
और हमेशा ऊपर ही ऊपर कोई पी लेता है

धरती प्यासी की प्यासी रहती है
और कहने को आकाश से नदी बहती है । 28/7/77

'नदी बहती है' में आज की व्यवस्था और पूंजी-पतियों द्वारा, सम्पूर्ण अमृत, जिसे आकाश-प्रकृति सर्वजन हिताय बिखेरती है, हड़प लिया जाता है, शोषण कर लिया जाता है, जनता असमर्थ बनी देखती रह जाती है और तृषित रह जाना ही उसकी विड़म्बना बन जाती है । चार पंक्तियों की इस छोटी रचना में अत्यन्त कलात्मक शिल्प के सहारे आज की गलत विकृत व्यवस्था का बिम्ब सफलता से प्रस्तुत किया गया है ।[११६]

यथार्थ का नया धरातल : 'दिन एक नदी बन गया' :

..... हमने
अपनी दौडती कार के भीतर
रोशनी की आँखें तेज कर ली थी ।
कार जैसे भागती रोशनी का एक द्वीप
जिसमें चंद विदेशी किताबें थी ।
कुछ रंगीन बोतलें थी,
और एक-दूसरे में खोये हुए हम थे
चलते-चलते न जाने क्या हुआ
कि भीतर की रोशनी की आँखें
खुद ही चुंधियाकर बंद हो गयीं.....

'दिन एक नदी बन गया' की इन काव्य पंक्तियों में डॉ. रामदरश मिश्र ने आज के जीवन की एक अत्यधिक विड़ंबनापूर्ण स्थिति की ओर निर्देश किया है । यह विड़ंबना दो स्तरीय है । आज का मनुष्य एक व्यक्ति के रूप में और यदि वह रचनाकार है तो एक रचनाकार के रूप में भी अपने आपको उसमें उलझा हुआ पाता है । स्थिति यह है कि एक कृत्रिम जीवन-बोध हमें चारों ओर से घेरे हुए है । उसमें आँखों को चुंधिया देनेवाली चमक-दमक और उत्तेजनापूर्ण गतिशीलता है । लेकिन विड़ंबना यह है कि भीतर 'प्रकाश का यह घेरा' जिसे कवि ने कार की अंदर की रोशनी के रूप में चित्रित किया है - द्रष्टि की मर्यादा बन गया है । उस रोशनी में कुछ दिखायी नहीं देता सिवाय चंद विदेशी किताबों और रंगीन बोतलों के - हाँ अपने आपको खो देने के लिए बाजू की सीट पर एक 'प्रेमपात्र' भी बैठा हुआ है । एक रचनाकार के लिए यह आत्म मुग्धता की स्थिति है ।[११७] जीवन के व्यापक यथार्थ से कटा हुआ वह जीवन की इस कृत्रिमता को ही नये भावबोध के रूप में प्रस्थापित करने के लिए प्रयत्नशील बन जाता है । सवाल यह है कि इस आयातित रोशनी के वृत्त को कैसे

छोडा जाये, इस गतिशीलता की निरर्थकता को कैसे पहचाना जाये ? हां, अगर किसी आकस्मिक अवरोध के साथ कार अचानक रूक जाती है और अंदर की चकाचौंध बंद हो जाती है तो यह जरूर होता है कि बाहर का भीषण अंधकार दिखायी देने लगता है, लेकिन रचनाकार के लिए यह न तो संभव है और न इच्छनीय है कि वह इस प्रकार की आकस्मिकता की प्रतीक्षा करता रहे । जब तक हमारी अपनी रोशनी नहीं होगी - अपना आंतरिक जीवन-विवेक नहीं होगा - हम न तो उस अंधकार को दूर कर सकते है - और न अंधेरे में फँसे किसी व्यक्ति को रास्ता दिखा सकते है । यह बात उन राजनीतिक और साहित्यिक मसीहाओं के लिए खास तोर से कही गई है, जो अपने ऊपर दूसरों को मार्ग दिखाने का एक अतिरिक्त दायित्व ओढ लेते है । अब उन्हें यह कौन बताये कि अंधी दौड़ तुमको खुद को दुर्घटना बना सकती है -

ओ सुनो
कहाँ भागे जा रहे हो,
इस अंधेरे जंगल में झुंड़ के झुंड़
दूर कुछ घटनाएँ घटी है
लोग चीत्कार कर रहे है
तुम्हें लगता है कि
तुम उनके मसीहा हो
वे तुम्हीं को बुला रहे है
लेकिन मेरे दोस्तो
दौड़ने के पहले एक लालटेन तो जला लो
कहीं ऐसा न हो कि
अंधेरे में दूर तक दौड़ने के जोश में
अपने आसपास के लिए
तुम स्वयं एक दुर्घटना बन जाओ ![११८]

यह अपनी लालटेन या अपने विवेक और अंतर्दृष्टि की तलाश मिश्रजी की कविता और जीवन-बोध की पहली शर्त है । जीवन संघर्षों में सक्रिय हिस्सेदारी के द्वारा ही इसे अर्जित किया जा सकता है अन्यथा तथाकथित अंतर्दृष्टि की खोज कवि को इतना अंतर्मुखी भी बना सकती है कि उसकी कविता परीलोक की कहानी बनकर रह जाए । मिश्रजी की कविता में न तो आत्मबद्धता है और न बाहरी स्थितियों का बखान ही । इसका प्रमुख कारण संभवतः यह है कि वे अपनी अंतर्दृष्टि को बाह्य यथार्थ से संशोधित करते रहते है और जीवन की वस्तुगत सच्चाइयों को देखने-पहचानने के लिए अपनी लालटेन को जलाये रखना जरूरी समझते हैं । वस्तुतः मिश्रजी की इन कविताओं को

हम रोशनी की तलाश की कविता कह सकते है । यदि आध्यात्मिक विकलता मिश्रजी की परवर्ती कविताओं में नहीं आ पायी तो इसका कारण यह है कि मिश्रजी जिस अंधकार से अपने आपको या अपने युग की चेतना को घिरा हुआ पाते है, वह आध्यात्मिकता के प्रकाश से दूर नहीं हो सकता । सामान्यतः कवि की प्रौढ़ता के साथ उसकी खोज का मुहावरा बदल जाता है, बाह्य यथार्थ की भीषणता उसकी चेतना को आंदोलित नहीं करती, वह अपनी संवेदना और दृष्टि के सहारे किसी रहस्य लोक में पहुंचने का उपक्रम करने लगता है । रोशनी की तलाश उसे भी रहती है, लेकिन तब वह ऐसी रोशनी की खोज करना चाहता है, जो उसकी अंतरात्मा के रहस्यों को खोल सके । लेकिन मिश्रजी जिस अंधकार की बात करते है और जिसके विरूद्ध संघर्ष में ये जुटे होने की प्रतीति कराते है, वह उनके व्यक्तिगत जीवन का न होकर युग जीवन की पीड़ा और निराशा का परियाचक है । इसीलिए उसके अनेक रूप और अनेक रंग है, अनेक स्तर और अनेक सतहें है । कहीं वह अकेलेपन में समानधर्म की खोज का आह्वान बनकर आता है –

'घना नीरंध्र कुहरा
धरती आकाश एक हो गये है
शहर के शहर
गाँव के गाँव
हो गये है गुम
कहाँ हो तुम ?
कहीं वह रोशनी की चाह बनकर आता है –
रात कितनी घनी होती है
उतनी ही तेज होती है,
मन में रोशनी की चाह
और रोशनी चाहे जहाँ भी रहे
रूकती नहीं
चलती आती है खुली आँखों के पास
रात रोशनी की चाह है ।'[११९]

यूं कवि के अपने जीवन का भी 'भीतर से महाभारत गुजरने' जैसा दर्द है । लेकिन लगता है कि उसने व्यक्ति पीड़ा को समष्टि में घुला-मिला देने की कला सीख ली है । एक गहरी एकात्मकता है कवि की अपने युग की विचलनकारी स्थितियों के साथ । कवि अपने समय की जिन हकीकतों का बयान करता है, वे दहशत पैदा करती है । वह देखता है कि ''आकाश से बहती है एक नदी और हमेशा ऊपर ही ऊपर कोई

पी लेता है ।'' बड़ा मकान बनाये जाने की प्रक्रिया में छोटे मकान तोड़े जा रहे है । मशीन की धड़-धड़ाहट के साथ मकानों के टूटने की आवाज आ रही है । कवि बाहर निकलता है तो देखता है कि 'हर चौराहे पर दुर्घटनाग्रस्त होकर तड़प रहा है एक देश !' उसने घू-घू कर जलने वाले गाँवों और जिंदा औरतों को आग में सुलगते हुए देखा है । उसने देखा है बस्ती और गलियों में घूमते हुए भेडियों को जो चौराहों पर किसी का भी मांस नोचने लगते हैं ।

'दिन एक नदी बन गया' में जीवित और हरकत करते हुए मनुष्यों का एक भरा-पूरा संसार है । लेकिन इस संसार में खुशहाली कम विषाद और विपन्नता ही अधिक है । तमाम लोग है यहाँ - चीथड़े लपेटे लोग, भूखे नंगे लोग, पांव टिकाने के लिए एक गज जमीन को तलाशते लोग, बिना दीवारों की छत के नीचे खड़े लोग । कवि देखता है वह,

'एक बूढ़ी औरत
एक भारी गठरी सामने रखे हुए
भीड़-भरे शहरी रास्ते पर खड़ी है ।
और देहाती टीसन पर
एक टूटा हुआ बेंच
बेंच पर बैठा हुआ एक फटेहाल दिन ।'[१२०]

समकालीन जिन्दगी की वास्तविक अनुभूति का चित्रण :

यह एक विषमताग्रस्त समाज है और उसकी इस विषमता की जड़ें बहुत गहरी है - उनका संबंध हमारी आज की पूंजीवादी व्यवस्था से है । आजादी के बाद पिछले पैंतीस-चालीस वर्षों में हमारी राजनीति का जो नया रूप उभरकर सामने आया है, उसका मूल चरित्र मानव-विरोधी है । अपने समय की अमानवीय स्थितियों का बड़ा तीखा अहसास साठोत्तरी कविता में प्रकट हुआ है । लेकिन चीजों को उनके सही नाम से पहचानने के सिलसिले में युवा कवि लोकतंत्र चुनाव, समाजवाद संसद, संविधान आदि की असलियत को उद्घाटित करते हुए हमें अक्सर पूर्ण निषेध की भूमिका पर ले जाकर खडा कर देता है । आलोचकों ने युवा कवियों के इस निबंध को प्रायः संदेह की द्रष्टि से देखा है, इसे उनके रूमानी उद्रेक के रूप में परिभाषित किया है । कविता एक दायित्वपूर्ण कर्म है और यह तभी हो सकता है, जब कवि में तीव्र संवेदनात्मक एहसास जगाने के साथ मानवीय प्रतिबद्धता का भाव भी हो । यहाँ युवा कवियों के साथ मिश्रजी की काव्य-संवेदना की तुलना करना हमारा उद्देश्य नहीं है - वस्तुतः दोनों के रचनात्मक सरोकारों में बहुत बड़ा अंतर है । मिश्रजी में जिन्दगी को देखने, परखने का एक विशिष्ट नजरिया है, जो एक लंबी रचनात्मक यात्रा के दौरान अर्जित किया गया है और जिसके

रहते वे आज के युग की तमाम असंगतियों और अंतर्विरोधों को अपने संवेदना तंत्र पर झेलते हुए भी अपनी चेतना पर उनके सतत और तीव्र आघात सहन करते हुए भी उनसे आक्रांत नहीं होते, बल्कि अपने मानवीय विवेक और संतुलन को बनाए रखते है । वे अपनी संवेदना के सहारे एक जीवन द्रष्टि अर्जित करने का प्रयत्न करने लगते है । दिन की चट्टानी संवेदनहीनता और उसकी यांत्रिक जडता को झेलते हुए, वे उसमें कहीं एक फूल को खिलता हुआ देखकर द्रवित हो उठते है और क्षण भर के लिए सारे विषाद और पीड़ा को भूलकर अनुभव करने लगते है कि दिन एक नदी बन गया । वे देखते है कि यहाँ आकर रास्ता खो गया है, लेकिन फिर भी उनकी प्रतीक्षा का अंत नहीं होता –

''मैं पोटली गोद में लिये हुए
उस इमारत के आतंककारी दरवाजे से कुछ दूर
थककर बैठ गया
और बैठा हूँ इस इंतजार में
कि शायद सड़क फिर बाहर निकले ।''[१२१]

वे कांटों के जंगल को देखते है, लेकिन न जाने क्यों उन्हें यह एहसास बना रहता है कि इस जंगल के भीतर कांटों से घिरी एक डरी हुई लता भी है । वे सतत उस लता की खोज में लगे रहते है । इस 'संबोधन' कविता में जैसे कहीं आत्म संबोधन का भी भाव है ।

लेकिन कांटों के जंगल में लता मिल ही जाये यह जरूरी तो नहीं है । हो सकता है कि कांटों की चुभन ही हाथ लगे । लेकिन यह आशंका भी कवि को निराश नहीं करती । 'वह गाँव' कविता में इसी वस्तुस्थिति का निर्देश है –

'उसने कहा था
'वह देखो दीख रहा है ।'
और उसने भी यहीं कहा था
और आज तुमसे पूछ रहा हूँ
तो तुम भी यही कह रहे हो ।
मैं 'समझ गया हूँ कि मैं'
तुम सबसे छला जा रहा हूँ,
फिर भी वह गाँव कहा है
पूछता हुआ
लगातार चला जा रहा हूँ ।''[१२३]

मिश्रजी की यह अन्वेषणशीलता उनकी रचनात्मकता की एक शर्त है । प्रस्तुत संग्रह

की 'खोज' कविता में उन्होंने अपनी अन्वेषणशीलता की कैफियत दी है । वे किसे खोज रहे है, किसका अन्वेषण कर रहे है, इस बात का संकेत कविता नहीं देती । क्योंकि कविता के अंत में दिये गये अपने वक्तव्य में कवि उस वस्तु के स्वरूप और उसके ठिकाने के बारे में अपना अज्ञान प्रकट करता है –

न जाने कहाँ है वह
कैसा है वह
जिसके लिए सुबह-सुबह निकला था ।[१२४]

इस नामहीन खोज को अपनी सुविधा के लिए हम आत्मखोज की संज्ञा दे सकते है । क्योंकि कविता के प्रारंभ की पंक्तियों में खोज की बेचैनी की चर्चा करते हुए कवि ने इस प्रकार का संकेत दिया है कि हम उसकी खोज को आत्म-खोज की संज्ञा दे सकें –

कब तक सहूँगा पीड़ा
एक बड़े सत्य से वंचित होने की ।

अक्सर देखा गया है कि आत्मखोज की बात आते ही कवि पहेलियाँ बुझाने लगता है । लेकिन मिश्रजी की आत्मखोज बड़े सत्य की तलाश – उन्हें किसी रहस्य लोक की ओर नहीं ले जाती । वे अपनी इस खोज में एक ओर हरसिंगार के फूलों की खुशबू में कुछ ऐसे खो जाते है कि रास्ता ही भूल जाते है तो दूसरी ओर भारी गठरी उठाने वाली एक बुढ़िया को रास्ता दिखाने, एक मजदूर की पीड़ा में डूब जाने, एक भटके हुए बच्चे को उसके घर की तलाश कर उसे वहाँ सुरक्षित पहुँचा देने में अपनी आत्मखोज के रास्ते से भटक जाते है । वे फैसला करते है –

अब उसे कल खोजूंगा !
यानी कल भी यह सिलसिला जारी रहेगा ।[१२५]

कवि प्रतीक्षा कर सकता है । मिश्रजी की प्रतीक्षा वस्तुतः मानवीय संभावना की प्रतीक्षा है –

काली रात और सूर्योदय का फासला
उनके लिए नहीं होता
जो रात को उल्लू होते है
और सुबह होते ही कौवे बन जाते है ।
जो प्रतीक्षा करना जानते ही नहीं,
जो एक ही स्वर में
विहाग गाते-गाते भैरवी गाने लगते है

उनके लिए न रात सच होती है
न सूर्योदय
सच होता है अपने भीतर का भूखा अंधेरा
फासला उनके लिए होता है
जो दोनों को अपने खून में जीते है ।[१२६]

यह कम महत्व की बात नहीं है कि उनका लोकराम फुटपाथ पर सोकर भी एक बड़ा-सा सपना देखता है । यह जरूरी नहीं कि सबके स्वप्न पूरे हो ही जाये, कम-से-कम लोकराम का सपना तो नहीं ही पूरा हो पाता है । बेचारे लोकराम को तो सपना देखने के अपराध में गोली मार दी जाती है । लेकिन लोकराम के मरने पर उसके सपने नहीं मरते । अब वे अनेक लोगों की आँखों में पल रहे है । अब उन सपनों को जैसे स्वायत्तता प्राप्त हो गई है -

'वे सपने अब सपने नहीं रहे
वे लोहे की शक्ल में अपने को ढाल रहे है
पहले उन्हें आँखें पालती थी
अब वे आँखों को पाल रहे है ।'[१२७]

'जुलूस कहाँ जा रहा है ?'

रामदरश मिश्र का ''जुलूस कहाँ जा रहा है ?'' नवीनतम काव्य संग्रह है, जिसमें उनकी सन् 1975 से लेकर 88 तक की कविताएँ शामिल है । ज्यादातर कविताएँ सन् 84 के बाद की है यानी 'दिन एक नदी बन गया' नामक संग्रह के बाद की । सन् 1975 से 1983 तक की कुछेक कविताओं की उपस्थिति से इस काव्य संग्रह के काव्यात्मक वजन में कोई असन्तुलन नहीं आता, बल्कि कवि की अपनी प्रतिज्ञाएँ बहुत उभर कर सामने आती है और समकालीनता के प्रति कवि को निरन्तर वयस्क होती हुई सर्जनात्मक संवेदनशीलता का प्रमाण देती है ।

'नदी : एक कविता', 'चट्टान और बिरवा', 'डर', 'हस्ताक्षर', 'हवा से डरने लगा हूँ', 'गीत : दो परिदृश्य', 'माइक धर्म', 'प्रतिमान', 'दंगा', 'धूप : दो कविताएँ', 'औरत', 'चिट्ठियाँ आदि तमाम महत्वपूर्ण कविताएँ सन् 80 से 84 के बीच की है । इन कविताओं में जिन्दगी के तमाम सिलसिले न केवल अपनी पूरी गहराई और फैलाव के साथ खुलते है, बल्कि मशीनी कायदे में ठस्स पड़ी दुनिया को कविता में कविता होने की शर्त पर स्वीकार करने के हठीले प्रयत्न भी दिखाई पड़ते है । इस प्रक्रिया में चीजों का कविता की कवितात्मकता के बाहर पड़ना और अन्ततः कविता के भीतर प्रमाणित होना साफ-साफ देखा जा सकता है -

''नेता जी,
आप इतने परेशान क्यों है
आपको क्या हो गया है ?
क्या बताऊँ बन्धु
रात एक आँधी आयी थी
मेरी जेब से गिर कर
मेरा देश कहीं खो गया है ।''[१२८]

''समकालीनता'' कवि की चिन्ता में किसी प्रकार के अमूर्त के भीतर नहीं तय होती, बल्कि आदमी और उसकी खुली-धुली जिन्दगी के खिलाफ पडती चीजें पूरी तरह से साफ होकर सामने आती है -

''लड़की ससुराल जा रही है
उसे कुछ पता नहीं
क्या पा रही है, क्या खो रही है
वह अपने भविष्य को नहीं जानती
..... कि वह महकते प्यार की बाहों में घिरेगी
या लोभ और नफरत के चक्रव्यूह में
जहाँ कई महारथी
एक साथ दहाड़ेंगे
..... उसके तन-मन पर
तीर लगते रहेंगे
..... छतों पर उसकी आँखों
और आँगन की हवाओं में उसकी साँसों के
जख्मी निशान होंगे ..... ।''[१२९]

रामदरश मिश्र ठप्पेदार प्रतिबद्धताओं की उत्साही घोषणाओं के प्रति आशक्त नहीं है । उन्हें अपने ठहरावों में जहरीली और अमानवीय होती दुनिया की चिन्ता है । ये ठहराव अपने भारीपन के बावजूद उनकी भविष्योमुखता की बाधा नहीं बनने पाते । समय को उसके बुनियादी सरोकारों एवं भीतरी-बाहरी तर्कों के साथ ठीक-ठाक जानने की जिद उनमें लगातार गहराती जाती है । यही कारण है कि 'काफिला' हो या 'चिड़िया', 'औरत' हो या 'जुलूस', 'फिर भी' हो या 'फरवरी' समय की अन्तर्विरोधों में जटिल परते लगातार खुलती जाती है -

''आवारा पशु सींग उठाये

खेतों को रौंदते घूम रहे है
नदियों के पानी में खुद पहाड़
जहर घोल रहे है
और छटपटा कर मर रही है
चिड़ियों और तितलियों की परछाइयाँ ।''[१३०]

कवि लगातार मनुष्य की मासूम दुनिया के लिए उदास है । 'पेड़, तितलियाँ, चिड़ियाँ और नदियाँ' आदि उसकी कविताओं में अपनी निर्दोष रागात्मक चमक के साथ ही शामिल होते है । 'औरत' शीर्षक महत्वपूर्ण कविता बहुत कुछ कवि के निजी अनुभवों के भीतर घटती है, किन्तु अर्थ के स्तर पर फैलती हुई वह अन्ततः एक प्रतिनिधिक विस्तार पा ही लेती है –

''और घूम-फिरकर रसोई घर में
आ जाती हो
दाल का बदकना
चावल का खदकना
बरतनों का खनखनाना
सब्जी का छनछनाना
यानी अन्नपूर्णा का एक सुगन्धित साज
तुम्हारे हाथ से बजता रहता है
और रात का बिखरा हुआ घर
तुम्हारी लय पर सजता रहता है ।''[१३१]

'चिड़ियाँ', 'रोशनी', 'लड़की', 'मशाल', 'हाथ' आदि तमाम कविताओं की विशिष्टता के मूल में कवि का यही कौशल है ।

कवि वहशी रातों, खतरनाक जंगलों और अभिशप्त रास्तों से लगातार लड़ाई के लिए प्रतिबद्ध है । वह साफ देख रहा है कि सुविधा-परस्ती के मोह में पड़े तमाम लीक पर चलने वाले लोगों से हटकर चलनेवाले नई मानवीय दुनिया के लिए बेचैन लोग पागलों में गिने जाते है । इन पागलों की यातना को वह बार-बार लिखता है । यही नहीं बल्कि लीक पर चलने वालों की अभिशप्तता को बहुत गहरे उतर कर महसूस भी करता है । अपनी कविताओं से अपने 'निजी' की जगह बताने के क्रम में कवि किसी छद्म से काम लेता नहीं दिखाई पड़ता । वह साफ लिखता है कि –

''सभ्यताओं की छाँह लादे
किनारे पर चुपचाप खड़ा मैं
ख्यालों में तरता रहा

नंगा होने से डरता रहा ।''[१३२]

कवि का यह 'निजी' भी अर्थ के फैलाव में मध्यमवर्गीय चरित्र की नब्ज पकड़ता है ।

'चिड़ियाँ' में आदमी और आदमी के बीच पनप आई गुमसुम दुरियों की बात करती है । 'रोशनी' सन्नाटे का जंगल काटने की बेचैनी लिखती है । 'अभिनेता' में भविष्य के लिए छटपटाते करोड़ों-करोड़ों लोगों की व्यथा है । कवि खिलना चाहने वाले फूलों, फलना चाहने वाले मौसमों और नीडों की सुरक्षा के प्रति आश्वस्त होकर आकाश में ऊँची उड़ान चाहनेवाले मासूम पक्षियों के लिए छटपटा रहा है । 'पेड़' कविता का पेड़ पूरा देश है ।

'काली आंधियाँ' जंगल के गहरे दर्द से उपजती है । उनकी आक्रमकता का कवि स्वागत करता है, क्योंकि वह दरिन्दा सभ्यता की मृत्यु के लिए जरूरी है । ये आंधियाँ ही इतिहास के खूनी किस्से पलटती है - 'पता नहीं' में कवि लिखता है -

''दोस्तों, बहुत अंधेरा है
ऐसे कब तक चलते रहेंगे ?
धुआँ फेकते हुए
अलग-अलग कब तक जलते रहेंगे ?
आओ, अपनी-अपनी आंच को जोड़कर
एक बड़ी-सी मशाल तो जला लें ।''[१३३]

समय के उलटे बहाव से टकरा रही कविताएँ अनेक बार मानवीय वेदना का गीला हस्ताक्षर बन जाती है । यह वेदना मुश्किल रास्तों पर चलकर समझदार हुई वेदना है ।

'पेड़ जब एक जीवित संगीत हुआ करता था, दस्तकें जब संगीत हुआ करती थी' के साथ-साथ हवाओं का सेतु बांधने वाली फूलों की आवाजों के प्रति, गुनगुनाती-गमकती सुगन्धों के प्रति अपने जुड़ावों को वह जिन्दगी में बार-बार खोज रहा है । इनकी नामौजूदगी उसे मर्माहत कर जाती और वह कहता है -

''यह क्या हुआ समय को ?
भीतर सूखा, ऊपर हरा-हरा सा..... ।'

खूँखार बन्दूकों एवं लपटों सी आँखों वाला तेजाबी समय अपनी खतरनाक हरकतों में दहक रहा है । इस अपरिचित संसार से बार-बार टकराना कवि की मानवीय विवशता है । 'प्रतिमान', 'वे निकल आये है', 'धर्म' और 'नेता' में कुत्सित आड़म्बरों में व्यस्त व्यवस्था पर व्यंग्य है । इन कविताओं की विशिष्टता इनका सादापन है । यह सादापन इनकी रचनात्मक जरूरत है ।

'माँ के वास्ते' में साम्प्रदायिक जहर से जहरीले हुए समय की चिंता है । इस

कविता की खासियत इसकी मार्मिकता है । 'गाँव की धरती' में कवि जिन्दगी को उलटे-पुलटे तर्क के साथ जीने वालों की नासमझी पर तरस खा रहा है । 'सौन्दर्य बोध' में पूंजीवादी सौन्दर्यबोध को कवि साफ-साफ नकार रहा है । 'हस्ताक्षर' में जिन्दगी की धारदार हठीली संघर्ष मुद्रा उभरती है । कवि बदलाव के लिए सतत जारी प्रयत्नों के प्रति विश्वस्त है और लिखता है -

''आओ,
इस तट पर फिर हस्ताक्षर कर दें
मालूम है कि इन्हें लहरें फिर बहा ले जायेंगी
लेकिन हम फिर करेंगे हस्ताक्षर
और एक दिन देखेंगे कि
लहरों में बेचैनी छाई है
उनका पेट फाड़ कर
उनके माथे पर
हमारे हस्ताक्षरों की जलती पंक्ति उग आयी है ।''

यह कविता ठहरे हुए निस्पन्द समय के खिलाफ है ।[१३४]

ये कविताएँ जिन्दगी और उसकी तमाम जटिलताओं, विविधताओं से आत्मीय जुड़ाव की जमीन पर खड़ी होती है । अनात्मीयता का कोई भी तर्क किसी भी शर्त पर कवि को स्वीकार नहीं है । इस द्रष्टि से ये कविताएँ कविता होने से भी ज्यादा जिन्दगी की तमाम खुली और उलझी मुद्राओं से कवि के जरूरी संवाद है, मानवीय बेचैनी से रूप लेते वे संवाद, जिनसे मनुष्यता को पाँव रखने की जगह मिलती है । कविता में ढले जातीय संस्कार उनकी कविताओं को एक खास तरह का व्यक्तित्व देते है, वह विशेष स्पर्श भी जिनसे कविताओं को पाठकीय निकटता प्राप्त होती है । अपनी संवेदनात्मक परिपक्वता के नाते से अर्जित जिन्दगी के भीतरी परिचय की जमीन पर जीवन रस से सींची हुई ये कविताएँ अपने बल पर खड़ी होती है, कहीं भी उन्हें सामने वाले झाड़-झंखाड़ उगाने का खतरा कवि नहीं लेता ।

कवि की राजनीतिक कविताएँ भी उस खास मुहावरे को अस्वीकार करती है, जिसमें कविता, कविता होने से ज्यादा एक नारा या राजनीतिक दलों का स्लोगन लगा करती है । धर्म, राजनीति, नौकरशाही, व्यक्ति, समाज आदि सबको वह इसी सच्चाई के नाते से पहचानता है । अपनी सर्जनात्मक गुणात्मकता में इन कविताओं का अपना निश्चित व्यक्तित्व है । अपनी इस विशिष्टता में ये कविताएँ जितनी युग सापेक्ष है, अपने अभिप्राय पूर्ण विस्तार में उतनी ही युग निरपेक्ष भी ।

संग्रह को शीर्षक देनेवाली ''जुलूस'' कविता समकालीन यथार्थ के बहुस्तरीय

जटिल अन्तर्विरोधग्रस्त यथार्थ को ठीक-ठीक बतानेवाली समझदार कविता है, जिसकी प्रश्नाकुलता में घनी मानवीय अन्तर्वेदना का रचाव है -

''हाँ, जुलूस जा रहा है
रास्तों को रौंदता
फसलों को कुचलता
घरों को तोड़ता-फोड़ता
रथों पर बैठे है ऊँचे लोग
और लाखों फटेहाल लोग
रथ खींच रहे है
जिन्हें नहीं मालूम कि
यह जुलूस कहाँ जा रहा है ।''[१३५]

गहरे मानवीय अनुभव और चेतना का काव्य :

रामदरश मिश्र की काव्ययात्रा का प्रारंभ एक गीतकार के रूप में होता है । मिश्रजी ने गीतों की रचना उस समय की जब कविता के क्षेत्र में अनेक प्रयोग हो रहे थे तथा दूसरा सप्तक के प्रकाशन से नयी कविता स्थापित हो चुकी थी । 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' में रामदरश की कविता का विकास गीतकार तथा कवि के आपसी टकराव और संघर्ष के रूप में हुआ ।

प्रयोगशील कविता के आन्दोलन के साथ ही कविता गाँवों से कटकर नगर की जिन्दगी की चार दीवारी में सीमित हो गई । महानगरीय बोध कविता का मुख्य स्वर बन गया -

एक लावारिस लाश पड़ी है
जिसकी अगल-बगल से
सफेद संस्कृति की धाराएँ बह जाती है कतरा कर ।''[१३६]

('पक गयी है धूप')

मिश्रजी की कविता में व्यक्त ग्राम्य चेतना गाँव और परिवार के साथ बनते-बिगड़ते सम्बन्धों की संवेदनशील पहचान सबको अपने में समेटने, सबके साथ जुड़ने और सब में समाहित होने की इच्छा आदि को आधुनिक-बोध के अनुकूल नहीं माना जा सकता, क्योंकि आधुनिक-बोध कुंठा, संत्रास, तनाव, अकेलापन और पीड़ा की बात करता है । फिर भी मिश्रजी की कविता परम्परावादी नहीं है, क्योंकि वे आधुनिकता को नकारते नहीं है ।

रामदरश मिश्र की कविता का मूल स्वर लय है । तीव्र आवेग को व्यक्त करने के लिए ही व्यक्ति गीत गाता है । 'पथ के गीत' में सुन्दर गीतों की रचना हुई है । 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' के उत्तरार्ध में भी गीतों का बाहुल्य है, जिनमें रूबाइयों और हिन्दी गज़ल के प्रभावाधीन भी कुछ गीत है ।

मिश्रजी सामाजिक और लोक सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति के लिए गीत को माध्यम बनाते है । गाँव और शहर दोनों की परिवेशगत अनुभूतियों का चित्रण गीतों में हुआ है । इनके गीतों में संवेदनात्मक ताजगी है, गतिशील समय का तीखा बोध, नितान्त अकेलेपन की गहरी अनुभूति, सन्नाटा और तनहाइयाँ, रिक्तता, सूनापन, ऊब, थकान और कभी-कभी उल्लास की अभिव्यक्ति है । इनके गीतों में अनुभूति की सच्चाई है, जो गीत की एक आवश्यक शर्त है ।

'पथ के गीत' कविता संग्रह में जीवन की विसंगतियों, आर्थिक विषमताओं, शोषण और दमन का वर्णन है । संगीतात्मकता लिरिक की मूल संवेदना, जीवन से सीधा साक्षात्कार इस संग्रह के सहज आकर्षण है । 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' कविता संग्रह में जीवन के यथार्थ को उजागर करने का प्रयास उनके गीतों तथा कविताओं में हुआ है । गीत लिखने की मनःस्थिति से कविता लिखने की मनःस्थिति की यात्रा इस संग्रह की मुख्य विशेषता है । कवि अपनी ज्ञानात्मक संवेदना के सहारे अपने अनुभव को विस्तार देता है । यथार्थ का साक्षात्कार यहाँ आत्म-साक्षात्कार में बदल गया है ।[१३७]

'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' :

मिश्रजी की कविताओं में एक विशेष संस्कार है । केदारनाथ को छोड़कर 'तीसरा सप्तक' के अन्य किसी कवि में यह संस्कार दुर्लभ है । जिस किसी ने उनकी कविताएँ ऐतिहासिक क्रम में पढ़ी होगी, उसे यह संकेत मिला होगा । 'पथ के गीत' से लेकर 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' तक विचारणीय अन्तराल है । इस बीच उत्पन्न अनेक विचार प्रवाहों को आत्मसात करके भी मिश्रजी ने अपने आदि प्रेरणा स्त्रोत को संजीवित रखा और नयी काव्य संभावनाएँ प्रस्तुत की - यह महत्वपूर्ण उपलब्धि है । 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' इस बात का प्रसन्न-प्रसंग है कि यह कवि एक विशेष संस्कार विकसित करने हेतु निरन्तर कितना सचेत और सप्राण रहा । इसी संदर्भ में त्रिलोचन के साथ शमशेर और 'अज्ञेय' आदि के नाम भी उल्लेखनीय है, जो साहित्य जी कर व्यक्तित्व रचते है । पूर्ववर्ती काव्य में ऐसा विशिष्ट व्यक्तित्व महाकवि निराला है ।

एक युग था, जब प्रगीतात्मक कविताओं के नाम पर बहुत ही अरूचिपूर्ण और अनुकृत्यात्मक रचनाओं का जयघोष सुनाई पड़ता था । उसी समय इस कवि ने अपने सर्जन को, एक नयी भाव-भूमि तोड़ ली थी । नयी कविता में जिस महत्वपूर्ण मूल्य का अभाव बराबर महसूस किया जाता रहा है, उसकी पूर्ति इस 'गीत' ने की है ।[१३८]

'पथ के गीत' का प्रकाशन इस बात का प्रमाण था कि मिश्रजी की सामाजिक और लोक-सांस्कृतिक चेतना की सहज प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति को गीत-माध्यम कितना उपयुक्त और सक्षम है । नए काव्यान्दोलन के उड़ते प्रवाह में उनके अन्य समवयस्क और समसामयिक कवियों ने इस चेतना को आत्मसात करने के लिए अपनी मूल संवेदना के विरूद्ध सजग प्रयास किए । जिस काव्य माध्यम से उन्होंने अपना सृजन आरम्भ किया, उसके साथ, उसकी आदि प्रेरणा को ही बदल दिया । इस स्थान पर रामदरशजी की प्रस्तुत कविताओं से लगता है कि यह कवि निरंतर विविध वैचारिक संघर्षों को झेलता उसी गीत-माध्यम को अधिक सशक्त, व्यापक और विकसित करने के लिए कितना सहज संकल्पित रहा ।

इन कविताओं में संस्कार की इसी विशिष्टता को समझने का एक स्तर और भी है । 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' में संकलित कविताओं को आद्योपान्त पढ़ने पर पाठक के मन में एक जनपदीय लोक-संस्कृति का बहुत ही स्वस्थ और आकर्षक रूप उभरता है । इस काव्योपलब्धि का घना सम्बन्ध कवि की मनःचेतना से है । कवि की मनःचेतना में सुरक्षित प्रभाव-शक्ति उसके सृजन को अन्त तक उत्प्रेरित करती है ।[१३९]

मिश्रजी की काव्यचेतना को मोटे तौर पर वर्गों में बाँट कर विश्लेषित किया जा सकता है ।

१) वैयक्तिक सुख-दुःख की चेतना -

२) सामाजिक सरोकार -

३) राजनीति का अमानवीय रूप और उसका विरोध -

४) प्रकृति चित्र, विशेषतः गाँव के जीवन से जुड़े हुए चित्र -

उपर्युक्त तीन वर्गों सामाजिक सरोकार, राजनीति का अमानवीय रूप और प्रकृति चित्र का उल्लेख पहले ही कर दिया है । बाकी रहा वैयक्तिक सुख-दुःख की चेतना जो निम्नलिखित है -

वैयक्तिक सुख-दुःख की चेतना :

व्यक्ति के मन में कविता का स्फुरण प्रायः निजी सुख-दुःख के क्षणों से जुड़कर होता है । कवि के अपने व्यक्तिगत अनुभव ही कविता के सृजन की मनोभूमि तैयार करते है । यह बात अन्य कवियों के साथ-साथ मिश्रजी पर भी लागू होती है । उनकी विविध चेतनायुक्त कविताओं के मध्य वैयक्तिक सुख-दुःख की चेतना भी झांक जाती है । उनके प्रारंभिक गीतों में यह अधिक मात्रा में प्राप्त होती है और शनेः शनेः कम होती चली जाती है, तो सामाजिक सरोकारों मे अपने आप को घुला-मिला लेती है ।

अपनी तैंतीसवी वर्षगांठ पर मिश्रजी को महसूस होता है - लगता है । अब भी

मैं बच्चा हूँ । अपने गँवई गरीब मित्रों से खेल रहा । तीसी सरसों के फूले वन में डूब रहा, सड़कों पर कुत्तों के संग लोट रहा । भागता मदरसे से छिप-छिपकर, भूख से तड़पते चेहरे अब भी ताजे है । आज भी मरे हुए मित्र सपनों में आते है । अपने बचपन में लौट-लौट जाना तथा उसकी सच्चाइयों को इतनी बेवाकी से कविता में अभिव्यक्त कर देना, मिश्रजी के सरल मन की सरस शक्ति है । उसके मन में अपने मित्र, परिवार, सगे-संबंधियों के प्रति असीम लगाव है, जो उनकी कविताओं में लौट-लौट कर आता है । गाँव के गरीब वातावरण में, उन्मुक्त रूप से खिले-खिले बचपन का यह चित्र कभी भी उनके मन से तिरोहित नहीं होता । एक दर्द बनकर सदा उनके साथ लगा रहता है । लेकिन उनका स्वाभिमान इसकी इजाजत नहीं देता कि इस दर्द को कोई बिना उनकी अनुमति के देखे, महसूस करे या बाँटे । इस दर्द को बांटने के लिए जो अपनापन चाहिए, वह किसी में हो तो आए अन्यथा याद रखे कि - **''मेरा अकेलापन यहाँ का दर्द मेरा है । भला क्यों दूसरा देखें, मेरे दर्द के झांके हिमानी ये, किसी को क्यों व्यथा जाए ।''** गाँव के गँवई मिलनसारिता के उत्सव तथा शहर के अकेलेपन के दर्द की यह तुलना दो मनःस्थितियों भर को मात्र आमने-सामने रख देना नहीं है, अपितु दो मानसिकताओं के अन्तर को भी स्पष्ट करने का सफल प्रयत्न है । गाँव की जिन्दगी में व्यक्ति का सुख-दुःख केवल उसका अपना न रहकर सबका हो जाता है, जबकि शहर में वह नितांत अकेलेपन में सिमट कर जीने के लिए बाध्य हो जाता है ।

प्रेम के आर्द्र क्षणों को भी इन कविताओं में बहुत शिदत के साथ महसूस किया जा सकता है । बहुत पहले का छपा हुआ प्रेम का क्षण भूले नहीं भूलता, भले ही समय की परत कितनी ही उसे ढंकने की कोशिश करें - **''हां यह मकान बढ़कर....., तिमंजिला-चौमंजिला हो गया । इसकी सीमेंट सूखकर कडी हो गई..... ।''** यह किशोरावस्था का प्रेम है, जो प्रौढ़ावस्था में भी बार-बार मनस्पटल पर उभर-उभर कर आता है ।[१४०]

वस्तुतः मिश्रजी का व्यक्तित्व गाँव और शहर की तुलना में बंटा हुआ है । गाँव का व्यक्तित्व उनका अपना निजी व्यक्तित्व है, जबकि शहरी मान्यताओं के साथ वे इसका तालमेल नहीं बिठा पाते । इसलिए जब-जब उनकी वैयक्तिक काव्य-चेतना की बात चलती है, तब-तब अक्सर वे शहर से गाँव की ओर लौटते हुए नजर आते है । उनकी नजर में ग्रामीण जीवन में अधिक अपनापन, सहानुभूति, ममत्व और निजता है, जबकि शहरी जीवन में शुष्कता, अलगाव और स्वार्थपरता का आधिक्य है । इसीलिए जब वे ग्रामीण व्यक्ति को शहर की ओर भागता हुआ देखते है, तो एक वेदना का अनुभव करते है - **''मैं आज पच्चीस साल बाद बड़े गर्व से फिर गाँव लौट रहा हूँ । किन्तु यह क्या ? पसीना पोंछती हुई एक विराट भीड़ । शहर की ओर मुँह करके**

खड़ी है ।'' यह बाढ़, अकाल और सूखे का कम ही लोगों को शहर की ओर भागने के लिए बाध्य करता है और शहर के हाथों बार-बार लुटकर भी गाँव का जीवन वैसे-का-वैसे ही रहता है । इसलिए शहर में किसी असहाय वृद्धा की ममताभरी आँखों में वे 'माँ' की छवि देखते है, तो कभी अपने गाँव में रहने वाले संबंधियों के लिए पत्र लिखवाने को आतुर किसी अनपढ़ व्यक्ति में 'गँवई भाई' की छवि निहारते है ।[१४१]

सहज सौन्दर्य और यथार्थ का द्वन्द्व :

काव्य के वर्ण्य विषय की चर्चा करते हुए भारतीय काव्यशास्त्र में प्रकृति को महत्वपूर्ण स्थान दिया है । किन्तु प्रकृति हमारी आज की कविता का महत्वपूर्ण विषय नहीं हो सकती और यह भी सच है कि प्रकृति का सौन्दर्य विकसित सभ्यता मूलक समाज में अपने भिन्न अर्थ और छवि में ग्रहीत होता है । पर इसके साथ यह भी घ्यातव्य है कि विकृत सामाजिक स्थिति में, राजनीतिक भ्रष्ट व्यापार में, अर्थगत धांधली में..... जब भी कभी शब्द को अपने अस्तित्व की पहचान के लिए आगे आना पड़ा है, उसने प्रकृति का आश्रय लिया है ।

रामदरश मिश्रजी की कविता में सौन्दर्य-सृष्टि और उससे यथार्थ के द्वन्द्व को स्पष्ट करना है । क्योंकि एक रचनाकार के भीतरी संसार का पूरा या अधिकाधिक विश्लेषण उसकी सौन्दर्य-भावना, बोध को समझे बिना नहीं हो सकता । और यह भी कि यथार्थ को जब रचता है तब उसकी सृष्टि में आया आरोह-अवरोह कैसे उसके शब्द-शब्द के अर्थ को तरंगित करता है -

आज के रचनाकार का सौन्दर्य-बोध यथार्थ और काम्य 'स्वप्न' के बीच है । प्रकृति और पुरूष के बीच । सत्य और सुन्दर के बीच..... पुनः शिव और सुन्दर के बीच..... वैसे हम जानते है कि प्रकृति और पुरूष के महत्व की सुर-लहरी खंड़ित होती अनुभव होती है ।[१४२]

तब फिर क्या आवश्यक है कि हम कवि की अनुभूति को सौन्दर्य बोध की कसौटी पर ही विश्लेषित करें ?

जीवन के अभाव में साहित्य हो ही नहीं सकता और हमें सौन्दर्य और यथार्थ के द्वन्द्व को मिश्रजी की कविता के सन्दर्भ में समझना है, तो यह पहले ही मानना होगा कि भौतिक विकास ही 'डाइलेक्टिक्स' द्वन्द्वात्मक नहीं है, भावात्मक विकास भी द्वन्द्वात्मक है और यही साहित्य को एक व्यापक आयाम देता है ।

बंद कमरों में बैठकर
कब तक प्रतीक्षा करोगे बसन्त की ?
सुनो,

बसन्त लोहे के बन्द दरवाजों पर हांक नहीं देता

बाहर निकलो
देखो,
बन्द दिशाओं को तोड़ती
धूल भरी हवाएँ बह रही है
उदास लय में झरते चले जा रहे है पत्ते.....
आकाश में लदा हुआ लम्बा-सा सन्नाटा
चट्टान की तरह यहाँ वहाँ दरक रहा है

तुम्हें पता नहीं
बाहर तो बसन्त आ चुका है । (कंधे पर सूरज)[१४३]

इस कविता के इन तीनों उदाहरणों में मिश्रजी की सौन्दर्यगत धारणा विश्लेषित की जा सकती है, जो यथार्थ के द्वन्द्व से संपोषित है ।

पहले चरण में सौन्दर्य चेतना को नितान्त आत्मगतता के विरूद्ध व्यक्त किया गया है । यदि आत्म को पूरी तरह समृद्ध करना है, तो लोहे के द्वार खुले रखने होंगे । एक बारगी ही कवि अपने 'पन' को लचीला होने की वकालत करता है । फिर वह आत्म बाहर आता है, तो खुला यथार्थ उसके सामने है - दिशाओं को तोड़ती बहती हवा, आकाश में लटका सन्नाटा - उस यथार्थ की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति है, जिसमें 'आत्म' का अस्तित्व रहता है या नहीं रहता ।

वस्तुतः यथार्थ को लेकर यथार्थ तक चलने की परम्परा का अतिक्रमण प्रत्येक रचनाकार ने किया है । वह मूलतः अपने समय के सन्दर्भ में प्रगतिशील होता है । काव्यानुभव की यह क्रूरता भी कलागत सौन्दर्य पंखों पर उतरती है, पंखों से उतरती है और इसका अनुभव विचित्र होता है । तभी तो जब काव्य नायक कोयल से कहता है कि तुम सुनो - मैंने कहा - **''अच्छा सुनो मैं ही गाता हूँ । उसने सहमी निगाहों से चारो ओर देखा और एकाएक उड़ गयी..... ।** कोयल का यह उड़ना अपने सौन्दर्य अनुभव को बोध के स्तर पर न पहचान पाने और अनास्वादित रहने की यथार्थ स्थिति का संकेत करता है, क्योंकि समय ऐसा है कि -

क्या हुआ
कि हवा एक आयी
जल इतना काँपा, मचला उत्तराया
अस्त व्यस्त टूट गयी
पानी में ठहरी अपनी छाया

देखा जो आँख उठा आगे
सब अनचीन्हा, अनजाना,
लगा - हमें तट पर बैठे-बैठे
बीत गई सदी ('कंधे पर सूरज')[१४४]

एक ओर बैठे-बैठे सदी के बीत जाने की गतिहीनता दूसरी ओर गतिहीनता का सर्वथा निषेध करती मानवीय सौंदर्य चेतना । किन्तु यहाँ यथार्थ का उसके अपने विशिष्ट अर्थों में स्वीकार है, जो फिर बाद में रचनाकार को अभिप्रेत रूपांतरण की ओर ले जाता है ।

'पक गयी है धूप' कविता संग्रह में उनकी एक कविता है - 'केन्द्र और परिधि' उर्फ बड़ी-छोटी मछलियाँ ।'' कविता अपने आशय में अत्यंत महत्वपूर्ण है । वे देखते है और अनुभव करते है कि -

एक गहरी नीली झील
मछलियाँ ही मछलियाँ
केन्द्र में सतह के नीचे
बड़ी बड़ी मछलियाँ आपस में लड़ती रहती है
छोटी मछलियों के लिए
कभी कभी लड़ते-लड़ते जोर से
ऊपर को जाती है ।
परिणाम यह होता है कि -
आवर्त की रेखाएँ कसमसा रही है
और केन्द्र की बड़ी बड़ी मछलियाँ
भय से चिल्ला रही है -
'शांत रहो बदतमीजों'
आवर्त पैदा करना
हम मछलियों का धर्म नहीं होता.....

जैसे कवि नीली झील के एक केन्द्रीय सतह के रूप में सत्ता के 'स्टील सेंटर' की परिकल्पना करता है । सत्ता के इस पक्ष और 'पर' पक्ष में हो रहा संघर्ष इस कविता की मूल सौन्दर्य चेतना है और उसके काव्यानुभवी विस्तार में जीवन का गहरा छलपूर्ण व्यवहार स्पष्ट होता है कि ऊपर से स्वच्छ लगने वाली जल की सतह भीतर से सड़ी गंध से भरी है ।

'पक गई है धूप' - में 'मेरा आकाश', 'भाग्यशाली', 'और एक दिन', 'समय देवता', 'गाड़ी जा रही है', '**कंधे पर सूरज**', 'बसन्त', 'बाहर तो वसन्त आ गया

है', 'बहती रही नदी', 'छुट्टीयों के दिन', 'लौट आया हूँ मेरे देश' तथा '**जुलूस कहाँ जा रहा है ?**' - 'मैं औरत', 'फिर भी', 'फरवरी', 'नदी', 'लड़की' - ऐसी कविताएँ है - जिनमें रचनाकार की सौंदर्यानुभूति यथार्थ का निषेध नहीं करती, उसका अतिक्रमण करती है ।

''क्षणे क्षणे यन्नवता भूपैति तदैव रूपं रमणीयताया'' के अनुसार सौन्दर्य परिवर्तनीय है और इसकी अभिव्यक्ति कविता में सामयिक जीवन की बदलती स्थिति से होती है - ''समय देवता'' कविता में परिवर्तन का स्वरूप अपने आप में जीवन की गति से जुड़ता है । समय बहुरूपी संत है -

'बहुरूपी सन्त,
तब तुम राजाओं के दरबार में
ताम-झाम लगाते थे
रेशम की पगड़ी बांधते थे - वजीरे आजम थे न ।
आज नई सत्ताओं के पुरोहित हो
श्वेत वस्त्र पहने हुए'[१४५]

और इस समय देवता से काव्य नायक का टकराव होता है तो वह उसे बताता है कि उसके लिए कोई खतरा नहीं - पर परिवर्तन का खतरा उनको है, जो पूजा घरों के बन्द तहखानों में व्यक्तिगत का पट्टा लगते है ।

इस द्रष्टि से रामदरश मिश्र का सौन्दर्य अनुभव मूलतः जीवन के सकारात्मक पक्ष को ही व्यक्त करता है और इसका कारण यह है कि वे भारतीय चिंतन परम्परा के आनंद की प्रतिष्ठा को यत्किंचित परिवर्तन से स्वीकार करते है । इसीलिए उनकी सारी यथार्थ परक अनुभूति सर्जना के सकार में निष्क्रांत हुई है ।

वर्तमान जीवन की बडी त्रासदियों के बीच सौन्दर्य के आत्मग्रस्वरूप की प्रासंगिकता कितनी है ? इसका एकमात्र उत्तर है - भारतीय चिंतन की कालचक्र की अनिवार्यता वाला सिद्धांत कि यह त्रासद वातावरण भी कालचक्र की अनिवार्यता है, अतः अस्थायी है ।

अब हमारे साथ
न धरती है, न आकाश है
न हवा है, न आग है, न पानी है
फिर भी हम जिन्दा है
न जाने किसकी मेहरबानी है

इस 'न जाने किसकी' में ही सौन्दर्य के सारे तार सुरक्षित है, जिन पर अंतरंग समृद्धि का संगीत जन्म लेता है । और यही सिद्ध करता है कि सम्पूर्ण त्रासद व्यवहार

के बावजूद जीवन की गति की लय किसी न किसी रूप में सुरक्षित है और वह रहेगी ।

अतः मिश्रजी की सौन्दर्य भावना अपने समग्र रूप में नकार से स्वीकार की तरंगों पर व्याप्त होती है । वे बाहरी पूर्णता को भ्रम मानते है और उनके लिए आन्तरिक सत्य ही सत्य है, यह चाहे टूटने का सत्य हो या बनने का, खोने का सच हो या पाने का –

सच तो
अपने ही भीतर की आंच से
तेरे निरंतर टूटते रहने का कम है
ओ चांद ।
आज क्यों लगता है
कि तू चांद नहीं, मेरा आईना है ? ('कंधे पर सूरज')

और इस बोध की लम्बी चलनेवाली सर्जना– जब चांद को अतिक्रमित कर महासागर के समीप व्याप्त होती है तो एक दूसरा विराट भाव सौंदर्य व्यक्त होता है –

धीरे धीरे समुद्र में से
सूर्य का अरूणाभ ताजा चेहरा उभरा
और हँसता हुआ समूचा सूर्य
समुद्र में से निकल आया ।

यह समूचा निकलना... एक अनुभव से दूसरे अनुभव की सृष्टि है, जो एक परम सत्य का साक्षात्कार कराती है – 'सूर्य तो महा प्रकाश है, उसे कौन निगल सकता है ।'

– हमारे विचार में जिस रचना धर्म में अनुभव से अनुभव की सृष्टि होती है, उसमें कोई भी वर्ण्य विषय केन्द्र में रहे, वहाँ 'सहज सौंदर्य और यथार्थ का द्वन्द्व' काव्यानुभव के सामंजस्य में व्यक्त होता है –

'और सौन्दर्य औचित्यपूर्ण सामंजस्य का ही दूसरा रूप है ।'

मिश्रजी की कविता यात्रा में उनके द्वारा यथार्थ की संलग्नता के साथ सौन्दर्य के औचित्यपूर्ण सामंजस्य को रचने की बेचैनी में ही उनका सौंदर्य अनुभव व्याप्त होता हुआ अनुभव होता है ।[१४६]

समकालीन यथार्थ की संश्लिष्ट पहचान :

'जुलूस कहाँ जा रहा है ?' :

मिश्रजी ने जिस 'लोक' की 'नियति' को रेखांकित किया है, उसकी परिधि बहुत

व्यापक है । उसमें सभ्य काफिले से पीछे छुट गए कथित पागल है –

पुकारो
एक बार फिर पुकारो
हो सकता है
तुम्हारी ही तरह कोई और पागल
पीछे छूट गया हो सभ्य काफिले से
और रौंदे गये खेतों को आँसुओं से खींच रहा हो
धीरे-धीरे घायल रास्तों के शरीर में
गड़ी बूटों की कीलें खींच रहा हो
पुकारो
फिर पुकारो
ताकि छूटे हुए पागलों का भी
एक काफिला बन जाय । **('काफिला')**[१४७]

खुद को अंधेरे में रखकर जिन्दगी भर रोशनी की मूर्ति गढ रही गृहिणी है –

सर्दी हो या बरसात
सोते हुए
या उनींदी बीती हो रात **('औरत')**

गुमसुम कछार और झरते अकाल के साये से बचने की कोशिश में लगे चौपाए सरीखे लोग है – 'हम पूरब से आये है' और ऊँचे लोगों के रथ को खींच रहे लाखों फटेहाल लोग उस 'लोक' के पर्याय है । स्पष्ट है कि देश का अधिसंख्यक, दुःख-दग्ध, उत्पीड़ित-शोषित जनसमुदाय वह लोक है, जिसके प्रति कवि की संपृकित और पक्षधरता पर्याप्त सचेत और संवेदनात्मक है, जिनके लिए 'समय नाम हो गया है एक खूँखार दहशत का' उनकी दुर्दशा के उत्तरदायी तत्त्वों की शिनाख्त इन कविताओं की लोक चेतना का महत्वपूर्ण हिस्सा है । 'बरसात गई' शीर्षक रचना में कवि ने प्रश्न किया है कि क्यों धरती प्यास से जलती रही और कौन ऊपर ही ऊपर सारा पानी पी गया ? इसी रचना में काले धन की समृद्धि को भोग रहे वर्ग-विशेष को आज के वैषम्य के लिए दोषी ठहराया गया है –

बिन बरसे बरसात गयी
आये, गये, गये औ आये
छूछे धन भरमे भरमाये
पथ अगोरते अँखियाँ जागी
बिन सपनों के रात गयी

मिहनत के संग गाते-रोते
हम तो रहे नरक में सोते
काला सुख बटोर कर ऊपर
एक सफेद जमात गयी

'जुलूस' कविता में इसी वर्ग का परिचय -

'जिनकी जिन्दगी बीत रही है
माया की सेज पर लेटे-लेटे
खेतों, कारखानों में व्यस्त खुरदरे हाथ
थोडा रूकते है
और उनमें झंड़े दिये जाते है
जुलूस आ रहा है'[१४९]

कहकर दिया गया है । इन्हें नकारते हुए कवि की पक्षधरता 'खेतों, कारखानों' में व्यस्त खुरदरे हाथों के प्रति व्यक्त हुई है । इँट, लोहा, सीमेंट और गारा लिए हाथ कवि की लेखनी में समाते चले गए है । कवि की संवेदना और पक्षधरता देश की सीमाओं तक सीमित न रहकर काले अफ्रीकियों के स्वाधीनता, संघर्ष से भी जुड़ती है ।

'काली आँधियाँ' में -

'देखो तो कैसी काली-काली आँधियाँ उठ रही है
काले-काले घने जंगलों से
ये आँधियाँ
मौसमी आँधियाँ नहीं है
ये जंगल के गहरे दर्द से उपजी
जिन्दगी की आँधियाँ है
जो एक बार उठती है
तो थमती नहीं'[१५०]

जिन्दगी की उन आँधियों का उल्लेख है, जो एक बार उठकर फिर तब तक नहीं थमती, जब तक इतिहास के रक्तिम पृष्ठ पलट नहीं जाते । शोषक और आततायी वर्ग कभी 'धर्म' तो कभी 'विज्ञान' का सहारा लेकर इन आँधियों को खत्म करने की कोशिश करता है । कवि ने विज्ञान के संहारक रूप खूनी धर्म और कुटिल राजनीति के गँठजोड़ को संपूर्ण मानवता के लिए संकट के रूप में आँका है । ऐसे कुछ स्थलों पर मिश्रजी की कविता 'विश्व कविता' के मुहावरे का आभास देती है, जिसमें देश-विशेष, अंचल-विशेष या लोक-विशेष के संदर्भों और सवालों का अतिक्रमण करते हुए मानव मात्र के अस्तित्व संघर्ष को उभारा गया है -

विज्ञान परमाणु बम सजा रहा है
और धर्म संप्रदाय का ईन्द्रजाल

राजनीति मुसकराकर
कभी उसे देखती है कभी उसे
और सहमा हुआ आदमी
राजनीति की हँसी देख रहा है
हाँ, नयी शताब्दी के आने में अब देर नहीं है ।

लेकिन मिश्रजी की कविताओं का 'आदमी' समांतर कहानी के आम आदमी की तरह निरूपाय और हतोत्साहित नहीं है । फटेहाल होने के बावजूद उसमें विद्रोह की आँच सुलग रही है । अतः 'एक नंगे आदमी की तनी आँखें' देख जन्मी हुई दहशत, ऊँचे स्वर्गकलश को पत्थर मारने की इच्छा और डरी हुई आँखों में एक मुट्ठी विश्वास की उपस्थिति कल्पना की वस्तु नहीं रह जाती । 'चट्टान और बिरवा' तथा 'हस्ताक्षर' आदि लघु कविताएँ प्रतिकूल परिस्थितियों में जिजीविषा और विद्रोह-चेतना की विजय की द्योतक है -

तुम भले ही सत्य मान कर
इस विराट और निस्पन्द चट्टान को
देखते रहो
मैं मुग्ध होकर
उस बिरवे को देख रहा हूँ
जो आज न जाने कहाँ से
इस चट्टान पर उग आया
और तन कर खड़ा हो गया..... ('चट्टान और बिरवा')

बिरवे का चट्टान पर उग आना और लहरों के माथे पर हस्ताक्षरों की जलती पंक्ति का उभरना अपने प्रतीकार्थ में यथास्थिति से परिवर्तन की ओर संक्रमण का बोध सहज ढंग से कराते है ।

लेकिन कवि इस सत्य से अवगत है कि विद्रोह भाव अभी असंगठित और बिखरा हुआ है । 'पता नहीं' कविता में उसने प्रश्न किया है कि अकेली लडाई हम कब तक लड़ते रहेंगे ? उसका यह आह्वान काल्पनिक प्रस्ताव न होकर यथार्थ की मांग है -

आत्मा के शब्दों से कविता लिखने की कोशिश :

'आग कुछ नहीं बोलती ?' :

रामदरश मिश्र के कविता संग्रह 'आग कुछ नहीं बोलती' में 'कविता' को लेकर तीन महत्वपूर्ण कथन है । 'पेड़' कविता में कहा गया हैं -

जब जलती हुई आँधी आती है

तब सभी मिलकर उसके खिलाफ तन जाते है
और क्रोध से बजने लगते है
जब मस्त बरसाती हवा लहराती है
तब सभी एक लय में तरंगित होते हुए,
एक-दूसरे में समा जाते है

.....

तुम क्या कभी इन पेड़ों को देखते हो
यह सब कुछ देखते हुए ?
मैं देखता हूँ
और लगता है
जब तक इन्हें देखता रहुँगा
मेरी कविता बची रहेगी । ('पेड़')

'कुर्ते' कविता में ऊपरी चमक-दमक वाली किंतु जीवन-संघर्ष से कटी कविता को खारिज किया गया है और 'शब्द' कविता में' कवि का बयान है -

अपनी कुर्सी मजबूत करते हुए मुस्करा रहे हो
राजनीति, धर्म, संप्रदाय, जाति, क्षेत्र,
शब्द, तुम्हारे कितने रंग है
हम कब से देख रहे हैं यह खेल
लेकिन कुछ कर नहीं सकते
केवल कविता लिख सकते है
कविता जो आत्मा के शब्दों से लिखी जाती है
और कविता
न तुम पढते हो, न वे, न वे..... । ('शब्द')[१५३]

पहला कथन पर्यावरण और कविता के अंतर्संबंध की गवाही देता है, दूसरे कथन में आँसू, पसीने और संघर्ष जैसे जीवनानुभवों से संबंधित कविता की प्रासंगिकता वर्णित है । प्रकृति-राग मिश्रजी की कविताओं का प्रेरक-प्रभावक तत्त्व शुरू से रहा है । इस संग्रह की 'वसंताभास', 'फूल कितना बोलते है', 'जवाब', 'दिन', 'पेड़', 'गुलमुहर' और वसंत संबंधी आठ कविताएँ केवल प्रकृति के प्रति कवि के लगाव और चिन्ता की द्योतक न होकर अपनी जड़ो से जुड़ी रहने की कोशिश को भी दर्शाती है । पर्यावरण-चिन्ता समकालीन कविता के प्रमुख विषयों में से एक है । रामदरश मिश्र ने पेड़ों के अस्तित्व के साथ 'कविता' की नियति को जोड़कर चेतावनी दी है कि पेड़ों का विनाश केवल

पर्यावरण की समस्या नहीं है ।

सुबह आँखों में इन्हें भर जागता हूँ
पास जा इनके खुला दिन माँगता हूँ
मुस्कराते हुए पलकें खोलते है

('फूल कितना बोलते है')

शीत से लथपथ सूना उद्यान
एक नया फूल शिशु-सा हँस उठा है

.....

जलते सम्बन्धों का धुआँ
भय से सहमी आँखों का सन्नाटा
आज उसे किसने छू दिया कि
वह देखते-देखते इन्दधनुष बन गयी है

('वसंताभास')

समूचे रागात्मक संवेदन के लिए यह खतरे की घंटी है । पेड़ कटने का अर्थ है, लय से भरे वातावरण की समाप्ति ('जवाब') और पेड के होने का मतलब है भरपूर आदिम राग की अनुभूति - 'गुलमुहर' ।

'तुमने गुस्से में
अपना ही छतनार पेड़ काट डाला
क्योंकि
वह तुम्हारे अहाते में खड़ा होकर
पडोसी को शीतल छाँह देता था'

('जवाब')

'दहक रहा है गुलमुहर
जलती हुई मई की दोपहरी में
पोर-पोर से फूट पडे है
लाल-लाल फूलों के गुच्छे
और रंग रहे है जलता हुआ सन्नाटा'

(गुलमुहर)

कवि के लिए 'पेड़' आपसी भाई-चारे और पारस्परिक सद्भाव के जीते-जागते आदर्श भी है -

कैसा लगता होगा उन्हें

जब देखते होंगे कि
आदमियों के मौसम अलग-अलग है
उनके लिए हवा अलग-अलग है
उनकी हँसी पर
आँसू पर
सपनों पर
अलग-अलग मजहबों के नाम लिखे है
('पेड')[१५४]

इन पंक्तियों में 'कैसा लगता होगा' पद के माध्यम से अस्वाभाविक स्थिति या विडम्बना को गहराया गया है । 'आग' कविता में भी कवि ने इसी पध्धति को आजमाया है -

कैसा लगता होगा उसे
जब कोई हाथ
उसे जगाकर डाल आता होगा
असहाय झोंपड़ियों के बीच
या झोंक देता होगा
भरे-पूरे खेतों में, खलिहानों में
कैसा लगता होगा
जब उसे किसी गोले में बांधकर
सभ्य हाथों द्वारा
फेंक दिया जाता होगा
अनंत जन-प्रवाह के बीच
अपनी इच्छा के विरूद्ध धधकने के लिए
हँसती-गाती जिन्दगियों को निगलने के लिए
('आग')

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि मिश्रजी के इस काव्य संग्रह में 'पेड़', 'आग', 'चिडियाँ' आदि माध्यम भर है और परिवेश की जटिलताओं, बेहूदगियों से साक्षात् कराते हुए अंततः एक गंभीर मानवीय संवेदनों के उभार में रूपांतरित हो जाते है ।

वसंत की अंधेरी रात है
गाड़ी चली जा रही है -
चिंघाड़ती हुई

सोयी दिशाओं को फाड़ती हुई
लेकिन उसके भीतर लदा है -
'एक सहमा हुआ सन्नाटा'
('वसन्त में')[१५५]

'वसंत' मिश्रजी की प्रिय ऋतु है । लेकिन जब, इस ऋतु के साथ 'सहमा हुआ सन्नाटा' जुड़ गया हो, इसका नाम सुनकर भीतर तक थरथराने की स्थिति बन चुकी हो तो फिर वसंत के आने के अर्थ बदल जाते है । वसंत गुदगुदाने के बजाय रूलाकर चला जाता है । बाहर-भीतर के असंख्य दबाव सहज अनुभूतियों के लिए संकट बने हुए है, लेकिन अभी संवेदनात्मक स्तर पर सारी संभावनाएँ समाप्त नहीं हुई है । इस सत्य को रामदरश मिश्र 'खुशबू' कविता के माध्यम से उद्‌घाटित करते है -

'कहाँ से आई मकान में
यह खुशबू
मैंने तो जाते समय
इसे चारों ओर से
बन्द कर दिया था
लगता है
कोई झरोखा खुला रह गया
और कहीं कुछ खुला रह जाए
तो वसंत की हवा को
वहाँ आने से कौन रोक सकता है ?' **('खुशबू')[१५६]**

निराशा और क्षोभ के बीच आशा और आस्था का उद्रेक मिश्रजी के समग्र रचना संसार की उल्लेखनीय विशेषता है, जो इस संग्रह में भी अनुपस्थित नहीं है ।

निराश और क्षुब्ध करने वाले हादसे, अमानवीयकरण को बढावा देती असंगतियाँ, दोहरे प्रतिमान और व्यवस्थागत अंतर्विरोध मिश्रजी की कविताओं में हमेशा अधिक जगह घेरते रहे है । इस संग्रह की कविताओं में भी जहाँ-तहाँ 'हँसती-गाती जिंदगियों को निगलने' के षड्‌यंत्र - 'आग', 'अपना इल्जाम दूसरों पर गाड़ देने' की मनोवृत्ति - 'उत्तुः छः कविताएँ', 'आँखों में भय का जंगल' जी रही लड़की - 'लड़की', 'कुर्सी मजबूत करने' में लगा राजनीति का खिलाड़ी - 'शब्द', 'अपने ईश्वर की दुहाई' देकर दूसरे के ईश्वर पर गोली दागते हत्यारे' - 'गोली' - आदि की मौजूदगी मात्र सूचनात्मक नहीं है । ये मौजूदा मूल्य-विचलन को प्रगतिशील एवं मानवीय अंतर्दृष्टि के जरिए जाँचे जाने की गवाही देते है । इन कविताओं में आये दो क्रियापद खासतौर पर घ्यान खींचते है । 'फेंकना' और 'पीना' - ये दो क्रियाएँ बार-बार प्रयुक्त हुई है । यह गौरतलब

है कि 'फेंकना' का प्रयोग प्रायः किसी 'विसंगति' या 'विड़म्बना' को दर्शाने और गहराने के निमित्त हुआ है ।

मिश्रजी प्रायः दो अलग-अलग स्थितियों को आमने-सामने रखकर 'विड़म्बना' को रेखांकित करते है, जैसा कि इस संग्रह की 'आम', 'पेड़', 'कुर्ते', 'भवन', 'झाड़फानूस', 'ऊँचाई' आदि कविताओं में हुआ है । 'फेंकना' और 'पीना' क्रियाएँ भी दो स्थितियों की टकराहट को व्यंजित करने में समर्थ है ।

इस संग्रह में कविता संबंधी तीसरा कथन 'कविता आत्मा के शब्दों से लिखी जाती है' अधिकतर कविताओं पर मौजू है । लड़की, वसंत, उत्तू, फूल आदि से संबंधित कविताओं में एक खास तरह की आत्मीयता और ऊष्मा है । लेकिन 'लड़की' संबंधी कविताओं को पढ़ते समय लगता है कि इन विचारों को मिश्रजी अपनी 'लड़की', 'आखिरी चिट्ठी' आदि कहानियों में बहुत पहले व्यक्त कर चुके हैं । 'आग बनकर टकरायेगी बंद आँखों से' - यह संभावना भी 'आखिरी चिट्ठी' में प्रभा की बेटी ने अपनी लपटों की झालर से अपनी रक्षा करने की आश्वस्ति का नया संस्करण लगती है । फिर भी, ये कविताएँ समाज में नारी की दयनीयता और पुरूष प्रधान मूल्यों के प्रति कवि की चिंता को असरदार तरीके से रख सकी है ।[१५७]

जलते हुए समय में हँसी के फूल उगाने की कोशिश :

'बारिश में भीगते बच्चे' :

'लेकिन क्या करूँ अपनी इस आदत का
जिसने पक्के मकान के आँगन में
थोडी-सी कच्ची जमीन छोड़ रखी है ।'

रामदरश मिश्र ने अपनी रचनाओं के आँगन में भी वह कच्ची जमीन छोड़ रखी है, जिसके मजबूत आधार पर उनके पाँव शुरू से टिके हुए है, जिस जमीन की ओर संकेत उन्होंने अपने आत्मवृत्त के पहले खण्ड़ 'जहाँ मैं खडा हूँ' में विस्तार से दिया है । इस जमीन में अपने भीतर की उष्मा से फलते-फूलते पेड़-पौधे है, साँसों का संगीत बनती हवाएँ है, बच्चों की तरह खिलखिलाती धूप है और इन अकृत्रिम और अनायास अर्जित अनुभवों को काव्यानुभूति का रूप देने में सहायक मानवीय सरोकार एवं जनधर्मी विचार है । मानवीय संवेदना, जीवन की जीवन्तता और उससे जुड़ी सकारात्मक मूल्य-निष्ठा की जमीन पर खड़ी रामदरश मिश्र की रचनाधर्मिता गौरतलब और प्रासंगिक बनी हुई है । न केवल रामदरश मिश्र अपितु सम्पूर्ण समकालीन कविता का जो उल्लेखनीय-आश्वस्तकारी पक्ष है, उसके मूल में यही संवेदना-बहुल जमीन है । इसके अभाव में कविता 'रेटॉरिक' बनती है, पोस्टर बन सकती है और शायद 'हथियार' का

काम भी देती है, लेकिन उसकी ऊष्मा, उसकी शक्ति निश्चय ही कम हो जाती है । रामदरश मिश्र के कविता-संग्रह 'बारिश में भीगते बच्चे' की कविताओं को पढ़ते समय लगता है कि अपने समय-सहचर से बराबर संवाद बनाये रखते हुए आरोपित विसंगतियों के मुखर प्रतिवाद के साथ मनुष्य को बेहतर मनुष्य और समाज को बेहतर समाज बनाने की जो चिन्ता उनके पूर्ववर्ती काव्य-संग्रहों में केन्द्रस्थ है, वह इस संग्रह का भी प्रतिनिधि स्वर है ।[१५८]

आधुनिक कविता के संदर्भ में मिश्रजी की काव्यगत विशेषताएँ :

रामदरश मिश्रजी की काव्यगत विशेषताएँ निम्नलिखित है -

१) आधुनिक युग की संवेदनाओं के साथ युग की परिवर्तनशील परिस्थितियों का जिस रूप में वर्णन है, उसे पढकर लगता है कि उनके चिन्तन में परंपराओं के पुरातन रूप का सर्वथा परिहार न होकर नवीन परिप्रेक्ष्य में प्रस्फुटन और परिष्कार है ।

२) मिश्रजी की कवितओं में मूलतः ग्राम संवेदना और गाँव की मिट्टी की आदिम गंध दिखाई देती है । यह गाँव-गंध उनके पूरे साहित्य में अवश्य उभरती है, किन्तु कविता में उनका फलक विस्तृत है ।

३) रामदरश मिश्र की कविताओं के मूल स्वर का जुड़ाव कविता की सतत विकासशील प्रगतिशील काव्यधारा से है । उनके कवि का उभार 'नयी कविता' के दिनों में ही दिखाई देता है ।

४) मिश्रजी बड़े हलचल पूर्ण ढंग से सत्तह पर तात्कालिक उत्तेजना पैदा करनेवाली ऐसी चीजें जमाकर दी, जिनके कारण इस काव्यान्दोलन की अन्तर्धारा में जीवित और सतत संघर्षशील अग्रगामी काव्य मूल्यों को और उन्हें लेकर चलनेवाली कविताओं को अनुपस्थित माना गया । आज जब वह पूरी प्रक्रिया अधिक स्पष्ट होकर हमारे सामने है, तो हम जीवन के सकारात्मक तत्त्वों से पूर्ण सहमति के साथ खड़ी प्रगतिशील कविता की सतत उपस्थिति पहचान सकते है ।

५) मिश्रजी की काव्य-यात्रा प्रारंभ में एक गीतकार के रूप में रही, फिर गीतकार और कवि के आपसी संघर्ष के रूप में और अब एक चर्चित कवि के रूप में । रचनाकार रामदरश मिश्र कविता के द्वार से साहित्य के प्रांगण में प्रविष्ट हुए थे । प्रवेश के बाद प्रारंभ के कई वर्षो तक इसी क्षेत्र में घूमते रहे । 'पथ के गीत' के बाद उनका दूसरा कविता संकलन 'बैरंग बेनाम चिट्ठयाँ' प्रकाशित हुआ । इस संकलन की कविताओंने जीवनबोध के साथ नूतन उपमानों में अपनी अभिव्यक्ति की है । मैंने इन कविताओं को पढ़ने के बाद ऐसा अनुभव किया था कि इनमें प्रगतिशील के पुट के साथ नयी कविता की झपट धीरे-धीरे प्रवेश कर रही है । गीत का स्थूल संवेदन छूट रहा है और यथार्थ या वास्तविकता का सरोकार बढ़ रहा है ।

'पक गई है धूप' जीवनानुभव के उन संदर्भो पर प्रकाश डालनेवाली कविताओं का संकलन है, जो अपने चारों ओर फैले वातावरण से उत्पन्न विचारों को जन्म देता है । 'दिन एक नदी बन गया', 'कंधे पर सूरज', 'मेरे प्रिय गीत' और 'जुलूस कहाँ जा रहा है' - आदि संकलनों में रामदरश मिश्र की उत्तरोत्तर विकसित होती हुई भाव संपदा और सोच उजागर होती है । कविताओं के साथ 'बाजार को निकले है लोग' गजल संग्रह भी प्रयोगात्मक रचना है ।[१५९]

अध्याय - ३
संदर्भ सूची

१) आग कुछ नहीं बोलती : रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. १४८

२) आग कुछ नहीं बोलती : रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. ९०

३) आग कुछ नहीं बोलती : रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. १५३

४) आग कुछ नहीं बोलती : रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. १५७

५) आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास : डॉ. कृष्णलाल शुक्ल : पृ. ६३

६) आधुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्द धारा : डॉ. त्रिभुवन सिंह : पृ. १०१

७) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीर सिंह चौहान : पृ. ०१

८) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीर सिंह चौहान : पृ. ०३

९) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. नवनीत गोस्वामी : पृ. ०४

१०) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. नवनीत गोस्वामी : पृ. ०७

११) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीर सिंह चौहान : पृ. ०६

१२) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीर सिंह चौहान : पृ. ०९

१३) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीर सिंह चौहान : पृ. ८३

१४) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीर सिंह चौहान : पृ. ८४

१५) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. नवनीत गोस्वामी : पृ. ८६

१६) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. नवनीत गोस्वामी : पृ. ८८

१७) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीर सिंह चौहान : पृ. ९१

१८) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीर सिंह चौहान : पृ. १५०

१९) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीर सिंह चौहान : पृ. १५१

२०) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. नवनीत गोस्वामी : पृ. १५३

२१) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. नवनीत गोस्वामी : पृ. १५३

२२) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. नवनीत गोस्वामी : पृ. १५५

२३) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. नवनीत गोस्वामी : पृ. १५५

२४) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीर सिंह चौहान : पृ. १८४

२५) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीर सिंह चौहान : पृ. १८५

२६) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीर सिंह चौहान : पृ. १८६

२७) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीर सिंह चौहान : पृ. १०६

२८) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. नवनीत गोस्वामी : पृ. १०८
२९) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीर सिंह चौहान : पृ. १३४
३०) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीर सिंह चौहान : पृ. ९४
३१) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीर सिंह चौहान : पृ. ९५
३२) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. नवनीत गोस्वामी : पृ. ५७
३३) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. नवनीत गोस्वामी : पृ. ६०
३४) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. नवनीत गोस्वामी : पृ. ६२
३५) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. नवनीत गोस्वामी : पृ. ६८
३६) 'कंधे पर सूरज' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. २५-२६
३७) 'कंधे पर सूरज' : 'तुमने कहा था' : पृ. ८४
३८) 'कंधे पर सूरज' : 'अपने से अलग' : पृ. ८१
३९) 'कंधे पर सूरज' : 'साक्षात्कार' : पृ. १७-१८
४०) 'कंधे पर सूरज' : 'तुमने कहा था' : पृ. २५
४१) 'कंधे पर सूरज' : 'दवा की तलाश' : पृ. ११
४२) 'कंधे पर सूरज' : 'लौट आया हूँ मेरे देश' : पृ. २९
४३) 'कंधे पर सूरज' : रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. ३७९
४४) 'कंधे पर सूरज' : रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. ३८५
४५) 'कंधे पर सूरज' : रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. ४५१
४६) 'कितने बजे है' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. ८७
४७) जुलूस कहाँ जा रहा है : 'हँसी से हम और भी डर जाते है' : पृ. २९
४८) जुलूस कहाँ जा रहा है : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. ५७
४९) जुलूस कहाँ जा रहा है : 'हाथ' : पृ. ५०
५०) जुलूस कहाँ जा रहा है : 'औरत' : पृ. २०
५१) जुलूस कहाँ जा रहा है : 'लड़की' : पृ. ४७
५२) जुलूस कहाँ जा रहा है : 'कब तक' : पृ. ४०
५३) जुलूस कहाँ जा रहा है : 'कब तक' : पृ. ४०
५४) जुलूस कहाँ जा रहा है : 'माँ के वास्ते' : पृ. ५८
५५) जुलूस कहाँ जा रहा है : 'धर्म' (२) : पृ. ५७
५६) जुलूस कहाँ जा रहा है : 'नयी शताब्दी' : पृ. ३७
५७) जुलूस कहाँ जा रहा है : 'हवा से डरने लगा हूँ' : पृ. ६३

५८) जुलूस कहाँ जा रहा है : 'नयी शताब्दी' : पृ. ३१

५९) जुलूस कहाँ जा रहा है : 'कन्याकुमारी : छ कविताएँ' : पृ. ६८

६०) जुलूस कहाँ जा रहा है : डॉ. रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. १६

६१) जुलूस कहाँ जा रहा है : डॉ. रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. १०

६२) जुलूस कहाँ जा रहा है : डॉ. रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. ३४

६३) जुलूस कहाँ जा रहा है : डॉ. रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. ७८

६४) जुलूस कहाँ जा रहा है : डॉ. रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. ०७

६५) जुलूस कहाँ जा रहा है : डॉ. रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. ०४

६६) जुलूस कहाँ जा रहा है : डॉ. रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. १०

६७) जुलूस कहाँ जा रहा है : डॉ. रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. ०६

६८) जुलूस कहाँ जा रहा है : डॉ. रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. ४१

६०) जुलूस कहाँ जा रहा है : डॉ. रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. ७८

७०) जुलूस कहाँ जा रहा है : डॉ. रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. ३४

७१) ज्योति कलश : डॉ. शिवप्रसाद मिश्र : उद्धृत, संपा. डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित : पृ. १३२

७२) दिन एक नदी बन गया : 'बच्चा' (२) : पृ. १५

७३) दिन एक नदी बन गया : 'लोग' : पृ. ३४

७४) दिन एक नदी बन गया : 'पंचभूत' : पृ. ३५

७५) दिन एक नदी बन गया : मकान : चार कविताएँ : पृ. १४

७६) दिन एक नदी बन गया : 'हम कहाँ है ?' : पृ. ४२

७७) दिन एक नदी बन गया : 'हम कहाँ है ?' : पृ. २३

७८) दिन एक नदी बन गया : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. २

७९) दिन एक नदी बन गया : डॉ. रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. ४५५

८०) दिन एक नदी बन गया : डॉ. रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. ५००

८१) दिन एक नदी बन गया : डॉ. रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. ४६५

८२) दिन एक नदी बन गया : डॉ. रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. ४५७

८३) दिन एक नदी बन गया : डॉ. रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. ५१३

८४) दिन एक नदी बन गया : डॉ. रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. ५०१

८५) दिन एक नदी बन गया : डॉ. रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. ५०६

८६) दिन एक नदी बन गया : डॉ. रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. ४८४

८७) नवल किशोर : 'मार्क्सवादी कला द्रष्टि और समाजवादी यथार्थवाद' : पृ. ०५
८८) नवल किशोर : 'मार्क्सवादी कला द्रष्टि और समाजवादी यथार्थवाद' : पृ. ८१
८९) नया हिन्दी काव्य : डॉ. शिवकुमार मिश्र : पृ. ४६
९०) नागार्जुन जीवन और साहित्य : डॉ. प्रकाशचन्द्र भट्ट : पृ. १५४
९१) पथ के गीत : '15 अगस्त' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. ३१
९२) 'पथ के गीत' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. २६
९३) 'पथ के गीत' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. १२१
९४) 'पथ के गीत' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. ८७
९५) 'पथ के गीत', टंकित प्रति से : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. १०९
९६) 'पथ के गीत' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. ९१
९७) 'पथ के गीत' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. ९१
९८) 'पथ के गीत' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. २३
९९) 'पथ के गीत' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. ५९
१००) 'पथ के गीत' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. ५५
१०१) पथ के गीत : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. ५४
१०२) पक गई है धूप : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. १२७
१०३) पक गई है धूप : 'लाशों के बीच' : पृ. ३
१०४) पक गई है धूप : 'सनय' : पृ. ९४
१०५) पक गई है धूप : रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. ३२५
१०६) पक गई है धूप : रामदरश मिश्र रचनावली : पृ. ३६२
१०७) 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. १०६
१०८) 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. ११९
१०९) 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. १३२
११०) वही : पृ. ८७-८८
१११) वही : पृ. १३१
११२) वही : पृ. १३२
११३) वही : पृ. १२६
११४) 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. १२४
११५) वही : पृ. १३६

११६) वही : पृ. ०२१

११७) 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. १११

११८) वही : पृ. १२३

११९) वही : पृ. १०९

१२०) 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. १२८

१२१) 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. २३

१२२) वही : पृ. ३२

१२३) वही : पृ. ३३

१२४) 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. २१

१२५) वही : पृ. ११८

१२६) 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. १३३

१२७) मेरे प्रिय गीत : 'फागुनी रात' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. १२

१२८) मेरे प्रिय गीत : 'सबने जीवन को दान दिया' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. २६

१२९) वही : 'पत्ता' : पृ. ३

१३०) वही : 'सड़क' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. ११

१३१) वही : 'पत्थर' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. ७०

१३२) रचनाकार रामदरश मिश्र : डॉ. नित्यानंद तिवारी : पृ. ११४

१३३) रचनाकार रामदरश मिश्र : डॉ. ज्ञान चन्द्र गुप्त : पृ. ११७

१३४) रचनाकार रामदरश मिश्र : डॉ. नित्यानंद तिवारी : पृ. १२३

१३५) रचनाकार रामदरश मिश्र : डॉ. नित्यानंद तिवारी : पृ. १२५

१३६) रचनाकार रामदरश मिश्र : डॉ. नित्यानंद तिवारी : पृ. १३१

१३७) रचनाकार रामदरश मिश्र : डॉ. नित्यानंद तिवारी : पृ. १३३

१३८) रचनाकार रामदरश मिश्र : डॉ. ज्ञान चन्द्र गुप्त : पृ. १३५

१३९) रचनाकार रामदरश मिश्र : डॉ. नित्यानंद तिवारी : पृ. १३७

१४०) रचनाकार रामदरश मिश्र : डॉ. ज्ञान चन्द्र गुप्त : पृ. १३८

१४१) रचनाकार रामदरश मिश्र : डॉ. नित्यानंद तिवारी : पृ. १३९

१४२) वही : पृ. ४७

१४३) वही : पृ. ७१

१४४) रचनाकार रामदरश मिश्र : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक : पृ. १४

१४५) रामदरश मिश्र व्यक्तित्व एवं कृतित्व : पृ. ८८

१४६) रामदरश मिश्र व्यक्तित्व एवं कृतित्व : पृ. ८९

१४७) रामदरश मिश्र व्यक्तित्व एवं कृतित्व : पृ. ८९

१४८) रामदरश मिश्र की सृजन-यात्रा : महावीर सिंह चौहान : पृ. ३३

१४९) रामदरश मिश्र की सृजन-यात्रा : महावीर सिंह चौहान : पृ. ३४

१५०) रामदरश मिश्र की सृजन-यात्रा : महावीर सिंह चौहान : पृ. ३५

१५१) रामदरश मिश्र की सृजन-यात्रा : महावीर सिंह चौहान : पृ. ३८

१५२) रामदरश मिश्र : रचना समय : वेदप्रकाश अमिताभ : पृ. ९८

१५३) रामदरश मिश्र : रचना समय : वेदप्रकाश अमिताभ : पृ. १००

१५४) 'समाजवादी यथार्थवाद' : डॉ. शिवकुमार मिश्र : पृ. २६

१५५) 'साहित्य, संदर्भ और मूल्य' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. १५१

१५६) 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य' लेख : डॉ. रमेश कुंतल मेघ : पृ. १७

१५७) 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य' विशेषांक : डॉ. शिवदानसिंह चौहान : पृ. ०६

१५८) हिन्दी कविता में युगान्तर प्रकाशन : डॉ. सीधीन्द्र : पृ. २०५

१५९) **The Fandamentals of Marxist Leninist Philosephy;** पृ. १६६

अध्याय - 4

रामदरश मिश्र के काव्य का अभिव्यक्ति पक्ष

अध्याय - ४

रामदरश मिश्र के काव्य का अभिव्यक्ति पक्ष :

१ प्रस्तावना

२ भाव-प्रवणता तथा आत्माभिव्यक्ति

३ सौन्दर्यमयी कल्पना

४ संगीतात्मकता

५ संक्षिप्त आकार

६ नया काव्य

७ यथार्थवादी दृष्टि :

➪ आस्था और अनास्था

८ लम्बी कविता

९ गजल

१० बिम्ब योजना :

- 'दिन एक नदी बन गया'
- 'कंधे पर सूरज'
- 'बारिश में भीगते बच्चे'
- 'जुलूस कहाँ जा रहा है ?'
- 'चूहे', 'इन्तजार', 'लोकराम'

➪ शब्द बिम्ब

➪ वर्ण बिम्ब

➪ समानुभूतिक बिम्ब

➪ व्यंजनुभूतिक बिम्ब

➪ व्यंजना-प्रवण सामासिक बिम्ब

➪ प्रसृत बिम्ब :

❋ दृश्य बिम्बः

❋ दृश्य-श्रव्य बिम्ब

❋ श्रव्य बिम्ब

➪ स्पर्श एवं गंध सम्बन्धी बिम्ब

११ भाषाशैली

१२ प्रकृति चित्रण

१३ प्रतीक योजना

१४ व्यंग्य

१५ शब्द योजना

१६ छन्द योजना

१७ निष्कर्ष

अध्याय - ४

रामदरश मिश्र के काव्य का अभिव्यक्ति पक्ष :

प्रस्तावना :-

'मैं गमले का फूल तो नहीं
कि एक सुरक्षित कमरे से
दूसरे कमरे में रख दिया जाऊँ
मैं तो पेड़ हूँ एक खास जमीन में उगा हुआ
आंधियाँ चलती हैं
ओले गिरते हैं ।
पेड़ हहराता है, काँपता है
डालियाँ और फल-फूल टूटते हैं
लेकिन वह हर बार अपने में लौट आता हैं'

रामदरश जी ने कविता की कई विधाओं को रचा है, रचाया है, गीत, गजल और मुक्त कविता, परन्तु मुक्त कविता में वे अधिक रमे हैं और उनकी बड़ी कविताएँ प्रबन्ध की दृष्टि से उतनी ही गढी हुई हैं, जितनी उनकी छोटी कविताएँ सघन ।

रामदरश मिश्र अपनी यात्रा में कविता की साहित्य की विभिन्न विधाओं का अनुभव समेटे अपने रास्ते की प्रत्येक कच्ची इँट को संघर्ष तथा संभावना की आंच में पकाने वाले कवि है । इस कवि को ग्रामीण संस्कृति स्फूर्ति देती है । वे मनुष्य को अपराजेय का बोध कराने वाले प्रतिबध्ध कवि है । एक छोटे से पौधे की भाषा में उत्तम जीवन का आभास तथा पत्थर को फोड़कर भी कल-कल कर बहते आने का संघर्ष उनकी कविताओं में मुखरित हुआ है । आने वाला समय गांव की खुली पगडंडियों में नंगे पांव चलने वाले इस कवि का है । इनकी लेखनी समाज से पुनरूत्थान का प्रमुख मार्ग है । गांव की मिट्टी से जुड़ा यह कवि बार-बार बताता है कि मनुष्य की यात्रा पराजय स्वीकार करने वाली नहीं है वह अपराजेय है ।

रामदरश जी में वैचारिक सक्रियता के साथ - साथ राजनैतिक, सामाजिक सक्रियता भी देखी जा सकती है । वे नागरिक के रूप में अपने को अलग दर्ज कराते हैं, कवि के रूप में अलग । कवि होने को अपने सामाजिक दायित्व की भरपाई नहीं मानते, इसके कारण ही उनकी रचनाओं की भाषा ईमानदार है । वे भोले तो हैं और भोलेपन में फँसते भी है, पर उस भोलेपन के भीतर कोई चौकन्नापन है, जो समय से उन्हें बाहर निकाल लेता है ।

मिश्रजी को कठिन साधना के बाद उन्हें रचनात्मक सिध्धियाँ मिली है, इसलिए यदि आज वे सहज, संतुष्ट और आश्वस्त लगते हैं, तो यह आकस्मिक नहीं है –

'किसी को गिराया न खुद को उछाला,
कटा जिन्दगी का सफर धीरे-धीरे ।
जहाँ आप पहुँचे छलाँगें लगाकर,
वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे ।।'

रामदरश जी ने अपनी वह सहज आत्मीयता जिस-जिस कस्बाई, शहरी या महानगरी परिवेश में रहे, उसे भरपूर दी । उनकी कविता 'परकटी धूप' की पंक्तियाँ –

कहीं से छुट कर
गिर पड़ी है एक मुट्ठी धूप
परकटें पंछी सी चुपचापे
मेरी दीवार के ऊपर
और वहीं पड़ी - पड़ी तडप रही है ।

खुलेपन के लिए टीस जगाती है । कवि बन्द-बन्द से परिवेश में कहीं खुलापन खोज ही लेता है । रामदरश जी की वसन्ती कविताएँ और जमीन-घर से जुड़ी कविताएँ बड़ी प्यारी लगती हैं । वसन्त की उपस्थिति उनके लिए 'अज्ञात फूल' की सुरभि है और बस एक उत्तम उत्कंठा है या फिर –

'नीचे
एक बिसाती
धीरे-धीरे फैला रहा है रंगबिरंगी
खिलौनों की दुकान
मानवीय लीला का अपार विस्तार ।

गीतिकाव्य में व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति सहज स्वाभाविक होती है । व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति काव्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा गीत काव्य में अधिक तीव्र होती है । गीत काव्य के विषय में डॉ. मोहन अवस्थी का मत है कि, 'गीत कवि के कुछ क्षणों के भावोद्रेक का फल है । भाव' का दबाव वहाँ, इतना अधिक होता है कि विचार करने का अवकाश ही नहीं मिलता । भावावेग के कारण कवि उमड़ पड़ता है और उस समय उसके हृदय से जो कविता धारा निकलती है, वही गीत है ।'

आज की गीत शैली पर विचार करते हुए डॉ. निर्मल जैन ने लिखा है कि 'निश्चय ही युगों के उपरान्त काव्य की आत्मा युग-चेतना के अनुकूल परिवर्तित होती आई है, पर पारिभाषिक रूप से तथा आकार मात्र को दृष्टि में रखते हुए आज के गीत या लधु आकार की मुक्तक कविताएँ संयुक्त मुक्तकों के अन्तर्गत आयेगी । इन में प्रयुक्त होने

वाला प्रत्येक छन्द पूर्वापर संबंध से ग्रथित होता है, वह खतः पूर्ण नहीं होता ।

काव्य में व्यक्तित्व की विशेषताएँ अपना अलग महत्व रखती है । व्यक्तित्व का प्रतिफलन आधुनिक हिन्दी गीत काव्य का प्रमुख लक्षण है । इस विषय में यह मत घ्यातव्य है कि, 'आत्मनिरीक्षण और शुद्धि का प्रयत्न होने पर भी व्यक्ति के पीड़न कष्ट और अपराधो नें समाज को परिचित कराने का प्रयत्न भी होता है और यह सब व्यक्ति - वैचित्र्य से प्रभावित होकर पल्लवित होता है ।'

डॉ. रामदरश मिश्र के इस कथन से यह प्रमाणित हो जाता है कि गीत मानव-मन की सहज विद्या है, जिसमें सामयिक परिवर्तनों के साथ बदलाव आता रहता है । इसका कारण मनुष्य का राग-बोधमय प्राणी होना है । मनुष्य का यह राग-बोध उससे कभी विलग नहीं होता, भले ही परिस्थितिवश रसमें क्षीणता अथवा जप्लिता आ जाय । हिन्दी साहित्य का इतिहास तो इस गीत परम्परा का ज्वलन्त उदाहरण है । हिन्दी के इन गीतों के रचयिता एवं गायक कभी चारण रहे है, तो कभी संत कवि, कभी रीति के कविगण, तो कभी रूमानी कवि । लेकिंन इन गीतों के भावों में अन्तर पाया जाता है, जिसका कारण मानव-मन के संवेगो में होने वाला परिवर्तन है - 'युगीन संदर्भो में मानव-मन के संवेगों को नया-नया रूप प्राप्त होता रहता है, लेकिन इन संवेगों को गाने के लिए मानव-मन में बेचैनी रहा करती है ।'

वर्तमान युग में अतीत की अपेक्षा अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए है । अतः इन युगों के मानव-मन की संवेदनाओं में भी अन्तर पाया जाता है - 'यह सत्य है कि आज के व्यक्ति के सुख-दुःख, राग-विराग की संवेदना आदिमकाल के मानव की संवेदना की तरह प्रत्यक्ष, सीधी और आवेगात्मक नहीं है - उसमें बौध्धिक युग की बहुत ही जटिलताएँ आ गयी है । इसलिए आज की संवेदना आदिकालीन मध्ययुगीन और आधुनिक काल के रूमानी गीतों की संवेदना की तरह एक लय में वेग से फूट नहीं पड़ती, बल्कि वह एक विशिष्ट मानसिक स्थिति में अपना अनुकूल बिखरे हुए संवेगों से जुड़ती है ।

गीत काव्य की उपर्युक्त सारी विशेषाताएँ मिश्रजी के काव्य में अपने उत्कृष्टतम रूप में पायी जाती है । निम्नलिखित शीर्षको के अंतर्गत गीत काव्य की विशेषताओं का अध्ययन करना उपयुक्त होगा ।

(१) भाव - प्रवणता तथा आत्माभिव्यक्ति :-

मानव का हृदय असंख्य भावों अनुभूतियों का क्रीडा स्थल है । प्रेरणा, करूणा, हर्ष, विषाद आदि भाव उसमें सदैव विद्यमान रहते हैं । कवि अपने गीतों में अन्तरतम के इन्ही मूल भावों को वाणी प्रदान करता है । हृदय की सुख-दुःखात्मक वृत्तियाँ ही गीत-काव्य का विषय बनती है । गीत में हृदय की कोमल भावनाओं का सहज स्वाभाविक स्फुरण होता है । कवि के अन्तर की अनुभूति जब धनीभूत होकर अपनी तीव्रता

की चरम सीमा तक पहुँच जाती है, तभी गीत काव्य का जन्म होता है । कवि मिश्रजी की काव्य रचनाओं में भाव-प्रवणता की तीव्रता अनेक स्थलों पर विद्यमान है ।

कवि का मन प्रेयसी की निष्ठुरता पर दुःख व्यक्त करता है । 'हर सिंगार की डाली की डाली तुने झकझोर दी' कविता में इसी भाव को वाणी मिली है -

'हर सिंगार की डाली तूने झकझोर दी
फूल जो कि रातभर झरे
वे भी तेरे थे
डाली पर जो रहे भरे
वे भी तेरे थे
प्रीति की प्रतीति हाय ! क्यों तूने तोड़ दी ।'[९]

नेत्र मन की भावनाओं के वाहक होते है । मन के भावों और विचारों की अनेकरूपता, नेत्रों की अनेक भाव-भंगिमाओं में व्यक्त होती है । इसी कथ्य को कवि ने भावप्रवण शब्दावली में रेखांक्ति किया है -

'इनका संसार निराला है इनकी अनजान कहानी है
मदिरा के पानी में तन कर जब चढ़ जातीं अंगार हुई
करूणा की कोम घाटी में जब पिघलीं तो जलधार हुई
इन आँखो में ही आग भरी, इन आँखो में ही पानी है ।
अलसाकर जादूपट खोला, तंत्रियाँ हृदय की डोल उठीं
मन भीगा जब नव दुलहिन-सी ये आधा घूंघट खोल उठीं
वासनामयी उर की दुनिया इनकी जानी-पहचानी है
इनकी कोरों से मनपथ ने उर के पथ पर चलना सीखा
इनकी रंगराती लाली में दो यौवन ने चलना सीखा
इनमें सागर की हलचल रे, सरिता की मंद खानी है ।'

'अंधेरी घाटियों का गीत' कविता में कविने दुःख भरी जिंदगी को अंधेरी घाटियों की संज्ञा दी है । यहाँ राह चलते भावप्रवण गीतों की संवेदनाएँ मन में उत्साह पैदा करती है । इस प्रकार गीत जीवन यात्रा के पाथेय है । कवि की यह भावनाएँ अंधेरी घाटियों की 'गीत' नामक कविता में बखूबी व्यक्त हुई है -

'तोड़कर हमको हमीं से छींटती हैं घाटियाँ
बर्फ से बिखरी मशाले पीटती हैं घाटियाँ
कांप कर परछाइयाँ भी छोड़ देती हैं हमें
रौंद कर आँसू अबोले चीखती हैं घाटियाँ

आ मिला ले आग की लपटें जहाँ जो हों बची
याचनाओं से कभी ऐ दोस्त पी फटती नहीं है ।'[११]

(२) सौन्दर्यमयी कल्पना :-

गीत-काव्य आत्मा की अनुभूति का व्यक्त रूप है, गीतकार अपनी खंड अनुभूतियाँ मार्मिक सौन्दर्यमयी कल्पना द्वारा व्यक्त करता है । वह रूप विधान के प्रयोग से अपनी कृीत में अपूर्व सौन्दर्य का सृजन करता है । इस काव्य-दृष्टि में सौन्दर्य मची कल्पना महत्वपूर्ण योगदान करती है । मिश्रजी की रचनाओं में भी सुन्दर कल्पनाएँ भरी पडी है ।

कवि ने किरन को हिरन और तुरन्त जन्मे गाय के बच्चे के रूप में कल्पित किया है ।

'ज्यों कुचलाता तृन-तृन
सोन रंग बाल हिरन
घर मेरे एक किरन
बड़े भोर आयी है
जल-सी बह-बह निकली तम के जालों से
खेली है परी-सी तलैयों से तालों से
वीरानों से पगली रह-रह टकरायी है
अंग-अंग से घर के उष्मा-सी फूट रही
गंध, दूध की धारा ज्यों थन से छूट रही
बछड़े-सी धूप, गाय अभी - अभी व्यापी है ।'[१२]

कविने संध्या को तालाब में नहाती एक नायिका के रूप में कल्पित किया है -

'संध्या स्नान के लिए उतरी
जल में पीली धूप
तट पर वस्त्र,
सिहर अपने में सिमटाजाता रूप
एक पर्त बिछ रही सतह पर
धीरे-धीरे, श्याम ।'[१३]

एक अन्य कविता 'धूप' में मिश्रजीने धूप को सफेद पंखो वाली चिड़ियाँ और छोटे बच्चों के रूप में कल्पित किया है -

'श्वेत पंखी एक चिड़िया सी फुदकती धूप
उतरी द्वार पर
मर उठी है चहक रोए हुए मेरे

फूल की हर डार पर
चढ रही है धूप बच्चों सी खड़ी दीवार पर ।'

(३) संगीतात्मकता :-

गीत काव्य संगीतात्मक होता है, अतः स्वर तथा शब्दों की संगीतात्मकता उसका प्रधान सार है । इसके लिए कवि कोमल कान्त पदावली को अपनाता है । साथ ही यह ज्ञातव्य है कि यह संगीतात्मकता भावों की उपज है, न कि तबले की थाप की । गीत का सहज स्वाभाविक रूप उसकी संगीतात्मकता और गेयता में सुरक्षित रहता है । उसकी प्रभाव शक्ति भी इससे बढती है । महादेवी वर्मा के शब्दों में - 'काव्य का वही अंश गेय कहा जाएगा जो अनुभूति की तीव्रता को संगीत के लिए उपयुक्त शब्द संयोजन द्वारा व्यक्त कर सके'[१५] काव्य की अनुभूति का आनन्द संवेदन की संप्रेषणीयता में ही अन्तनिहित है । काव्य के संवेदना के संदर्भ में डा. नगेन्द्र का मत उल्लेखनीय है - 'अतः काव्य की अनुभूति का आनन्द भी संवेदना रूप ही है, परन्तु ये संवेदन स्थूल और प्रत्यक्ष न होकर सूक्ष्म और बिम्ब रूप होते हैं'[१६] मिश्रजी की अनेक स्वनाओं में अनुभूति की तीव्रता देखी जा सकती है । वयःसंधि की मानसिकता को कविने कोमल कांत पदावली में व्यक्त किया है -

'मेरी भरी-भरी गगरी छलकत जाय रे
आज प्यासा कोई मेरे घर आये रे
पापी फागुन का बेदर्दी भोर भुआ
राम जाने कोड़लिया को क्या है हुआ
सुने बनवां में आग लगी जाये रे
आज प्यासा कोई मेरे घर आये रे
पगली आंखों को क्यों बाट सुझे नहीं
आज मन की मेरे कोई बूझे नहीं
सारी दुनिया बिना भय के थर्राये रे
आज प्यासा कोई मेरे घर आये रे
एक पत्ता गिरे, एक पत्ता जुडे
आज मनवां न जाने कहाँ को उड़े
बहकी - बहकी हवा किसको गुहराये रे
आज प्यासा कोई मेरे घर आये रे
मेरे पनघट का भी आम बौरा गया
घेर आने लगे है भँवर बेहया
कोई कैसे किसी को समझाये रे ।

आज प्यासा कोई मेरे घर आये रे ।[१७]

'गाढे गए दिन बीत' कविता में कृषि जीवन के चित्र हैं -

'गाढ़े गये दिन बीत रे, बैला बौएँ से औ औ
मिट्टी के रस में दे मिला परछाइयां तू
धरती में फिर साथी दहेज हराइयां तू
फिर बोयें हम गीत रे, बैला बोएँ से औ औ ।'[१८]

कुछ गीतों में प्रकृति का रमणीय रूप व्यक्त है । जैसे - 'फागुनी शाम'

फूटती हैं डालिया नंगी
कि जल की नीलिमा थर्रा रही हैं
झर रहीं अनगिनत रेखाएँ महकती
थकी वायु नहा रही है ।'[१९]

इन प्रकृति वर्णन में कवि की रोमांटिक भावुकता साकार हुई है । सामाजिक यथार्थ से जुड़े हुए गीतों में कवि का युग बिब रेखांक्ति है, जैसे - 'मूझ में दोपहरी' फिर हवाएँ -

'शिखरो से टूटा
प्यासा प्रयात
चील सी टिहाकर अपनी ही आवाज
डूब जातथी अपने में है गहरी ।'[२०]

'चलो जी लें धूप की तन्मय घड़ी हो
कौन जाने रात फिर कितनी बड़ी हो
यही मौसम है, सफर के लिए राहें
नये सर्जन की व्यथा सहने लगी है ।'[२१]

(४) संक्षिप्त आकार :-

कवि में थोड़े से शब्दों में बहुत कुछ कहने की सामर्थ्य दिखाई पडती है । 'हवा', घर मेरे एक-एक किरन', 'रह गए खाली पेड़, 'नदी बहती है' - आदि कविताओं में यह वैशिष्ट्य द्रष्टव्य है ।

'पथ के गीत' के गीतों में आइग अपेक्षाकृत लम्बे है, किन्तु वायदे गीत अपने आइन में बहुत छोटे और प्रभाव-सधन हो गए है । मूहीं मूहीं तो एक हीस छन्द का गीत दिखाई पडता है जैसे रास्ता ही रास्ता ('कंधे पर सूरज')

मिश्रजी के गीत तीन सोपानों में बंट सक्ते है । स्वयं कविने इनका वर्गीकरण करते

हुए इन्हें 'प्रारम्भिक गीत, स्वातंत्र्य गीत तथा सन् ६५ के बाद की नकारात्मक स्वर वाली हिन्दी कविता के प्रभाव से युक्त गीत आदि रूपों में वर्गीकृत किया है ।'[२२]

हम निस्संदेह कह सकते हैं कि मिश्रजी गीत-काव्य के उत्कृष्ट रचनाकार है । बहुत थोडे से शब्दों में, कुछ ही पंक्तियों में उन्होंने अपने हृदय के समग्र भावों को उड़ेल दिया है । भाषा पर अधिकार होने से उन्होंने भावों के अनुसार ही शब्दों की चचन किया है । सौंदर्य, प्रेम, विरह, श्रृंगार, करूणा आदि भावों को व्यक्त करने के लिए, उनके द्वारा प्रयुकत कोमल पदावली विशेष दर्शनीय है । ऐसे अवसरी पर कवि की कल्पना - सृष्टि प्रशंसनीय है ।

नया काव्य :-

मिश्रजी की सातवें और आठवें दशक में लिखी गयी कविताओं को देखने पर यह ज्ञात होता है कि वे कविताएँ कई दृष्टियों से नयी कविता के अंतर्गत रखी जा सकती है । उनमें कविता के वे लक्षण व तत्त्व दिखाई पड़ते है, जिनके आधार पर हम कह सकते है कि ये कविताएँ अपनी अलग पहचान बनाती है ।

नयी कविता के प्रवक्ता डॉ. जगदीश गुप्त के अनुसार 'नयी कविता बौध्धिकता की छाया में विकस रही है ; अतः उसमें एक अन्तर्निहित आलोचनात्मकता मिलती है । यथार्थ चित्रण का आग्रह, सूक्ष्म व्यंग्य तथा शैलीगत वैचित्र्य एक नये-नये अर्थो की घ्वनित करनेवाला अभिनय, प्रतीक विधान आदि जिन्हे नयी कविता की प्रमुख विशेषताएँ कहा जा सकता है । सभी के पीछे प्रेरणा का बुध्धिगत रूप स्पष्ट झलकता है ।'[२३]

आज का सुशिक्षित मनुष्य अपने परिवेश, परिस्थितियों से जो संवेदनात्मक प्रतिक्रिया करता है, वे संवेदनात्मक प्रतिक्रियाएँ या उनका-सा मानीकरण नयी कविता में प्रकट होता है ।'[२४]

आज की नयी कविता को आधुनिक कविता का नाम देने की प्रकृति भी दिखायी पड़ती है । आधुनिक इस अर्थ में कि वह निरन्तर मजती-निखरती हुई गतिशील है और नयेपन को आत्मसात कर रही है । कुछ विद्वान आज के कवियों में प्रगतिशील विचारो का संरक्षण देखते है किन्तु वे प्रयोगशीलता में ही प्रगतिशीलता एवं कविता का नयापन खोजते है - 'कार्ल माकर्स के साम्यवादी जीवन दर्शन ने भी भारतीय चिन्तनधारा को प्रभावित किया, किन्तु यह प्रभाव प्रगतिशीलता से संबंध रखता है । चिन्तन धाराओं के समन्वय के कारण विचारों में गति और प्रगति आ गयी, भावनाओं के परिक्षेत्रों का प्रसार होने लगा । कविता में इस प्रगतिशीलता ने वस्तु को नवीनता और शिल्प को प्रयोग शीलता दी ।[२५]

डॉ. रामदरश मिश्र का मत है कि - 'नयी कविता भारतीय स्वतंत्रता के बाद लिखी

गयी उन कविताओं को कहा गया, जिन में परम्परागत कविता से आगे नये मूल्यों, नये भावबोधो और नये शिल्प विधान का अन्वेषण किया गया ।[२६]

अब हम यहाँ उपर्युक्त विचारों के संदर्भ में मिश्रजी की नयी कविताओं का विवेचन एवं विश्लेषण करेंगे और यह खोजने का प्रयास कि मिश्रजी की कविता में परिभाषित नयी कविता से किस प्रकार मेल खाती है ।

नयी कविता के संदर्भ में उल्लेख की गयी समग्र विशेषताए - मिश्र जी की रचनाओं में सहज लक्षित की जा सकती है । नयी कविता की विशेषताओं का अध्ययन निम्नलिखित उपशीर्षकों के अन्तर्गत किया जा रहा है । मिश्रजी ने नयी कविता की विशेषताओं में सच्ची यथार्थवादी दृष्टि, क्षणिक जीवन की सार्थकता, जीवन की आशा-निराशा, युग यथार्थ का चित्रण, धार्मिक राजनीतिक, भ्रष्टाचार का आवरण आदि को परिगणित किया जा सकता है ।

बुध्धिमूलक यथार्थवादी दृष्टि हमारे व्यक्तित्व के संस्कार को बदलती है और उससे अनुभव करनेवाला व्यक्तित्व भी सत्य को सही रूप में पहचानता और अनुभव करता है ।'[२७]

यह बौध्धिक तर्क परिवार, समाज, राजनीतिक धर्म, सभी क्षेत्रों मे लक्षित किया जा सकता है । आज का नया कवि रूढ विचारों को स्वीकार करने को तैयार नहीं है । वह प्रत्येक कार्य को सर्वप्रथम बौधिकता की कसौटी पर कसता है । उसके बाद ही अपने जीवन में स्वीकार करता है ।

यथार्थवादी दृष्टि :-

नया कवि रोमानी घटनाओं, कल्पित आदर्शो, प्राकृतिक या शारीरिक सौंदर्य के चित्रण में ही अपनी सारी शक्ति समाप्त नहीं करता । वह जीवन की असंगतियों - अन्तर्विरोधों को अपनी कविता का कथ्य बनाता है । आज राजनीति, समाज-व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था धर्म संस्कृति सभी क्षेत्रों में भयानक असंगति और अन्तविरोध दिखाई पडते है । सबंधों और मूल्यों में गहरी विसंगति पैदा हो गयी है, मिश्रजी गहराई से इस यथार्थ की पहचान करते हैं । साथ ही वे परिवेश जन्म विविध संवेदनाओं और अनुभवों के मार्मिक चित्र देते है 'अनुभव जगत औ दृष्टि' शीर्षक अध्याय के अन्तर्गत इसका विस्तृत अध्ययन किया जा चुका है ।[२८]

आस्था और अनास्था :-

'सडक' नामक काव्य में एक छोटी-सी अनुभूति चित्रित है -

'और, अब हम
दूरियों के आर-पार से
एक-दूसरे को देखने से बदले

अपने-अपने कमरों में

घुसकर कीवाडे बंद कर लेते है ।'[२९]

'सुखी लोग' नामक काव्य में कवि एक आह-सी भर रहा है । उन लोगों को देखकर जो सीधे-सादे जीवन भोग रहे हैं, जिनका वर्तमान जूता है, टोपी अतीत है एवं जो कोट को दिन की तरह पहनकर घूमते है । कवि ने चाहा कि मैं भी ऐसा करूँ, पर न हो सका, और आज कवि सुखी लोगों को देखकर दुःखी हो रहा है -

'शीत हो या गरमी या हो मेह
भीगकर आते है, कमरे में झट सुखा डालते है देह
कैसा सीधा-सादा है यह जीवन का भोग
कभी-कभी सोचता हुँ -
आह, कितने सुखी हैं ये लोग !'[३०]

औद्योगिकता के फलस्वरूप व्यक्तिवादिता के कारण अपरिचय संत्रास, टूटन, अकेलापन आदि का चित्रण हुआ है । व्यक्ति की आकांक्षाएँ पूरी न होने के कारण निराशा को शिकार हुई है । कवि को चारों तरफ अव्यवस्था दिखायी दे रही है । सांप्रदायिकता राजनैतिक भ्रष्टाचार का शिकार संपूर्ण मानव समाज हुआ है -

'पास के स्टेशन पर एक गाड़ी
देर से चिल्लाती है खुलने के लिए
उसमें कसे लोग
अलग-अलग बुदबुदाते हैं
जिसे न इंजन सुनता है, न लाइन
छोटे-छोटे गन्दे बच्चे
डेलों को ठेलते हुए स्टेशन की और जा रहे हैं
और सोचते हैं -
कहाँ जाती है, ये ढेर की ढेर गाड़ियाँ ?'[३१]

स्वतंत्रता के पश्चात नगरों का विकास हुआ है और गाँव उजडे हैं । इस बात को लेकर 'दो किनारे' कविता में खेद प्रकट किया गया है -

'नदी में एक कच्चा पुल था
पक्के पुल की आशा में तोड़ दिया गया
और सारी नावें
शहरों के सैर के लिए पकड़ ली गयी हैं
दोनों किनारे एक-दूसरे को देख रहे हैं
अपनी-अपनी निगाहो से

बीच में नदी का चौड़ा अन्तराल
हाहाकार करता हुआ बहा जा रहा है ।'[३२]

'अपने में अपने से अलग' कविता व्यक्ति और समाज के आपसी रिश्तों में रिक्तता और टूटन का अहसास करती है, जिनके कारण व्यक्ति के चारों ओर अंधेरा बढ़ रहा है । इस अंधेरे में खोये कवि की चिन्ता सच्ची है –

'लगता है
मैं भी कहीं खो गया हूँ इस अनाम जंगल में
अपने में अपने से अलग
लेकिन कौन है ?
जो रह-रहकर पुकारता है
मेरा नाम ?'[३३]

निराशा ही नयी कविता का सत्य नहीं है, उसमें आस्था, विश्वास और स्वर्णिम भविष्य की झांकी भी है –

'ताल
अधसूखा सोया जल
किनारे बैठा मैं
कंकडियाँ फेंक रहा हुँ
शायद फिर कोई हिलोर उठे ।'[३४]

वैयक्तिकता को नयी कविता की प्रमुख विशेषताओं के रूप में स्वीकार किया गया है । इस दृष्टि से मिश्रजी की कविताएँ नयी कविता के क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बना रही है । वैयक्तिकता के साथ-साथ सामूहिक हित की चिन्ता इनकी कविताओं का मूलाधार है –

'लेटरबक्स में पड़ी हुई चिट्ठियाँ
अनन्त सुख-दुःख वाली अनन्त चिट्ठियाँ
लेकिन कोई किसी से नहीं बोलती
सभी अकेले अकेले
अपनी मंजिल पर पहुँचने का इन्तजार करती हैं
कैसा है यह एक साथ होना
दूसरे के साथ न हँसना न रोना
क्या हम भी
लेटरबक्स की चिट्ठियाँ हो गये है ।'[३५]

नयी कविता पर प्रायः आरोप लगाया जाता है कि वह अनास्था और कुंठा का काव्य है । मिश्रजी एक प्रगतिशील कवि है । प्रगतिशील कवि मानवतावादी होता है । उनमें जीवन के प्रति आस्था होती है । वे निराशा में भी आशा की किरण पालते हैं । विषम परिस्थितियों को उत्पन्न करने वाले तत्त्वों के प्रति मिश्रजी की कविताओं में प्रबल विरोध मिलता है । वह विरोध शहर से थोपा न होकर कवि के आंतरिक आक्रोश से प्रसूत होता है –

'लेकिन देखो
तुमने जिन पतलों में खाकर
उन्हें धूरे पर फेंक दिया है
उनके ढेर में किसी ने चिनगारी रख दी है
और वे तुम्हारी बगल में ही
धीरे-धीरे सुलग रही है.....।'[३६]

सारांश में हम कह सकते हैं कि मिश्रजी की कविताएँ नयी कविता की प्रतिनिधि रचनाएँ है, लेकिन उनमें कुंठा, संत्रास, अति वैय कितकता सूक्ष्म विधान जैसी बातें नहीं मिलती ।

मिश्रजी की कविताओं में प्रबल मानवीय आस्था विद्यमान रहती है । कई स्थानों पर गेयता भी पायी जाती है, पद्यपि नये शब्दों, नये कपमानों, नवीन प्रतीक एवं बिम्ब-विधानों में मिश्रजी सिध्धहस्त है । कवि अपनी कविताओं में अन्तर्जगत से बाहर झांकते है । उसका सूक्ष्म निरीक्षक और परीक्षण करते है और दिशा के रूप में अपना विचार प्रस्तुत करते हैं । व्यक्तिवादी नये कवियों की भांति मिश्रजी अपने अन्तर्मन में ही सीमित रहकर विचरण नहीं करते ।

लम्बी कविता :–

छायावाद युग से लेकर आज तक लम्बी कविता लिखने की परम्परा किसी-न-किसी रूप में चल रही है । पौराणिक, ऐतिहासिक मिथकों को नगी अर्थचता देने की दृष्टि से लम्बी कविताएँ लिखी गयी है । इस दृष्टि से निराला की 'राम-शक्ति पूजा', प्रसाद की 'प्रलय की छाया' धर्मवीर भारती की 'प्रलय गाथा' नरेश मेहता की 'समयं देवता' – जैसी रचनाएँ विशेष रूप सें उल्लेखनीय है । प्राचीन प्रसंगो को आधुनिक संदर्भ से जोड़ने की प्रक्रिया इन कृतियों को सृजन की प्रेरणाभूमि है । देश की प्राचीन गौरवमय विभूतियों को आलम्बन मानकर किसी आदर्शवादी जीवन का प्रक्षेपण करना इन लम्बी कविताओं का उदेश्य होता है । 'पुराणों का हिन्दु जाति बहुल देश के विमागी निर्माण में बहुत बड़ा हाथ रहा है । जाने-अनजाने यहाँ की एक बहुत बड़ी जनता पौराणिक देवताओं के चरित्रों और आदर्शो से प्रभावित और प्रेरित होती है । चेतना के निम्नतम

और गहरे स्तर पर पौराणिक मिथकों का असर रहा है । इस दृष्टि से यह एक विलयस्य सत्य है कि नयी कविता के कवियों ने पौराणिक कथाओं और विश्वासों को युगबोध के स्तर पर पुनः नये ढंग से दुहरा कर अपनी कविता में सजाकर कुछ निर्णय देना चाहा है ।'[३७] समकालीन जीवन-यथार्थ को आधार बनाकर लिखी गयी सर्वाधिक प्रभावशाली लम्बी कविता है - मुक्तिबोध की अंधरि में' इधर की अनेक लम्बी कविताओं को इसी की परम्परा में रख सकते है । मिश्र जी की भी लम्बी कविताएँ इसी परम्परा से जुडती है ।

रामदरश मिश्र ने जो लम्बी कविताएँ लिखी है, उनके नाम है - 'फिर वही लोग', 'गाड़ी जा रही है', 'समय देवता' 'मेरा आकाश', 'बसंत की सुबह', 'एक जंगल है', 'साक्षात्कार', 'गठरी', 'लौट आया हुँ मेरे देश' - आदि । ये कविताएँ 'पक गई है धूप', कंधे पर सूरज - काव्य संग्रहों में संकलित है ।

मिश्रजी ने इन कविताओं में सामयिक यथार्थ को रेखांकित किया है । उन्होने वर्तमान के चित्रण के लिए पौराणिक अथवा ऐतिहासिक प्रसंगो को आधार नहीं बनाया है । इन कविताओं में व्यंग्य की धार बडी तेज है । सामाजिक बदलाव से लगाव रखनेवाली इन कविताओं में सामयिक जीवन की विविधताएँ एवं विडम्बनाएँ मौजूद दिखायी देती है ।

'गठरी' कविता में कवि ने ग्रामीण समस्याओं तथा स्वतंत्रता के मोह-भंग को चित्रित करने के लिए लम्बी कविता का सहारा लिया है । होश संभालते ही कवि को लगा कि कवि के सिर पर गठरी है । लेकिन ज्यों - ज्यों कवि बड़ा होता गया, तो पाया कि गठरियाँ चारों ओर है । गाँव के सभी लोग किसी-न-किसी समस्या से त्रस्त है - ग्रामीण जो भी वस्तु लेकर नगर में जाते है, उसके बदले नगर से जो वस्तु लाते है, उदास मन से लाते है -

'हर रास्ता जो बाजार या करबे की ओर जाता है
उसके सिर पर अनाज या जेवर की एर गठरी होती है
जिसे वह बनिये या चौधरी की दुकान पर जाकर पटक आता है
और एक दूसरी गठरी लिये
लौट आता है उदास लडखडाता-सा ।'[३८]

इस कविता में कवि ने जिन्दगी के उन अनेक पक्षों को उभारा है, जिनसे आज का आदमी जूस रहा है । समस्याओं के असह्य बोझ से लदा मनुष्य इस कविता में देखा जा सकता है -

'होंश संभालते ही मुझे लगा कि
मेरे सिर पर एक गठरी है -
खाद और गोबर की गठरी

फिर किताबों की एक गठरी
फिर सीधा-पिसान की एक फटी गठरी
और सबके बीच भूख और भय की गठरी ।'[३९]

आज के मानव-जीवन की विडम्बना की यह शुरूआत उसके जन्म से हुई है । उस विडम्बना से पूरी-की-पूरी पीढी संघर्ष कर रही है । वर्तमान व्यवस्था आम आदमी के प्रति उपेक्षा का भाव रखती है । इस विषय में कवि ने व्यवस्था की खामियों को सामने लाकर और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के द्वारा युगबोध कराकर मनुष्य के जीवन की जडता को तोडने की बात कही है -

'दम तोड़ते फुटपाथ
खांसते हुए चौराहे
अपनी ही लाश कंधे पर उठाए हुए लावारिस हवाएँ
और बंगला देश और वियतनाम और देश और देश से
उड़कर आते हुए
खून से लथपथ अखबारों के पंख
और फिर
आहत इतिहास के तमाम कटे हुए पन्ने ।'[४०]

आजादी के बाद भी गाँव वालों के दुःख-दर्दो की गठरी का बोझ घटने के स्थान पर बढा है । यह एक सच्चाई है जिस पर कवि ने व्यंग्य किया है -

'किन्तु यह क्या ?
राप्ती तो इसी तरह अपनी कुंडली में
पूरे जबार को लपेटे हुए पड़ी है
और उस गट्ठर को सिर पर उठाए
पसीना पोंछती हुई एक विराट भीड
शहर की ओर मुंह करके खड़ी है ।'[४१]

इस विडम्बनापूर्ण व्यवस्था में कवि ने जन-सामान्य की घुटती हुई जिन्दगी को रेखांकित किया है । सभी अपनी-अपनी जिम्मेदारियों और जीवन की समस्याओं के बोझ से त्रस्त है । ऐसी व्यवस्था के प्रति कवि का आक्रोश इतना प्रबल है कि वह इसे निरन्तर अनेक पंक्तियों में व्यक्त करता चला जाता है ।

लौट आया हुँ मेरे देश लम्बी कविता में कविता का परिवेश गत मोह व्यक्त हुआ है । अपनी जमीन से कटने औ पश्चिम की व्यक्तिवादिता में भटकने का उसे अत्यधिक दुःख है । अपनी संस्कृति और सभ्यता से कटे हुए लोगों की स्थिति कवि की दृष्टि

में त्रिशंकु जैसी है । वातावरण गंदा ही सही, लेकिन उसमें वह अपनी पहचान पाता है ।

'और जब-जब मैं अपने से प्रश्न करता हुँ
तब-तब लौट आता हुँ, तुम्हारे पास मेरे देश
आज फिर लौट आया हुँ ।'[४२]

कवि की 'फिर वही लोग' कविता में समाज के तथाकिथत कर्णधारों के स्वार्थ के लिए सामान्यजन एक साधन है । साधारण जनता मात्र आशाएँ ही लगाये रहती है । उसकी आशाएँ अपूर्ण रहती है । चारों तरफ व्यक्तिवादिता का साम्राज्य है । यह विष गाँवो को भी विषाक्त बना रहा है । कवि को दुःख है कि स्वार्थ एवं द्वेष की भावना अब गाँवो की आत्मीयता को नष्ट कर रही है । व्यवस्था इतनी चिन्तनीय है कि निर्बल और असहाय वर्ग असुरक्षित अनुभव करता है । बड़े-छोटों को निगल जाने की ताक में रहते है । मूलतः इस कविता में नेताओं के स्वार्थ, भ्रष्टाचारिता, असहाय वर्ग की असुरक्षा, कर्णधारों के झूठे वायदे, व्यक्तिवादिता की प्रबल प्रवृत्ति तथा स्वार्थ के लिए खतरे उत्पन्न होने पर देश की सुरक्षा का भय दिखाकर पुनः कुर्सी से चिपके रहने की भावना आदि को कविने अपनी प्रगतिशील दृष्टि के परिप्रेक्ष्य में सशक्त रूप से व्यकत किया है । ऐसी व्यवस्था के प्रति कवि के मन में भयंकर आक्रोश है, जिसे वह निरन्तर बिना रूके व्यक्त करता चला जाता है । यह कविता कई खउड़ो में विभक्त है । असहाय वर्ग की सुरक्षा कवि के शब्दों में देखिए -

'सडक बुदबुदाती है
फिर जा रहे हैं वही लोग जो कल गए थे
उनके दबाव को वह कब से सह रही है
उनकी छांहों से
कट-कटकर भी
वह कब से बह रही है ।'[४३]

नेता अपना स्वार्थ साधने के लिए देश की असुरक्षा का भय निर्माण करता है -

'देखते हो -
ये सब तुम्हारी ओर आ रहे हैं
हां, तुम्हारी स्वाधीनता की ओर
और उठी हुई आवाजे
धीरे-धीरे सीमांत की ओर सरकने लगती है ।'

इसके अतिरिक्त समय देवता, मेरा आकाश, गाडी जा रही, सुबह, अंधकार और हरी रोशनी, नगर छोडते समय आदि लम्बी कविताओं में कवि की जनवादी भावना दृष्टव्य है ।[४४]

गजल :-

रामदरश मिश्र ने अपनी रचनायात्रा के बीच गजलें भी लिखी हैं । यद्यपि उन्होने यह स्वीकार किया हैं कि, 'गजल मेरी मुख्य काव्य शैली नहीं है । उन्होंने अपनी कुछ कविताओं को गजल की शैली में लिखी कविताएँ माना है । उनकी गजलों के मूल्यांकन के पूर्व गजल की विशेषताओं का विवेचन प्रस्तुत करना अप्रासंगिक नहीं होगा । साथ ही साथ हिन्दी में गजल लिखने की परम्परा का विकासक्रम स्पष्ट कर देना उचित होगा ।

गजल की व्युत्पत्ति के संबंध में उल्लेख है कि, 'अरब में गजल नामक एक कवि था, जिसने अपनी सारी आयु प्रेम एवं मस्ति में ही बिता दी । उसको कविताओं का वर्ण्य विषय सदैव प्रेम ही हुआ करता था । अतः कालान्तर में इस गजल नामक कवि के नाम पर इस प्रकार की प्रेमपरक कविताओं को गजल की संज्ञा दी गई ।'

हिन्दी में गजल लिखने की परम्परा भारतेन्दु से ही शुरू हुई । भारतेन्दु, जयशंकर प्रसाद तथा सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने गजलें लिखी है । गजल लिखने की यह परम्परा जानकीवल्लभ शास्त्री दुष्यन्त कुमार, शमशेर बहादुर सिंह, देवराज विनेश, रूपनारायण त्रिपाठी आदि रचनाकारों द्वारा पुष्ट हुई और अब यह सूर्यमान गुप्त, माणिक वर्मा, गोविंदप्रसाद 'सलम', सलभ श्री रामसिंह मोहिसिन जैदी, कुंवर बेचैन और रामदरश मिश्र आदि रचनाकारों द्वारा विकसित हो रही है ।

मिश्रजी का एक मात्र गजल संग्रह 'बाजार को निकले है लोग' है । मिश्रजी की गजलें संवेदना एवं शिल्प की दृष्टि से निरन्तर विकसित होती रही है । प्रारंभ की गजलें गीतात्मक स्तर पर रची गयी है और कालान्तर में इन गजलो की प्रकृति बदलती गयी है । 'कवि ने इन गजलों को गजलनुमा कविताएँ कहा है ।' मिश्रजी ने इन गजलों में गजल की प्रकृति को सुरक्षित रखने का प्रयास किया है । इन गजल में शिल्प की अपेक्षा भावतत्व पर आग्रह अधिक है । भाव पर आग्रह अधिक होने के कारण कथनशैली को बहुत महमियत नहीं दी गयी है । व्यक्ति, समाज और परिवेशगत विडम्बनाएँ इन गजलो में कथ्थ बनकर उपस्थित है । गजलों में व्यंग्य का लीखा स्वर सर्वत्र दृष्टव्य है । अब हम उनकी गजलों का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे ।

कवि का अन्तस् आज की बाजारू संस्कृति औ अजनबीयन पर बेचैन है

'बाजार को निकले है लोग बेच के घर को
क्या हो गया है जाने आज मेरे शहर को ।'[४५]

कवि ने साम्प्रदायिक विद्वेष की भर्त्सना करते हुए लिखा है -

'वह न मंदिर में, न मस्जिद में, न गुरूद्वारे में है
वह पराईपार वाली आँख के तारे में है ।

जीवन की विषम स्थितियों पर भी कहीं - कहीं विचार व्यकत किया है -

हुआ न कुछ भी कहीं सभी कुछ संजोने में
उमर गुजर गयी हँसी के लिए रोने में ।[४६]

आज व्यक्ति और परिवेश के बीच एक अनाम दूरी कायम है । व्यक्ति अपने को अकेला अनुभव कर रही है । उसे एक तरह के अजनबीपन का अहसास हो रहा है -

'धुआ है धूप का छाया कि शाम है यारों
कहा हैं हम, ये कौन-सा मुकाम है यारों ।[४७]

समाज में अनचाही स्थितिया बन रही है । वांछित परिवर्तन एक स्वप्न बन कर रह गया है । कवि को इस बात का दर्द सालता रहता है -

'एक सन्नाटा भयानक सड़क पर बरपा हुआ,
पूछते हैं हम हमीं से क्या हुआ यह क्या हुआ ।'[४८]

वैयक्तिक जीवन के संघर्षो कां चित्रण करते हुए कवि कहता है कि जीवनयात्रा में वह स्वयं ही अपना पाथेय बना । कभी वह दूसरों की सहायता का मुहताज नहीं हुआ-

'बनाया है मैने ये घर धीरे-धीरे
खुले मेरे खाबों के पर धीरे-धीरे ।'[४९]

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते है कि मिश्रजी ने गजल रचना के क्षेत्र में अनुकरण वृत्ति से काम नहीं लिया है । उनकी गजलों में काव्यत्त्व उभरकर आता है । उनकी अन्य कविताओं की तरह गजलों में भी वैचारिकता मुखरित हुई है । वैयक्तिक अनुभूतियों की जगह समाजगत समस्याओं का चित्रण अधिक हुआ है । इनकी गजलें मौलिक, स्वच्छन्द और सहज स्वाभाविक अनुभूतियों की संवाहक हैं ।

कविता में शिल्प का विशेष महत्व होता है । कवि कविता में शब्दों के रख-सवाल, सजावट तथा वाक्य-निर्माण द्वारा जो कारीगरी करता है, वही शिल्प होता है । शिल्प का सम्बन्ध पूरी तरह कला से है । कवि भाव अनुभूति संवेदना, विचार आदि का संयोजन कर कविता की सृष्टि करता है । काव्य और कला, शिल्प की कसौटी पर रखकर उसकी श्रेष्ठता की जाँच की जाती है । शिल्प के माध्यम से कवि अपनी अभिव्यक्ति को प्रखर बनाता है और कविता को एक रूप देता है । शिल्प के विषय में अनन्त मिश्र का मत उल्लेख्य है -

'वास्तव में शिल्प का सम्बन्ध अभिव्यक्ति की रूपरेखा से है । अभिव्यक्ति को यद्यपि कथन से बिल्कुल पृथक नहीं किया जा सकता, तथापि दोनों को दो स्तर पर अध्ययन का विषय बनाना उक्त धारणा के सम्बन्ध में एक उपयोगी विभाजन होगा ।'

रीतिकालीन कवियों ने शिल्प को विशेष महत्व दिया है लेकिन तत्कालीन कविता रूढिवादी काव्य-शिल्प के ढांचे में बंधी थी । आज युग औ परिवेश तथा मानवीय संवेदनाओं के संदर्भ में काव्य-शिल्प की अवधारणा नितान्त परिवर्तित हो गयी है । मिश्रजी की कविता की बनावट को देखते हुए उनके काव्य-शिल्प के मूल्यांकन के लिए प्रयुक्त बिम्ब योजना, प्रतीक विधान, अप्रस्तुत योजना, वर्णनात्मकता, संग्य तथा भाषा आदि को दृष्टि-पथ में रखना उचित होगा ।[५०]

बिम्ब योजना :- (१)

काव्य में भावों-विचारों के मूर्तीकरण की प्रकिया सबल सटीक बिम्ब की योजना से ही पूर्ण हुआ करती है । मिश्रजी इस तथ्य से परिचित है । अतः इनके काव्य में बिम्ब सृष्टि का अपना एक वैशिष्ट्य है । यथार्थ के स्पष्टीकरण के लिए मिश्रजी ने बिम्बों का आश्रय लिया है ।

बिम्ब विधान मूलतः काव्य का चित्र धर्म है । किन्तु इसे अप्रस्तुत और प्रतीक विधान से अलग करके ही समझना चाहिए । बिम्ब के मूल में कवि की आत्मा का प्रसाद है, वह उसके अन्तस की छवियों का अंकन है तथा उसके मर्म की परतों पर लगातार पडते घ्वनि - संवेदनों की प्रतिघ्वनि है । वास्तव में उसके भीतर परिवेश की समस्त दीप्ति तथा उसकी संवेदनाओं और रागात्मक अनुभूतियों की प्रेरणा निहित रहती है । कवि संसार के बाहर बिखरी छवियों को कल्पना के सहयोग से भावना और स्मृति के रंगो में रगता हुआ अप्रस्तुतों व प्रतीकों की सहायता से मूर्त रूप करता है । यह मूर्तिकरण ही बिम्ब विधान की प्रकिया का महत्तर सोपान है ।

बिम्ब शब्दों के माघ्यम से उतारा गया चित्र होता है । जिस प्रकार एक चित्रकार रंगो और रेखाओं के माघ्यम से किसी व्यक्ति, वस्तु, भाव अथवा दृश्य को मूर्त रूप देता है, उसी प्रकार कवि भी शब्द-विधान के द्वारा यह कार्य करता है । अन्तर यही है कि चित्र केवल रेखाओं और रंगो के द्वारा खींचा जाता है, जबकि इस शब्द चित्र में रेखाओं और रंगो के साथ भाव का रहना भी आवश्यक होता है । यह शब्द चित्र पाठक के मन को भावविभोर बनाने की क्षमता रखता है । बिम्ब कितना ही सुन्दर क्यों न हो, यदि वह भाव जगाने में समर्थ नहीं है तो उसकी सफलता पर प्रश्नचिहन लग जाता है ।

बिम्ब शब्द अंग्रेजी शब्द 'इमेज' का पर्याय है । यह शब्द स्वतंत्र या मौलिक न होकर 'इमेज' का हिन्दी रूपांतर है । 'इमेज' और बिम्ब, इन दोनों शब्दों को घ्यान में रखकर विद्वानों ने विभिन्न परिभाषाएँ दी है । डॉ. भगीरथ मिश्र का मत है, 'बिम्ब रचना काव्य का मुख्य व्यापार है । बिम्बों के द्वारा कवि वस्तु, घटना, व्यापार गुण विशेषता, विचार आदि साकार तथा निशकार यथार्थों और मानस कियाओं को प्रत्यक्ष एवं इन्द्रियग्राह्य बनाता है ।' बिम्ब केवल कलात्मक अभिव्यक्ति का ही साधन नहीं होता,

अपितु कवि के व्यक्तित्व को भी प्रतिच्छायित करता है । जनक शर्मा लिखते है - अभिव्यिक्त के एक महत्वपूर्ण और प्रमुख साधन के रूप में बिम्ब का महत्व कम नहीं है । वह किसी कवि के स्वभाव और संस्कारों का भी सबसे अधिक सच्चा दर्पण है । विचार कोई भी कवि कैसे भी ओढ सकता है, पर उसका बिम्ब-विधान उसकी मूल प्रकृति के ही अनुकूल होंगा ।'[५१]

बिम्ब को इन्द्रियग्राहय बनाने की चेष्टा के सम्बन्ध मे। डॉ. प्रेमप्रकाश गौतम का मत है कि - 'वे बिम्ब जो हमारी कल्पना को दृश्य में उपस्थित करते है, साधारण बिम्ब होते है, जो बिम्ब दृश्य उपस्थित करने के साथ हमारी अन्य इन्द्रियों जैसे कि जिहवा, धाणेन्द्रियों, स्पर्श चेतना और नाद चेतना - को भी प्रभावित करते है, वे काव्य-दृष्टि से अधिक उत्कृष्ट हैं ।[५२]

'काव्य-बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानव छवि है, जिके मूल में भाव-प्रेरणा रहती है ।'[५३] डॉ. अनन्त मिश्र लिखते है कि - 'बिम्ब वास्तव में कवियों का मानसी रूपात्मक साक्षात्कार है । दूसरे शब्दों में यह चित्र भाषा की रचनात्मक और ऐंदिक स्तर पर सजग परिणति है । इससे कथ्य में दीप्ति और प्रयोजन में कलात्मकता आती है ।'[५४]

एक ठेठ देहाती मन यंत्रविज्ञान के शिकंजे में जीने को अभिशप्त है । यह व्यथा-कथा केवल रामदरश मिश्र की नहीं है, प्रकृति की गोद गंवा चुके अनेक नगरजीवी बौध्धिकों की है । लेकिन मिश्र जी को अभिव्यक्ति का एक वस्तुनिष्ठ आधार मिल गया है - यात्री । इसकी शख्सियत अजनबी की है और उसका दर्द अनकहा, फलतः रहस्य की एक आभा जगती है । यह रहस्य किसी वाद को लांधकर और दूर चला गया है - रिश्ते का वासता देकर -

दूर ही दूर से बुलाता है,
कोई है पास नहीं आता है ।
उसकी आवाज अजनबी जैसी,
लगता फिर भी युगों का नाता है ।

जो दूर-सुदूर से बुला रहा है, एक अव्याख्येय सम्बन्ध का अनुभव करवा रहा है वह कोई व्यक्ति नहीं, मनुष्य है । मिश्र जी के शब्दतीर्थ का देवता मनुष्य है । यहाँ साध्य और साधक दोनों एक ही हैं - मनुष्य ? एकोडहम् बहुस्याम ? कैसे-कैसे प्रतिरूप मिले हैं मार्ग में । ऊपर का अवकाश उसके मुलायम स्वप्न की अन्तिम पुकारें पी जाता है । एक देहाती टीसन पर यात्री देखता है - बेटे को युध्ध के लिए बिदा देकर एक माँ की सिसकी सूने में भटक-भटक कर टूट रही है । मिश्र जी के विभिन्न संकल्पो में माँ या वृध्धा-विषयक की कविताएँ देखिए । किसी नवयुवक से वसंत का पता कन्या

नहीं पूछती, एक लम्बी प्रतीक्षा के बाद वृध्धा पूछती है । ऐसे क्षणों में नाभिछेद की - कटे हुए सम्बन्धों की बात मौन के माध्यम से व्यक्त होती रही है । युवक वृध्धा के भोले विश्वास को कैसे तोड़े ? वह नहीं कह पाता कि वसन्त को जहाँ आना था, आकर कब का चला गया है ।

कैसा सामाजिक अर्थान्तर सिध्ध हो गया । व्यक्ति-चेतना और सामाजिक यथार्थ के बीच यहाँ कोई अलगाव नहीं 'गिरा-अरथ जल-बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न' वाली बात ! कविता बिम्ब-प्रतिबिम्ब न्याय से जड़-चेतन का भेद मिटा देती है । हमारी रोज-ब-रोज की जिन्दगी से ही मिश्र जी की प्रतीक रचना की सामग्री मिल जाती है । एक परिस्थिति में खड़ा काव्ययात्री क्या देखता है ? एक हाथ से पीतल की प्लेट छूटकर फर्श पर जोर से झनझनाकर चुप हो जाती है । अनेकों ने सहानुभूति से पूछाः 'हाय ! टूट तो नहीं गई ?' इसके समानान्तर एक दूसरी घटना घटित होती है । कोने में एक शीशा गिरा, बिना शोर किए चूर-चूर हो गया - खण्ड-खण्ड टुकडों मे कोई प्रतिबिम्ब कराह उठा । किसी ने देखा नहीं । बस, दो हाथों ने उन्हें सहेजा और खिड़की के बाहर फेंक दिया ! इस प्रकार वह खण्ड़-खण्ड़ प्रतिबिम्ब बाहर हो गया और उस पीतल की झनझनाहट भीतर रह गई ! कैसा विरोधाभास । ऐसे कई विरोधाभासों को अपने जीवन का हिस्सा बनाकर हम जी रहे हैं । कवि साक्षीभाव से सब देखता है, स्वयं समझौते नहीं करता । वह अनैतिहासिक क्षणों को जीता है, एक दो क्षण जीवन्त हो उठे तो उसे और क्या चाहिए ?

सातवें - आठवें दशक की हिन्दी कविता की उपलब्धियों का सम्पूर्ण लेखा-जोखा तैयार होनें पर केदारनाथ सिंह और रामदरश मिश्र जैसे कवि हासिये से हटकर उन मूर्धन्य कवियों के बीच लक्षित होंगे, जिन्होंने अपने संवेदन धन बिम्बों के द्वारा सहृदयों से सीधा सम्पर्क स्थापित किया । इन्हे समीक्षक नामक बियौलियों की आवश्यकता नहीं रही ।

'स्नेह निर्झर बह गया है,
रेत ज्यों तन रह गया हैं'[५५] **- निराला**

जैसी पंक्यिों को सहृदय गुनगुनाने लगे यह भी सफल संप्रेषण की कसौटी है । मिश्र जी के यहाँ ऐसी पंक्तियाँ हैं, जिन्हे हम जाने-अनजाने गुनगुनाने लगे :-

खो गयीं सब यात्राएँ साथ की
रास्ता ही रास्ता अब रह गया ।
राह पांवों में पिन्हा कर मेरे
दीठियों-पार मुस्काराता है ।
रच रेती पर चित्र पवन से
चले गए ये दिन उनमन-से ।

उपर्युक्त तीनों उदाहरणों में जो क्रिया है, उसका संकेत गति विषयक है । प्रथम और तृतीय उदाहरण में भाव खोने का है द्वितीय में प्रेरित होने का । तीनों से हम प्रभावित होते है, क्योंकि इनका बोध रागात्मक है और रूप इन्द्रियगम्य । बिम्बों का चित्रात्मक होना पर्याप्त नहीं, उनमें हमारी जीवन्त सत्ता के रूप निरूपित होने चाहिए । मिश्र जी के बिम्ब सचेतन सृष्टि का हिस्सा बनकर प्रत्यक्ष होते हैं, इनकी सहजता विरल है –

हांफती है शाम अपने से कटी
किसी आँधी बीच टूट पंख-सी

इस दृश्य – बिम्ब में गति भी है –

नारंगी सी गंध हवा में भाती है,
चुप्पी है यह अजब कि छू – छू जाती है ।

यहां ध्राणेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय का इन्द्रिय-व्यत्यय विरल है ।

फिर अपनी पीठ पर भारी कदमों की आहट महसूस करूंगा ।

तुम्हारी परछाइयों का बहाव
अनजाने ही मेरे भीतर बहता रहा ।[५६]

देश के यथार्थबोध को चित्रात्मक एवं गत्यात्मक बिम्बों के द्वारा आलेखित करके मिश्र जी ने एक नीरस से कथ्य को स्पर्शक्षम बनाया है ।

कितना बड़ा हो जाता है ।
सन्नाटे में अंधकार का अहसास ।
जब सब-कुछ सोया होता है आसपास

एक विस्तार को यहाँ रूप मिला है । सन्नाटे के अहसास को अंधकार के द्वारा दृश्यात्कता प्राप्त होती है ।

मिश्र जी के काव्य – बिम्ब पाँचो इन्द्रियों और छः ऋतुओं का उत्सव बनकर आते हैं । गंध और स्पर्श के अनुभव भी इन्द्रियगोचर होते हैं । बिम्बों की भाषिक रचना की खूबियों के कारण एक इन्द्रिय का अनुभव दूसरी इन्द्रिय का विषम हो सकता है । उपर्युक्त उदाहरणों से यह अनायास फलित होता है ।

पच्चीस वर्ष दिल्ली में बिताने के बाद मिश्र जी अहमदाबाद के अपने एक निवास की दिशा में मुडते हैं और बदभाव की झाँकी करते ही स्मृति तुलना के लिए प्रेरित करती है –

हसीन पत्थरों के जंगल में
खोजता हुँ अपना वह खुरदरा मकान
जिसका दीवारों पर

मेरी पुतलियों ने न जाने कितने नाम लिखे थे ।
बल खाते धुएँ के चक्रव्यूह में
खोजता हूँ मेंहदी के वे झाड़
जो मुझे आते - जाते पुकारते थे अपनी साँसों से ।

साँसो से पुकारना, शब्दों से नहीं - यह सूक्ष्म अनुभव मेंहदी के झाड़ के सम्बन्ध में अपूर्व है । मेंहदी के झाड़ से सटकर गुजरने पर एक उष्मापूर्ण उच्छ्वास का अनुभव होता है और इनकी पंक्तियों में छिपा जो रंग है वह भी हमारे अस्तित्व के किसी अणु-परमाणु को कभी न कभी रंग चुका है । यहाँ दो विरोधाभास भी उल्लेखनीय है - हसीन पत्थरों का जंगल और उसमें अपने मकान का खुरदरापन, धुएँ का चक्रव्यूह और उसमें मेंहदी की पुकार । एक संकुल एवं मौलिक सम्बन्ध उभारने की क्षमता मिश्र जी की बिम्ब - योजना ने व्यक्त की है ।[५७]

बिम्ब परस्पर संकलित होकर समवेत स्वरों में संवेदना जगाएँ या मुक्त साहचर्यो द्वारा कवि की अनुभूति को व्यंजित करें - दोनों रचना-रीतियों मिश्र जी की कविता में लक्षित होती हैं । संवेदना के स्वरूप एवं कथ्य के द्वारा रीति निर्धारित होती है, यहाँ प्रयोग के हेतु कभी प्रयोग नहीं मिलेगा । शिल्प के अकारण प्रयोगों ने मिश्र जी को कभी लुभाया नहीं और जुटिलता - दुर्बोधता से ये निरन्तर मुक्त रहे । यात्री के सामान की तरह इस कवि ने भी कभी अतिरिक्त उपकरणों का भार ढोया नहीं ।

दिशाएँ बन्द हैं
आकाश उडता फडाफडाता है
वही फिर लौट आता है

आँधियाँ कल जो इधर से जा रही थीं
जा नहीं पायीं
हाँफती है बन्द बोझिल कुहासे - सी
एक परछाई
दिशाएँ बन्द है
उस पार से दीवार को कोई हिलाता है
थका-सा लौट जाता है

'दिशाएँ बन्द हैं' रचना सुग्रथित बिम्ब-विधान का विरल दृष्टान्त है । यहाँ केन्द्रीय क्रिया है विफल लौटने की । दिशाओं का बन्द होना एक लाक्षणिक प्रयोग है ।

वास्तव में दरवाजे बन्द होते है, दिशाएँ नहीं । संकेत है - संभावनाएँ नजर नहीं आतीं । जो एक शून्य अवकाश है, वह आकाश फडफडाता दिखाई दे, उस पार से

इस काल्पनिक दीवार को कोई हिसाने लगे, चिरन्तन माना जाता समय पलछिन में बँट जाए और मछुआरे की तरह पकडने में विफल सूर्य कन्धे पर जाल रखे लौट जाए ये सारे क्रियाशील बिम्ब भावान्विति के द्वारा भावक को प्रभावित करते हैं । दो दशक पहले मैं ने इस रचना का गुजराती अनुवाद किया था, जो नई पीढी के सजग कवियों को पसन्द आया था । उन दिनों उमाशंकर जोशी जी ने कविता के अनुवाद तथा आस्वाद को लक्ष्य करके 'संस्कृति' (सन् १९७१ दिसम्बर) का विशेषांक संपादित किया था, जो बाद में 'काव्यापन' नाम से ग्रन्थस्थ हुआ था । उसमें अज्ञेय जी की 'कालेमेग्दान' तथा श्रीकान्त वर्मा की 'शोक' कविताओं के साथ मिश्रजी की 'जंगल' रचना का विश्लेषण इस प्रकार है –

यहा तो बन्द जल में तैरती है मछलियाँ
बन्द हवाओं पर टँगे है मकान
जैसे कुहरे पर आकाश
बन्द खुशबुओं को बेचती फिरती हैं रातें
कहाँ है वह जंगल
जहाँ से कभी एक बार गुजरा था ?[५८]

अतियथार्थ (सुरि्च्यल) अनुभव का आलेखन करने के स्थान पर रचनारीति (टेकनिक) के रूप में इसका प्रयोग करके प्रस्तुत कविता में वास्तव की मार्मिक व्याख्या करना कवि का लक्ष्य है ।

सीमित ही नहीं परन्तु बध्ध, निहित हेतुओं द्वारा व्यवस्थाप्राप्त जगत कवि के सामने है । मछलियाँ बन्द जल में तैरती हैं सीमाओं ने सहज गति को अवरूध्ध किया है । संवेदनांओ का प्रागट्य स्वतंत्र नहीं रहा । जल, हवा, कुहरा – ये सब विश्रृंखल नजर आते है, संतुलित लगते है केवल मकान । ये मकान टँगे हुए हैं – फाँसी पाए से । खुशबुओं को बेंचती रातें स्त्रियों के संकेत देती हैं । खुशबू या प्रकाश को बेचना जीवन को सीमित एवं प्रदूषित करना है । जंगल का विपर्यय है यह सारी क्षुद्र और तुच्छ सृष्टि । यहाँ जंगल का एक दृश्य नहीं, अनुभव है जंगल को कविने देखा भर नहीं, वह उसमें से गुजरा है । कहाँ है वह जंगल ? – प्रश्न का वजन महसूस होता है ।

सडके, दुकाने, स्कूल – बेहतर जीवन के लिए अस्तित्व में आये परन्तु आज के यंत्र वैज्ञानिक युग में जीवन का हास सूचित करते है ।

कविता के तीसरे चरण में जंगल आग लेकर लौट आता है । कोई कवि इसी संवेदना को व्यक्त करने के लिए जंगल के कटने की क्रिया का विनियोग करता, मिश्रजी ने आग के द्वारा व्यापक तथा गहरी चोट पहुचाई है । निहायत विरोधी है आग जंगल के निबिड़ अंधकार की । जंगल का समूचा पन जो हमारे स्मृति – कोश में सुरक्षित या, वह हम भी भीतर जलते जंगल को गुजरता अनुभव करते हैं ।

तब ऐसा क्यों लगता है
कि जंगल मे जो जलती आग छोड़ गया था
वह रात के सन्नाटे में
जल-जल उठती है
और पूरा का पूरा जलता हुआ जंगल
मुझमें से गुजरने लगता है ।

रचना के प्रथम चरण में काव्यनायक जंगल से गुजरता है तृतीय चरण में जंगल काव्यनायक से भीतर से गुजरता है । बीच में है आज का समाज, जो जिम्मेवार हैं विपरीत स्थिति के लिए । सृजनशील अनंत शांति से जलते जंगल की भव्य शून्यता कितने कम शब्दों में यहाँ व्यक्त हो पाई है । इस बोध को सौन्दर्यानुभूति तक पहुँचाने मे वास्तविक जल और स्वप्निल जंगल के निर्देशों से जगती रहस्यात्मक अनुभूति का जो गौए योगदान है, उसे भी विदग्ध पाठक पहचान लेंगे । अतियथार्थ की रचनारीति के बावजूद यहाँ जो सादगी है, वह धोखा दे सकती है, आप आगे बढ़ जाएँ और कविता मुस्कराती खड़ी रह जाए ।[५९]

'दिन एक नदी बन गया' रामदरश जी की छोटी-छोटी कविताओं का संगह है, बल्कि कहा जाए तो वे छोटी-छोटी कविताओं के कवि हैं - प्रगतिशील चेतना से सम्पन्न । यहाँ यह बात ठीक से लक्षित की जा सकती है कि उनकी कविता सामान्यता किसी एक 'बिम्ब' के सौन्दर्यबोध पर आधारित होती है, सधन 'इमेजरी' और आनुभूतिक संरिलष्टता उनकी कविताओं में प्रायः नहीं मिलती । कविता के बेहतर शिल्प के लिए वे वैसा उद्यम भी करते नहीं दीखते, जैसा उद्यम आज के कवियों में दिखाई देता है । कभी कभी तो रोजमर्रा के 'रिमार्क्स' तक उनकी कविता में जगह बना लेते हैं । उनके कवि-मन की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति ही बन गयी है कि वे किसी एक अथवा एकाधिक बिम्बों को लेकर ही कविता रचने को उद्यत हो उठते हैं । इसी लिए कभी - कभी उनके कथ्य की संवेदना उतनी प्रगाढ़ नहीं बन पाती और उनकी अनुभूति दृश्य-स्तर पर हीं फिसल कर रह जाती है । उनकी प्रगीतात्मक चेतना भी इसकी एक वजह है, जो उनसे ऐसी कविताएँ लिखवा लेती है ।

'दिन एक नदी बन गया' की - 'पता' 'मौसम', 'चूहे', 'इन्तजार' 'अस्पताल' 'कल्पवृक्ष', 'जूलूस कहाँ जा रहा है' की - 'चिट्ठियाँ', 'बसंत', 'हाथ', 'प्रतिमान', 'बहाना' 'फर्क', 'कधे पर सूरज' की - 'कवि-कर्म', 'बाहर तो बसंत आ गया है, 'बहती रही नदी' 'बारिस में भीगते बच्चें की - 'हाथ', 'यह किसका घर है' 'अपरिचिय', 'उत्तर आधुनिकता', 'हम दोनो', 'साथ-साथ' (दोनों लगभग एक-सी अनुभूति की कविताएँ हैं) 'बहुत दिनों बाद', 'केवल मैं नहीं हुँ', 'मैं ने तो कहा था' (दोनों लगभग एक ही भावबोध की कविताएँ है) -

'दिन एक नदी बन गया'

चारों ओर काँटो का जंगल है
और भीतर कहीं
एक डरी हुई लता है ।
जाओ, चले जाओ
यही उसके घर का पता है ।

–'पता'

'कंधे पर सूरज'

आईने में गिरती सारी सड़क को
छायाएँ .....
छायाएँ .....
छायाएँ .....
अंत में
मैं इन सारी कुरूप छायाओं को बटोर कर
समाज पर दिखता हुँ
और कविता करता हुँ
और न जाने क्यों
खुद आईने के सामने आने में डरता हुँ ?

– 'कवि कर्म'

'बारिश में भीगते बच्चे'

न मैं तुम्हें जानता था
न तुम मुझे
न मैंने तुम्हारा नाम – धाम पूछा
न तुमने मेरा
न जाने कहाँ से तुम आए
और मेरे बुझे अकेलेपन के सामने
चुपचाप बैठ गए
मैंने देखा कि
अंधेरी रात में कहीं एक मोमबती जल उठी है ।

– 'अपरिचय'

'जूलूस कहाँ जा रहा है' -

वाह,
वे कितने महान कवि हैं
पंक्ति-पंक्ति को सादगी में ढाला है
वाह,
वे कितने महान कलाकार हैं
पंक्ति-पंक्ति रहस्यमय अर्थो का जाला है
वाह,
वे कितने महान कवि हैं
उनकी पंक्ति-पंक्ति में आग हैं
'प्रतिमान्'

आदि ऐसी ही कविताएँ हैं, जो भावात्मक प्रतिक्रियाओं और प्रायः किसी एक बिम्ब के सौन्दर्य से बनी बुनी हैं - यद्यपि ऐसी कविताएँ किसी एक पद अथवा एक बिम्ब पर आधारित होकर भी आस्वाद्य है, चाहे यह आस्वाद क्षणिक ही क्यों न हो । उनकी 'चूहे' और 'इन्तजार' शीर्षक कविताएँ देखे :-

'चूहे' :-

सावधान
चूहे फिर उतरा गये हैं सडक पर
जल्दी ही घरों में प्रवेश करेंगे
अपनी-अपनी किताबें संभाल लो
ये गोदाम या तिजोरी नहीं काटते
केवल किताबें काटते हैं
क्योंकि उनमे इनसे बचने
या मारने के उपाय लिखे होते हैं

'इन्तजार'

हर चौराहे पर
दुर्घटनाग्रस्त होकर तड़प रहा है एक देश
और हम
डॉकटर के बदले
पुलिस का इन्तजार कर रहे हैं ।
('दिन एक नदी बन गया' से)

रामदरश मिश्र की कविताओं में मानवीय समर्थन के पर्याप्त संकेत मिलते है । बतौर लेखक वे मेहनतकश मजदूरों किसानों और आम नागरिकों से अपना सरोकार स्थापित करते है । उनके दुःख-दर्द को अपनी लेखनी में आत्मसात करते है । कामकाजी स्त्रियाँ, गृहिणी, लडकी, बच्चों और विभन्न दलित वर्ग के चरित्र उनकी कविताओं में बार-बार आते हैं । इनके लिए कवि की सहानुभूति इतनी मार्मिक होती है कि आँखे ननम हो उठती है । उनकी कविता के हवाले से कहा जा सकता है कि धीरोदात नायक उनकी कविता का विषय कभी नहीं रहे, बल्कि 'लोकराम' - ('दिन एक नदी बन गया') जैसे ग्राम्य चरित्र उनकी संवेदना से जुड़ते हैं -

'<u>लोकराम</u>'

लोकराम,
तुम मर गये
लेकिन तुम्हारे सपने
फुटपाथ पर बिखरने से पहले
हजारों आँखों द्वारा लोक लिये गये
वे सपने अब सपने नहीं रहे
वे लोहे की शफल में अपने को ढाल रहे हैं
पहलें उन्हें आँखें पालती थीं
अब वे आँखो को पाल रहे हैं ।

समग्रत ! उनकी कविता गाँव से शहर में आ बसे कवि की ग्राम्य चेतना सम्पन्न कविता है । इसका अर्थ यह नहीं कि उन्हों ने कविताओं में गंवई शब्द या पदावलियाँ टांक कर उसे लोक-रंजित बनाना चाहा है, बल्कि वे उस ग्राम्य-चेतना और कस्बाई संवेदना के कवि है, जो नगर संस्कृति का विरोध इसलिए करती है क्योंकि वह आज अजनबियत, उपमानवीयता और निरस जीवन का पर्याय बन गयी है ।

'<u>कंधे पर सूरज</u>' -

कोयल से मैं ने कहा -
गाओ
कुछ सन्नाटा करे
वह चुप रही ।
मैने कहा -
मेरे पास आओ
कुछ सन्नाटा करे
वह डाल पर बैठी रही ।

मैं ने कहा -
अच्छा सुनो मैं ही गाता हुँ
उसने सहमी निगाहों से चारों ओर देखा -
और एकाएक उड़ गयी.....
- 'बसन्त'[६०]

'बसंत' रामदरश मिश्र की कविता में एक अनिवार्य उपस्थिति है । उनके हर कविता संगह में बसंत की एकाधिक कविताएँ अवश्य शामिल होती है । 'कंधे परर सूरज' में 'बसंत की सुबह', 'बसंत' तथा 'बाहर तो बसंत आ गया है', 'दिन एक नदी बन गया' - में 'बसंत' - 'जुलूस कहाँ जा रहा है' में 'बसंत' - 'आग कुछ नहीं बोलती' में 'बसंताभास' तथा 'बसंतः आठ कविताएँ' इसका प्रमाण है ।

'दिन एक नदी बन गया' -

हम कब से प्रतिक्षा में थे उस वसंत की
जो हमारे उपवनों के बीच
सुगंधित हवाओं का एक सेतु बन जाता है
हम बोले या न बोलें
हमारे उपवनों के फूल
एक-दूसरे से बोलने लगते हैं
अनजाने काँपती पंखडियों से
अपने भीतर का राज खोलने लगते हैं
और लगता है कि
एक रंग-बिरंगा फूल बन गया है ।
- 'बसंत'

इनके अलावा 'फूल', 'आग', 'पेड़', 'दिन', 'मकान', 'चलो दरवाजा खोल दे' - आदि कविताओं में भी प्रायः बसंत के एकाधिक बिम्ब अवश्य मिल जाते है ।

'बसंत श्रृंखला की उनकी दशाधिक कविताओं में 'बाहर तो बसंत आ गया है' तथा 'दिन एक नदी बन गया' में संग्रहीत 'बसंत' शीर्षक कविता विशेष उल्लेखनीय है । ऐसा लगता है कि कवि-मन प्रकृति के सान्निध्य से उल्लासित हो उठता है । वह उसे जीवन का पर्याय मानता है । 'बसंत' कविता श्रृंखला की एक अन्य कविता दृष्टव्य है -

कहाँ से आयी मकान में यह खुशबू
मैने तो जाते समय इसे चारों ओर से
बन्द कर दिया था

लगता है कोई झरोखा खुला रह गया था
और कहीं कुछ खुला रह जाये
तो बसंत की हवा को
वहाँ आने से कौन रोक सकता है ।[६१]

– 'आग कुछ नहीं बोलती' से

यद्यपि वे जानते हैं कि दरवाजे बन्द कर देने भर से बसंत की खुशबू लौट नहीं रजाती, वह खुले झरोखों से आ ही जाती है । यहाँ उनका कथन उनकी वसंत प्रियता को इंगित ही कर देता है । लोग इसे बेशक उनकी कमजोरी माने, किन्तु उनकी कविता में बसंत के लिए जगह ही जगह है और वे इसे खुले मन से स्वीकार भी करते है । बसंत के प्रति कवि के मन में जो आसक्ति और रूमानी भाव रहा है, उसके आधार पर होना तो यह चाहिए या कि बसंत के इन्तजार में कवि के घर के दरवाजे रात–दिन खुले रहते, किन्तु कवि के अनुसार कोई झरोखा ही बसंत के आनें के लिए खुल सका है और इस पर भी कवि को सन्देह है । केवल झरोखा खुले रह जाने पर तो यहाँ बसंत पर दर्जनों कविताएँ मौजूद हैं और यदि घर के सारे दरवाजे खुले रह गये होते तो हम यहाँ कवि के किसी बासंती महाकाव्य की चर्चा कर रहे होते ।

उनकी कविताओं में जहाँ मनुष्यता – विरोधी स्थितियों, राजनीतिक छल–छदम् के प्रति गंभीर चिन्ता मिलती है, वहीं उनके गीतों तथा लालित्य पूणै कविताओं में उनकी उच्छल हार्दिक संवेदना के दर्शन होते है । परन्तु इन सबके बावजूद रामदरश जी का कवित्व वहाँ अधिक सहज और मोहक प्रतीत होता है, जहाँ वे गाँव, देहात तथा देशज संस्कार के बिम्बों के साथ सामने आते है । बलिक कहना तो यह होगा कि उनके कवि की मूलभूत संवेदना में विश्वसनीयता और आत्मिक लगाव के ऐसे चाक्षुष बिम्बों की अर्थ–बहुल पूंजी छिपी है । उनके यहाँ तनाव की एकरसता नहीं है, बल्कि जीवन के विभिन्न प्रसंगों, अनुभवों और स्थितियों की वैविध्यपूर्ण समरसता है । वे विषयों को एक सहज कवि की तरह उठाते है तथा उन पर अपने कवित्व का भार नहीं लदने देते । बड़े से बड़े तनाव और चिन्ता विषयक मुद्दों को भी वे इतने सलीके से उठाते हैं कि हम बिना उनके कवित्व से आर्तकित हुए उनकी बात समझ लेते है ।

मिश्रजी की लम्बी कविताएँ कथाश्रयी नहीं है । वे अनेक परिस्थितियों, प्रसंगो एवं संदर्भो से हमारे समाज और राष्ट्र के विश्रृंखलित एवं विडम्बनापूर्ण रूप को उजागर करती है । वे स्थितियों के तनावों, मूल्यों की टकराहटों एवं संवेदनाओं के विरोधाभासों से गुजरती है और इसीलिए वे अपने भीतर से ही कई प्रकार के रचना शिल्प का निर्माण कर लेती है । प्रायः ऐसी कविताएँ बिम्बात्मक है और ये बिम्ब हमारे अत्यन्त निकट है, इसलिए इन में खुलापन और ताजगी है ।

ओह,
अब तो जल में झाँकने से डर लगता है
कि कहीं अपनी परछाई की जगह
एक मगर न दिखाई पड़ जाय
किसी के विरूध्ध आस्तीन चढ़ाने में
खतरा महसूस होता है कि
कहीं उसमें पलता हुआ कोई साँप न निकल आये ।

इस लिए इन दिनों
न कोई जल में झाँकता है
न आस्तीनें चढ़ाता है ।[६२]
– 'कंधे पर सूरज' से

मिश्रजी की लम्बी कविताओं मे 'साक्षात्कार' कविता बड़ी ही सशक्त है । यह कविता कथाश्रित न होकर बिम्बात्मक है । इस कविता में कवि ने जीवन की जटिल संवेदनाओं, विषमताओं, विसंगतिपूर्ण परिस्थितियों, विविध टकराहयें के स्वरों, मनःस्थितियों के तनावों एवं यथार्थ की चुनौतियों के विभिन्न पक्षों को चित्रित करने का प्रयास किया है ।

'नदी बहती है' कविता में नौकरशाही के तहत पनपते भ्रष्टाचार का बिम्बात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया है –

'हंमेशा आकाश से झरती है एक नदी
और हंमेशा ऊपर ही ऊपर कोई पी लेता है
धरती प्यासी की प्यासी रहती है
और कहने को आकाश से नदी बहती है ।'

'पता' कविता में समाज के व्याप्त भ्रष्टाचार के बीच जिन्दगी जीने वाले सही इन्सान का परिचय मिलता है – इसी प्रकार 'मौसम', 'धरौं दे' 'वह', 'माँ' – आदि कविताओं में व्यक्ति–चित्र यथार्थ की भंगिमाओं के साथ चित्रित है –

पेड़ पर बैठी हुई चिड़िया
जब गाते–गाते एकाएक रूक गयी
और बिना फल के बोझ के ही
डाल
एक बार काँपी और झुक गयी
तो मुझे लगा कि मौसम बदल रहा है ।
– 'दिन एक नदी बन गया' से

'हर दिन आता है
कुछ नये संकल्प लेकर
और शाम को छोड़ जाता है
रेत ही रेत
और हम हर सुबह
उस रेत में धरौंदे बनाते हैं ।'

– 'दिन एक नदी बन गया' से

ये दर्द-भी अंगुलियाळ
ये सुबह-भरी आँखे
जहाँ कहीं भी है
मेरी माँ है ।
माँ जब तक तुम हो
मैं मरूँगा नहीं ।

– 'दिन एक नदी बन गया' से

'दिन एक नदी बन गया' की छोटी कविताओं को पढने से यह ज्ञात होता है कि कवि की यथार्थ की पकड़ सधन अनुभूतियों एवं गतिशील कल्पनाओं का संयोग पाकर अधिक प्रभविष्णु बनती गयी है । परिवेश का यथार्थ प्रतीकात्मक बिम्बो में व्यक्त होता है । –[६३]

मिश्रजी ने यूं तो कहानी, उपन्यास, समालोचना आदि साहित्य के क्षेत्रों को समृध्ध किया है, किन्तु वे स्वयं अपनी सफलता एवं सार्थकता कवि या गीतकार होने में ही मानते हैं । उनके काव्य-संग्रहो में हमें सुन्दर बिम्ब योजना देखने को मिलती है । माना जाता है कि यदि कवि प्रकृति से संबंध रखता है, तो बिम्ब सुन्दर रूप से उसके काव्य में आ सकते है । मिश्रजी प्रकृति, प्रणय और जन-जीवन के कवि है और माकर्सवाद से प्रभावित भी है । अतः उनके काव्य में विभिन्न प्रकार के बिम्ब दिख पडते है । मौलिक बिम्ब विधान की दृष्टि से डॉ. मिश्रजी की बिम्ब सृष्टि को इन विभिन्न वर्गो के बिम्बों में देखा जा सकता है – जो इस प्रकार है ।

(अ) शब्द बिम्ब :–

'अभिव्यक्ति सापेक्ष मूर्त विधान का सर्वश्रेष्ठ रूप है । इस बिम्ब विधान में एक शब्द को अर्थ गर्भ प्रेषणीयता से अति भाराक्रांत कर किसी सन्दर्भ में इस प्रकार संयोजित किया जाता है कि उसी शब्द की अर्थातिशय से संपूर्ण सन्दर्भ चमत्कृत हो जाता है ।'[६४] डॉ. मिश्रजी की कविताओं में शब्द-बिम्ब के अनेक उदाहरण सहज सुलभ है –

'गाड़ी की तेज गति
मुझे दबोचे भागी जा रही है
आगे.....आगे.....आगे ।'[६५]

इन पंक्तियों मे 'आगे' शब्द के अर्थ से अति भाराक्रांत कर उसकी तिहरी आवृत्ति से गाड़ी की गति की तीव्रता को व्यक्त किया गया है । इस प्रयोग से संपूर्ण संदर्भ चमत्कृत हो गया है ।

इन पंक्तियों से यह भी तथ्य उजागर होता है कि बिम्ब-विधान कभी-कभी शब्दाश्रित भी हुआ करता है । इस शब्दाश्रित बिम्ब-विधान के दो रूप हो सकते है - (१) भाव बिम्ब और (२) ध्वनि बिम्ब :-

जैसे -

'हरसिंगार की डाली तूने झकझोर दी ।
फूल जो कि रात भर झरे
वे भी तेरे थे
डाली पर जो रहे भरे
वे भी तेरे थे
प्रीति की प्रतीति हाथ क्यों तूने तोड़ दी

इन कच्चे फूलों का
दर्द महमहा गया
आँचल तेरा जैसे
भोर में नहा गया
प्यास खींच साँसो की दिशा-दिशा बोर दी ।'[६६]

- 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' से

इस पंक्ति में 'हरसिंगार' शब्द अपने महके फूलों से भाव छवि को तो उजागर करता ही है, किसी की प्रीति का भाव और उनके रातभर झरते रहने का भाव जुड जाने से वही ध्वनि-बिम्ब की सृष्टि भी करता है ।

(आ) वर्ण बिम्ब :-

जहाँ वर्णो की विशिष्ट योजना और संचयन से अर्थगर्भित और व्यंजक बिम्बों की सृष्टि होती है, वहाँ हम उन्हें 'वर्ण बिम्ब' कह सकते है, जैसे -

'स्फीत खेत चाँद
हहर उठा सागर हो जैसे किस मंथन से
ह.... ह.... ह.... हा.... स.... ह.... ह.... हा.... स....

दौड़ा तट तोडता हुआ

भागा मै..... ।'[६७]

इन पंक्तियों में ह.... ह.... ह.... हा.... स.... के वर्णो से एक सुन्दर वर्ण बिम्ब घ्वनित हुआ है । इसी तरह का एक अन्य उदाहरण देखें -

पेडों पर उल्लू मगन हो गाते रहे -

घूं घूं घूं

रह-रहकर पक्षी किसी भय से चिल्लाते रहे -

काऊं..... किच..... किच..... किच..... किच..... काऊँ.....

किया ।'

इन पंक्तियों में उल्लू और अन्य पंछियों के स्वर जिन वर्णो से अंक्ति किये गये है उनको हटा देने पर सारा संदर्भ और सौदर्य गायब हो जायेगा ।[६८]

(इ) समानुभूतिक बिम्ब :-

डॉ. मिश्रजी के काव्य में समानुभूतिक बिम्ब योजना भी व्यवस्थित क्रम से मिलती है । प्रायः देखा जाता है कि मानवीकरण भाव और आत्मनिष्ठ मनः स्थिति के कलात्मक प्रयास मूर्त तथा बिम्बात्मक धरातल पर अधिष्ठित होने के बाद समानुभूतिक बिम्बों का रूप लेते है । इसी तरह समानुभूतिक बिम्बों में ऐसा तादात्म्य चित्रण मिलता है जो संवेदनशील और इंद्रिय ग्राह्य होता है । श्रव्य और दृश्य विचारक और वस्तु और आश्रय तथा आलम्बन परस्पर गुफित हो मानव-पटल पर एक हो जाते है और एक नये सौन्दर्ग की सृष्टि करते है । ऐसे अनेक बिम्ब मिश्रजी के काव्य में देखे जा सकते है; जैसे -

'एक गुस्सा मुझ पर चीखता है

मार खाया एक कुत्ता

भूंकता हुआ गुजर आता है

सामने गली की ओर ।'[६९]

इन पंक्तियों में गुस्से का चीखना और उसकी मार खाये कुत्ते के रूप में भौंकते हुए गली की और गुजर जाना समानुभूतिक बिम्ब की सृष्टि कर रहा है । ऐसे ही रूई बिम्ब दृष्टव्य है -

'पीठ पर अंधेरे का बोझ लादे

आकाश से उतरता है

थिगलियों भरा दिन

चौराहे - चौराहे पर खड़ा होकर सोचता है कहाँ

जाऊँ ?

'यह बरखा की सांस
गगन में ये उदास बादल मटमैले
फैले है छाया चित्रों से
अन्धकार की छाँह उगलते ।'[७०]

(ई) व्यंजना - प्रवण सामासिक बिम्ब :-

व्यंजनाप्रवण सामासिक बिम्बों की खास पहचान यह है कि इनमें एक उत्पेक्षा सुलभ कसावट रहती है । ये विस्तृत न होकर संक्षिप्त होते है । शाम का एक दृश्य कितनी जल्दी दिवस का पटाक्षेप करता दीख पडता है यह चित्र इन पंक्तियों में बडे ही आकर्षण रूप में सामने रखा है । इसमें आज के सुविधापरस्त व्यक्ति का सत्य व्यंजित है, जो सुरा लिए शाम (सुविधाओं) के मिलते पी सूरज (मूल्यों) को झूठे से अलविदा कह देता है -

चलते-चलते रास्ते में मिल गयी
सुरा लिये शाम
अच्छा भाई सूरज राम-राम ।'[७१]

इसी तरह 'बैरंग बेनाम चिट्ठयाँ' नामक संग्रह की 'इन्तजार' शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ सीटी बजाकर गुजर जाने वाली ट्रेन की चीख के बाद रेलवे लाइन के किनारे के एक गाँव के प्रान्तर का बिम्ब इन शब्दों में निर्मित करती है -

न कोई चढता है
न कोई उतरता है
बस सीटी की एक चीख...
पहियों की उदास घरघराहट
इसका प्रान्तर
अधसरे पंछी की तरह
एकाएक जोर से थर्राकर
चुप हो जाता है ।[७२]

(उ) प्रसृत बिम्ब :-

प्रसृत बिम्ब प्रायः सी, सा, सम-इत्यादि वाचक या लक्षक शब्दों को जोडकर विस्तृत भावभूमि पर अवस्थित होते है । ऐसे अनेकानेक बिम्ब मिश्रजी के काव्य में परिलक्षित होते है, जैसे -

'लोगों की उदासीनता

भकखी की तरह भिनभिनाती
रहती है
कानों के पास ।'[७३]

यहाँ कवि ने अमूर्त उदासीनता को मक्खी की तरह दिखाकर ध्वनित किया है ।

अब हम रामदरश मिश्र के काव्य में सुजित बिम्ब-विधान को इन्द्रिय बोध के आधार पर देखेंगे । ऐन्द्रिक बिम्बों में दृश्य बिम्ब मुख्य है, साथ ही अन्य बिम्ब भी आते है - शब्द - स्पर्श, रूप और गंध के भी अपने - अपने बिम्ब है । हम क्रमशः उनके काव्य की बिम्ब योजना को देखेंगे -

(१) दृश्य बिम्ब :-

मिश्रजी अंचल विशेष के दृश्य चित्रित करनेवाले कवि एवं गीतकार है । प्रकृति और अंचल उनके साथ जुडे रहते है । प्रकृति के दृश्य जो कि एक विशेष प्रकार की अनुभूति से जुड़े होते है । अभिव्यक्ति होने पर एक सुन्दर बिम्ब का रूप ले लेते है । मिश्रजी के दृश्य बिम्ब, आँखो के समक्ष बोलती तस्वीर खडी कर देते है । उनके प्रकृति काव्य में इस प्रकार के बिम्बों का अधिकय है । प्रणय और प्रकृति से संलग्न इस तरह के कई बिम्ब हम देखते है । 'कविता का आकाश विस्तृत हो गया है' नामक काव्य में उन्होंने एक सुन्दर दश्य - बिम्ब दिया है -

'खरगोश का एक बच्चा
घबरा कर एक झाड़ी में दुबक गया है
एक नन्हा-सा पंछी
गाना बंद कर
अपने घोंसले मे से सि निकाल कर सहमा-सा ताक रहा है ।
जंगल के रंग-बिरंगे पेड़
धूल पहन कर एक हो गये हैं
और अपनी खोयी हुई पहचान पर बात करने से डरते है ।
पर्वत अपने-अपने झरनों के शोर भीतर दबाये
इस उडती हुई धूल और आवाज में समा गये है -
एक विराट अस्तित्व.....
बादल और धुँए का फासला टूट कर गिर पड़ा है एक चट्टान पर
और हम कहते है कि
कविता का आकाश विस्तृत हो गया है.....।'[७४]

कविने स्पष्ट किया है कि आज का युग मशीन-युग है, लेकिन समय की सपाट

धरती पर न फसल उगती है, न कविता । केवल मशीने दौडती है और हर क्षण, हर मोड़ पर एक ही आवाज उगलती हुई एक ही धुआँ और एक ही धूल फेंकती हुई, जिसमें कोई विन्य नहीं होता । एक विशेष प्रकार का आंतक समग्रतः व्याप्त है । प्रकृति, पक्षी आदि सभी आतंकित है । इसी परिस्थिति को लेकर कवि इस बिम्ब की रचना करता है । खरगोश का मासूम बच्चा घबरायासा एक झाड़ी में दुबका है । उस मशीनी घरघराहट के कारण नन्हा-सा पक्षी गाना बन्द करके अपने घोंसले में से सिर निकाल कर सहमा-सा ताक रहा है । उन्हीं मशीनों की एक-सी जानी-पहचानी धूल जंगल के रंग-बिरंगे पेड़ो पर छा गई है, जिससे सारे पेड़ एक-से हो गये है और शायद वे अपनी पुरानी पहचान खो जाने से लज्जित है और उस पर बात करने से डरते है । प्रकृति को लेकर कवि ने इस बिम्ब द्वारा सारा किस तरह आतंकित है, उसका परिचय दे दिया है ।

उन्होंने 'गठरी' नामक काव्य में आजादी के पश्चात की देश की स्थिति को बिम्बो के माध्यम से ही स्पष्ट किया है । ग्रामीण बालक के रूप में जन्म लेने के बाद हंमेशा एक-न-एक गठरी सिर पर रखी महसूस होती है । खाद और गोबर की किताबों की, सीधा-पिसान की फटी गठरी और सबके बीच भूख और भय की गठरी । ये सारे मनुष्य की परिस्थितियों को स्पष्ट करते बिम्ब है । पिता की आँखों में भी से गठरी नजर आती है । फिर हर आदमी की आँख में गठरी दीखती है और फिर महसूस होता है कि सभी मनुष्यों की गठरियाँ मिलकर उसकी गठरी बनती जा रही है । अर्थात् सारे मनुष्यों के दुःख-दर्द, उनका समस्त बोझ उस पर आता जा रहा है और अपने गाँव के समस्त स्नेहियों की गठयिों को लेकर उसके निवारण हेतु वह राजधानी जाता है, लेकिन पच्चीस वर्ष बाद जब लौटता है तब -

'मैं आज पच्चीस साल बाद
बडे गर्व से फिर गाँव लौट रहा हुँ
राजधानी के रंगो से बना
गाँव का एक चित्र मेरे मन में महक रहा है
किन्तु यह कया ?
राप्ती तो उसी तरह अपनी कुंडली में
पूरे जवार को लपेटे हुए पड़ी है
और उस गट्ठर को सिर पर उठाए
पसीना पोंछती हुई एक विराट भीड़
शहर की ओर मुँह करके खडी है
और मेरी गठरी उछलकर मेरे सिर पर आ गई है
उफ, पच्चीस वर्षो में यह गठरी कितनी भारी हो गयी है ।'[७५]

लम्बे-लब्मे बिम्बों के अलावा कुछ छोटे-छोटे बिम्ब भी हैं, जो किसी छोटी-सी अनुभूति या घटना को विचित्र करते है । 'घर मेरे एक किरन' नामक काव्य में सुक्ष्मानुभूति को उन्होंने इस तरह बिम्बित किया है -

'अंग-अंग से घर के ऊष्मा-सी फूट रही
गंध दूध की धारा ज्यों थन से छुट रही
बछडे-सी धूप, गाय अभी-अभी ब्यायी है ।'

कवि के घर बडे भोर एक किरन आयी है - सोनरंग के बाल हिरन की तरह कुलांचे भरती । उसके घर पर क्या असर हो रहा है, सुख की एक अनुभूति को ही मानों किरन रूप दिया गया है, जैसे कोई प्रियजन आया है । उसके आने से घर का अंग-अंग खुशी से चहक उठा है ।

प्रकृति से सम्बन्धित काव्यों में भी कई बिम्ब आते है । विशेषतः उनके प्रकृति सम्बन्धी गीतों में 'बाट बुहारूं' नामक गीत में अपनी अनुभूतियों को उन्होंने प्रकृति के विविध बिम्बों से कुछ इस तरह कहना चाहा है -

'पल-पल टूट गिरे दिन की डालों से
ढेर हुए सूखे पत्तों सालों से
डाल-डाल पर बिछी नजर है मेरी
नये पात आने में कितनी देरी है ।

मेरी बुझी हुई धूपों के टीले
पथराये गेंदे के पहर रंगीले
पूछ रहे - बाँसुरी किसी ने टेरी ?
कोई भी तो वायु संदेशा दे री !'[७६]

प्रिय का पंथ निहारते-निहारते एक-एक पल पत्तों के समान दिन की डालों से टूठ-टूटकर गिर गया । सालों से ये पत्ते गिरे-गिरकर ढेर हो गये है । दिन को डाल के रूप में और पलों को पत्तों का रूप दिया गया है । कवि को इन्तजार है नये पत्तो के आने का ।

(२) दृश्य-श्रव्य बिम्ब :-

मिश्रजी के काव्य में हमें कुछ बिम्ब दृश्य-श्रव्य मिश्रित भी देखने को मिलते है । उनके एक लोक प्रिय गीत 'एक नीम-मंजरी' में दृश्य-श्रव्य दोनों प्रकार के बिम्बों का सुन्दर सामंजस्य है -

'एक नीम-मंजरी
मेरे आँगन झरी

काँप रहे लोहे के द्वार
आज गगन मेरे घर झुक गया
भटका-सा मेघ यहाँ रूक गया
रग-रग में थरथरी
सन्नाटा आज ही
रहा मुझे नाम ले पुकार
एक बूंद में समुद्र अँट गया
एक निमिष में समय सिमट गया
वायु-वायु बावरी
किसकी है भाँवरी
साँस-साँस बन रही फुहार'
- 'बैरंग बेनाम चिट्टियाँ' से

इस गीत में पहले हमें दृश्य-बिम्ब मिलता है । गगन का घर पर झुक जाना, जैसे ईश्वर ने छप्पर फाडकर सब कुछ दे दिया है । लोहे के द्वारो का कांपना मानो कोई दिल के दरवाजे पर दस्तक दे रहा है । प्रणय की नयी नयी अनुभूति को चित्रित करने के लिए सुन्दर बिम्ब इसमें लिए गए है । साथ में सन्नाटे का नाम लेकर पुकारना आता है । इस तरह दृश्य-श्रव्य को मिलाकर कई बिम्ब निर्मित हुए है ।[७७]

(३) श्रव्य बिम्ब :-

दृश्यों की ही तरह श्रव्य बिम्ब के भी अनेक उदाहरण हमें कवि के काव्य में दृष्टिगत होते है । श्रव्य बिम्ब भी अधिकार प्रकृति कीस ही पृष्ठभूमि पर रचे गए है । भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में कवि प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूपों को लेकर अनेक बिम्ब-सृष्टि करता है । हमारे कर्ण - पटल से रह-रहकर वही मूल टकरा-टकरा जाती है । 'पक गई है धूप' में 'तीन कविताएँ' के अन्तर्गत उन्होंने कविता में कहा है -

'सामने एक खाली सूखा मैदान है
उसमें से धीरे-धीरे एकझील फूटती है
लगता है मैं सालों से इसका इन्तजार कर रहा था
धीरे-धीरे आगे बढ़ता हुँ
आकाश में हलके-हलके बादल छा जाते है
सूखी हवाएँ भीगने लगती है
और एकाएक बिजलियाँ कडकने लगती है
हवाएँ मेरा नाम ले-ले कर लगती है चिल्लाने
पत्ता-पत्ता हल्ला मचाता है

बड़ी बूँदें ओलों की तरह
झील की सतह को पीटने लगती है
और मेरे और झील के बीच
दहाड़ने लगती है अनन्त दूरियाँ
मैं आँखें मूंद लेता हुँ
और आँखें खुलती हैं
तो कहीं कुछ नहीं होता
केवल गुजरे हुए तूफान की साँस
रह-रह कर हाँफती रहती है ।'[७८]

प्रकृति पर आधारित यह बिम्ब श्रव्य बिम्ब का सुन्दर उदाहरण है । कवि को जिस झाल का इन्तजार था, वहाँ झील एक सुने मैदान में फूटती है, लेकिन जैसे ही कवि उससे मिलने को आगे बढता है, तो एकाएक बिजलियाँ कडकने लगती है । हवाएँ उसका नाम ले-लेकर चिल्लाने लगती है । पत्ता-पत्ता हल्ला मचाता है और झील की सतह को बड़ी-बड़ी बूँदे ओलों की तरह पीटने लगती है और कवि के और झील के बीच वही अनन्त दूरियाँ व्याप्त हो जाती है । चाहते हुए भी कवि उस झील से मिल नहीं पाता । पत्तों का हल्ला मचाना, हवाओं का नाम लेकर चिल्लाना, बूंदों का झील की सतह को पीटना काव्यात्मक कल्पना है ।

इसी तरह का एक और बिम्ब 'साक्षात्कार' कविता में है । आंतक का चित्रण करते समय कवि इन बिम्बों का सहारा लेकर हमें आधुनिक समाज का साक्षात्कार करता रहा है -

एक मौन आतंक घूमता है हवाओं पर
प्लेग, की तरह
छायाएँ छायाओं से कतराती हुई
निकल जाती है
अंधे कुएँ में कौन चिल्ला रहा है
शायद कोई नंगी बेलौस आवाज है
जिसे प्रेत समझकर कोई पास नहीं जाता
मीनार पर खड़ा होकर कौन गा रहा है ?
शायद कोई असफल प्रेमी है
जिसके पास गाने के सिवा
कुछ बचा ही नहीं
धाँप धाँप धाँप

लगता है -
सरकारी आत्मा का विस्फोट हो रहा है
और सडक पर कबूतर-सी लोट रही है ।'[८०]

इस कविता में कवि ने आतंक और निराशा का चित्र खींचा है । अंधे कुएँ में चिल्लाना किसी विवश की पुकार है, जिसे कोई नहीं सुनता । प्रेत समझकर जिसके पास कोई नहीं जाता ।

'वसंत की सुबह' नामक कविता में कविने जंगली पक्षियों की आवाजों का आधार लेकर एक खूबसूरत श्रव्य बिम्ब की रचना की है । भटकी हवा के चेहरे की व्यथा को, थकान को देखकर कवि कह रहा है -

'कितनी ही आवाजें दी है
प्रकाश है हमराहियों को -
कोई है ए ए ए ।
सन्नाटे ने निरन्तर आवाजे लौटाई है -
कोई है ए ए ए ..... ।
पेडों पर उल्लू मगन हो जाते रहे -
घूं घूं घूं
रह-रहकर पक्षी किसी भय से चिल्लाते रहे
काऊँ..... किच.....किच.....कचि..... काऊँ.....किच ।'

वातावरण की भयावहता को सजीव करने के लिए कविने डरावने जानवरों का और सन्नाटे का चित्रण किया है । हवा हमराहियों को आवाज देती है और सन्नाटा है कि आवाज को लौटाता है । उसमें बिम्ब है । उल्लुओं का मगन होकर गाना उस भयानक वातावरण को और भी भयानक बना देता है ।

'फागुन आया' नामक गीत में श्रव्य बिम्ब का एक और उदाहरण देखिए -

'सौ सौ उजडे वन-बागों की आहों का झोंका सहराया
'हर-हर' 'झर-झर' में गूँज उठा फागुन आया फागुन आया
हुहुकार रहा मदमत्त पवन
बजते मरू-कन, तरू-तन-सन-झन
झरते झर-झर जर्जर द्रुम-दल
धुंधों की ये साँसें हन-हन
धंधों के पार वहाँ वह क्या ?
वह कौन देश उजडा उजडा ?'

इस कविता में कविने फा।गुन के आगमन का विविध ध्वनियों के साथ चित्रण किया है । उजडे हुए वन और बागों में आहों के झोंके झहराने लगे और हवा में गुंज उठा कि फागुन आया । जर्जर पत्तों के झरने का चित्र है । धुंध हन-हन सासें लेती है । मदमत्त पवन हुहुकार रहा है । इस तरह उन्होंने फा।गुन के आने का सुन्दर चित्र खींचा है ।[८०]

(४) स्पर्श एवं गंध सम्बन्धी बिम्ब :-

कविने स्पर्श और गंध से भी सम्बन्धित अनेक बिम्ब रचे है । यद्यपि इस तरह के बिम्बों की संख्या कम है । एक चित्र में उन्होंने सांसों की सुगन्ध के बारे में लिखा है -

'हवाएँ घँस कर छटपटाती है
और उनकी सड़ी सांसे
टूटे मकानो के बंद दरवाजे पर
दस्तकें देती है ।'

इस चित्र में पहले गंध से सम्बन्धित चित्र है । नीचे श्रव्य का सहारा लिया गया है । वैसे गंध के बिम्ब बहुत कम मिलते है, फिरभी मिश्रजी के काव्य में कई जगह विभिन्न संदर्भो में गंध का परिचय मिलता है -

बड़े गर्व से फिर गाँव लौट रहा हुँ
राजधानी के रंगो से बना
गाँव का एक चित्र मेरे मन में
महक रहा है ।

चित्र की महक एक सोंघी-सोंघी-सी मिट्टी की महक का आभास कराती है । यह महक बिल्कुल अलग-सी ही है । कुछ विशेष अनुभूति करवानी है ।

स्पर्श के भी कुछ चित्र दृष्टव्य है । जहाँ भी किसी छुअन का अनुभव चित्रित होता है, वहाँ स्पर्श बिम्ब होता है । एक जगह कविने कहा है -

'मुझे अक्सर लगता है
कि यह जंगल मेरे भीतर से
गुजर रहा है
और मेरी आवाजों को तोड रहा है तरह-तरह से
वाहर निकलने के लिए ।'

'तुम बिन' नामक एक गीत में उन्होंने स्पर्श का एक सुन्दर उदाहरण दिया है -

'मेरे कपड़ों में गरम-गरम

ज्यों दो हथेलियाँ डोल रहीं ।
कुर्सी के पीछे खड़ी-खड़ी
वैसे कि चुप्पियाँ बोल रहीं ।'

इस कविता में प्रणय के एक विशेष स्पर्श का चित्र है । प्रथम दो पंक्तियों में स्पर्श का चित्र है और अन्तिम दो पंक्तियों में श्रव्य का आभास होता है ।

इस तरह से कविने छोटे-छोटे काव्य-खंडों में बिम्बों का निर्माण कुशलता से किया है ।[८१]

(२) भाषाशैली :-

प्राचीन आचार्यो और साहित्यिक चिन्तकों ने काव्य में भाव को भाषा से अधिक महत्त्व दिया है । उन लोगों का कहना था कि भाषा भाव को अभिव्यक्त करने का मात्र साधन है, किन्तु स्वच्छन्द भावधारा के साथ-साथ भाषा का स्वरूप भी बदलता रहा है । भाव भाषा के लिए जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही महत्त्वपूर्ण भाषा, भाव के लिए भी है । आधुनिक काल में भाषा की महत्ता को अधिक स्वीकारा गया है । भाषा के बिना भाव का कोई मूर्त स्वरूप नहीं हो सकता है ।

मिश्रजी की गेय-अगेय रचनाओं की लय में लोकगीतों की लय का सहज प्रवाह है और भाषा में आँचलिकता की जीवन्तता दिखाई देती है । मिश्र जी ने कुछ गीत भोजपुरी में लिखे थे । जब वे उनका सस्वर पाठ करते थे, तो गीत-लोकगीत का भेद याद नहीं रहता था । मिश्रजी कर्मकाण्ड में आस्था नहीं रखते परन्तु विवाहगीत पसन्द करते है क्योंकि रचनाकार के एस्थेटिक्स से इसका मेल है ।

'पल-छिन', 'गलबांही', 'परछाइयाँ' आदि शब्द प्रयोगो के साथ गीतों में 'विरहिन बन-बन कजली बन-बन', 'बौर-बौर' सूने में जैसे टेर रहा' जैसी पंक्तियाँ लोकभाषा और लोकचेतना की पारस्परिक अनिवार्यता सिध्ध करती है ।

'फटी-फटी आँखो में लादे भूख डरानी
बैठे होंगे खाली घर के सभी परानी !'

यहाँ लय का विशेष सहयोग मिलता है परन्तु मुक्त छंद की रचनाओं में भी बोलचाल की सहजता कविा का उत्कर्ष पाती है ।

चिडिया घोंसला बनाती जाती है और काव्यनायक उसे उजाड़ता जाता है । एक संकल्पना के निष्कर्ष का तरल-सरल भाषारूप देखिए -

'मुझे अपने कमरे की बांझ सफाई की चिन्ता है,
और उसे आनेवाले अपने बच्चों की ।

यह स्पर्धा निष्ठुर प्रकृति और निर्दोष बच्चों के बीच भी चलती रहती है । वहाँ भी कवि को इसी प्रकार की भाषिक संरचना सुलभ होती है । किनारे पर बच्चों की

रचनाएँ पानी के प्रचंड बहाव में नष्ट हो गई, लेकिन यह अंत नहीं है –

'इस बीच न जाने बच्चे कब जुट आये हैं
और फिर मिट्टी और तिनके बटोरने लगे है ।'

जहाँ कथ्य गद्यात्मक मनःस्थिति के अनुरूप है वहाँ शब्द भी सहमे से चलते है ! पाठक को अभिजात भावुकता से बचाने वाली भाषा देखिए :–

सरकंडे की कलम
खूबसूरत नहीं, सही लिखती है ।

यांत्रिक भावविश्व की एक छवि देखिए : 'उडती हुई आवाजे कुहरे–सी टंग जाती है छतों को बीच' तो इसके विरूध्ध नैसर्गिक ऋजुता की अभिव्यक्ति देखिए –

रेती में खेल रहीं
हरी–हरी दूबे । –[८२]

बोलचाल की भाषा के स्रोत खोजने में तत्समवृत्ति नहीं चलेगी । जो अधिकार भोजपुरी बोली को है, वह उर्दू को क्यों नहीं ? सतही निगाह से बटोरते उर्दू शब्दों की कमी महसूस नहीं होगी – दर्द, लावारिस, अजनबी, खामोशी, महज, बदतमीज, लाश इन्तजार दस्तक, वर्दिया, जुलुस, शामिल, फर्श, पैबन्द, खुशबू सैलाब, तलाश, कोशिश, खतरा, बेतहाशा गमला, फिजो, खिलाफ, खुंखार, मुहब्बत – सूची बढती ही जाएगी । सहजता के दावे के साथ कुछ अंग्रेजी शब्द भी बेपर्दा (अपटीक्षेपेन ?) प्रवेश करेंगे – सिगरेट के खाली 'केस', सीमेण, माइक, साइनबोर्ड पोस्टर पेटीकोट, स्कर्ट, ओपरेशन–टेबल, स्कूल, फैकँटरियाँ, ऍक्सप्रेस, इन्जन की सीटियाँ, फूटपाथ ..... कोई रोक नहीं यदि कथ्य की मानसिकता भाषिक चेतना धारण कर सके । मिश्रजी के यहाँ यह संभव हुआ है, क्योंकि यह भी उस काव्ययात्री के निराडंबर व्यक्तित्त्व का ही एक लक्षण है । यह काव्ययात्री लोकधर्मी है, धूल और उसमें खेलती हरी दूबों का चहेता है, परन्तु जाने–अनजाने उस रहस्यात्मक परम तत्त्व से भी प्रेरित होता है, जो इसके पैरों में राहें पिन्हाकर दीडियों पार मुस्कराता है ।

ईश्वर के विषय में पूछने पर मिश्रजी ने बताया था – जिन्दगी के सन्दर्भ में ही इश्वर का होना या न होना प्रासंगिक है । मनुष्य के सुंदर पहलू की पूर्ण कल्पना ही ईश्वर है । मिश्र जी का काव्ययात्री इसी पूर्ण कल्पना के वास्तविक रूप की तलाश में है उसने आजतक के पजवों का हिसाब दिया है । उसके भविष्य में हमारी रूचि है, कुतूहल है ।

तुम्हारी हँसी मेरे भीतर आकर उजाला बन गयी
तुम्हारे आँसू भिगो गये मेरे ठहरे हुए ताप को
तुम्हारी महके मेरी साँस की लय बन गयी

तुम्हारा दर्द अनबोले घुस आया मेरे दर्द की कोठरी में
कुछ भी तो नहीं रूका तुम्हारा
मुझ तक आने से
कहाँ था वह भाषा का संकट

अभिव्यकित की परिभाषा बन गया
तुम्हारे भीतर से मथा हुआ अर्थ
खुद ही अपनी भाषा बन गया ।[८३]

आधुनिक काल में विशेषतया छायावाद युग से ही भाषा को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा । लगभग सभी छायावादी समीक्षकों ने भाषा के नवसर्जित स्वरूप की महत्ता को स्वीकारा है । समीक्षक रामस्वरूप चतुर्वेदी ने भाषा की महत्ता को स्वीकारते हुए लिखा है कि - ''प्रत्येक संवेदनशील रचनाकार भाषा से संघर्ष और असंतोष का अनुभव गहरे स्तर पर बराबर करता है । यह संघर्ष और असंतोष वस्तुतः उसका अपने आपसे है, क्योंकि भाषा उसके संपृक्त व्यक्तित्त्व का अनिवार्य और अविभाज्य अंग है ।'' भाषा के संदर्भ में डॉ. देवराज उपाध्याय का मत है कि - यह सच है कि भाषा अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का माध्यम है । किन्तु, यांत्रिक माध्यम नहीं है, वह पुनः पुनः सर्जित होती है, निरन्तर सामाजिक प्रयोग में आती रहने के कारण भाषा का अपना स्वरूप भी होता है, जो अपने शब्दों के भीतर अनेक भाव-गंध या रूप-छाया छिपाये रखती है ।''

वस्तुतः प्रत्येक कवि अथवा लेखक ऐसी भाषा का निर्माण करने का प्रयास करता है, जो उसके भावों एवं विचारों के अनुरूप हो तथा जिसके द्वारा वह उन्हें सशक्त अभिव्यक्ति दे सके । इसके लिए भाषा का सक्षम एवं समर्थ होना नितान्त आवश्यक है क्योंकि, 'कवि के पास भाषा - संकेतों के अतिरिक्त और कोई साधन, निजी भाव - विनिमय का नहीं । भाषा वह माध्यम है, जो उसके जानने वाले व्यक्तियों के मानस धरातली को एक कोटि में लाकर रख देता है । कवि इस साधन को जितनी कुशलता से काम में लाना जानता है उतनी ही उसकी अभिव्यक्ति ऊँची होती है, उतना ही वह सौन्दर्य का दर्शन कराने में अधिक सफल होता है ।''

दरअसल
भाषा एक ही है
लेकिन उसे विविध अर्थ देते रहते हैं
समय - संदर्भ
और हाथों के निजी स्पर्श
ये पहले हमारे अनुभव में उतरते है फिर समा जाते है भाषा में

अर्थ बन कर ..... ।

– 'ऐसे में जब कभी' से

कविता के लिए रामदरश मिश्रजी सहज व्यवहार्य भाषा की तलाश करते है –

न मैं तुम्हे जानता था
न तुम मुझे
न मैनें तुम्हारा नाम-धाम पूछा
न तुमने मेरा
न जाने कहां से तुम आए
और मेरे बुझे अकेलेपन के सामने
चुपचाप बैठ गये
मैंने देखा कि अंधेरी रात में कहीं एक
मोमबत्ती जल उठी है'

– 'बारिश में भीगते बच्चे' से –

वस्तुतः रामदरश मिश्र की कविताओं की पडताल करते हुए हम पाते है कि उनके कथ्य के निकट भाषा का संकट कभी नहीं रहा । वे भाषा की श्लिष्ट सरंचना के अभाव में भी कथ्य को सम्प्रेषित करने का शस्ता निकाल लेते है । उनकी कविताओं को पढते हुए मैं ने अक्सर महसूस किया है कि उनकी कविताएँ न केवल अपने समकालीनों के बीच अपनी अलग पहचान बनाती है बल्कि इस क्विदन्ती को बिना किसी भाषिक नाटकीयता के झुठलाती भी हैं कि आज के जमाने में कविता या तो कथ्य –कौतुक के सहारे चर्चा में आ सकती है या चीख की सीमा तक आदमी की पीड़ा को आकाश में उछाल देने से । प्रत्युत सच तो यह है कि उनकी कविताएँ दिमाग पर बोझ की तरह नहीं टूटतीं, बल्कि हल्के सहलाव की छाप छोडती है –

महक का एक नन्हा झोंका
बच्चे की हथेली की तरह छूता है
फिर हँसता हुआ-सा खड़ा होता है
मेरा तीन साल का पोता
और मैं उसमें अपने को देखने लगता हूँ
ऐसे शुरू होती है मेरी सुबह

– 'आग कुछ नहीं बोलती' से

चीख की भाषा को उन्होंने कभी तरजीह नहीं दी अपने इसी सोच के चलते एक ओर वे धूमिल सरीखे कवियों के आलपिक रहे, तो दूसरी ओर नकेनवादियों की तरह प्रयोग सक्रिय तथा संस्कृत निष्ठता से लदी भाषा के समर्थक कवियों के रूप में रहे

है । किन्तु उनकी खुद की कविता के स्थापत्य में दशकों के अंतराल के बावजूद कोई ज्यादा बदभाव नहीं आया है । अपनी रचना - सरणि में अलग न होते हुए आज भी उनकी कविताएँ अपने प्रचलित ढर्रे के काव्यात्मक संगठन की पुष्टि करती जान पडती है । यही उनकी पहचान-सीमा तथा विशिष्टता भी है कि वे समकालीन कविता के प्रचलित मुहावरे की रौ में अपना चोला नहीं बदलती', बल्कि, विश्वासपूर्वक अपने वस्तु-विन्यास में उन जीवन-मूल्यों की रक्षा करती विखती है, जिनके लिए कवि की पक्षधरता पहले से ही मुखर और स्पष्ट रही है ।[८४]

'दिन एक नदी बन गया' की काव्य भाषा में सम-सामयिक जीवन का यथार्थ कुछ ऐसा रूप ग्रहण कर चुका है कि लगता है जैसे भाषा उसके सामने लाचार हो गई है । ऐसे में कवि को अपनी काव्य भाषा का 'ककहरा' नये सिरे से सीखना पड रहा है -

'मैं बोलता हूँ 'क'
'क' माने कविता
सामने बैठा हुआ कौवा काँव-काँव करने लगता है ।
मैं बोलता हुँ 'स'
'स' माने सत्य
सामने कीचड में लोटा सूअर
सों - सों करता हुआ मडिया मारने लगता है ।'

मिश्रजीने अपनी एक अन्य कविता में भाषा के लहू-लुहान होने की बात की है । हमारे पास यथार्थ की पहचान का एकमात्र माध्यम भाषा है । अगर यह माध्यम अब भरोसे का नहीं प्रतीत होता है, तो इसका मुख्य कारण यह है कि अब सत्य को असत्य से अलग करके पहचानना कठिन होता जा रहा है । 'हम कहाँ है' कविता में मिश्रजी ने किसी ऐसी लडाई की ओर निर्दश किया है, जिसमें लडने वाले -

'कभी गीता का खोफ
कभी रामायण की चौपाई
कभी 'वैष्णव जन तो तेने रे कहिए'
गाते हुए
ये कपडे नोचने लगते है एक-दूसरे के
और सभी बारी-बारी से नंगे होते जा रहे है
सुबकी छातियों पर
साँइ की तरह दगा हुआ एक ही चिहन दिखाई पड़ता है ।

कविने देखा कि 'हर एक टोपी' के नीचे एक गिध्ध छिपा है और कि इनकी

'आस्तीनों से साँप झरते है ।' आश्चर्य यह है कि 'ये अपनी जेबों से कबूतर छोडते है, जो देखते ही - देखते बाज बन जाते हैं ।'

स्थितियों का इस प्रकार से गड्डमड्ड हो जाना यथार्थ को जटिल और पेचीदा बना देता है । ऐसे में आत्माभिव्यक्ति का कार्य बड़ा कठिन हो जाता है -

'न जाने कहाँ चली गई है धूप
वह अब कुछ बोलती भी है या गूंगी हो गयी
कुछ नहीं मालूल !'

कवियों का एक बहुत बडा और अपेक्षाकृत प्रभावशाली वर्ग कविता को प्रयोजनातीत बनाने के आशय से स्मृति भ्रंश की नाटकीय मुद्राएँ अरिक्तयार करता रहा है । व्यक्ति की और समूह की भी स्मृतियाँ भाषा में संचित होती है । अतःऐसे कवियों ने सबसे पहले भाषा के संकट की समस्या उठायी । जब भाषा का अनुभव जगत से रिश्ता टूट जाता है, जब उसके सामान्यीकृत अनुभव का निषेध कर दिया जाता है तो भाषा की संवाद धर्मिता नष्ट हो जाती है, वह एकालाप की चीज बन जाती है । कविता में व्यक्त होने वाले आत्मसंलाप की भी अपनी तक सार्थकता होती है, बशर्ते कवि का आत्म ऐसा हो कि उसमें दूसरों के आत्मभाव भी समा सकें । लेकिन एकालाप में इसकी गुंजाइश नहीं रहती । क्योंकि इसमें एक अर्थ को काटने वाला दूसरा अर्थ नहीं होता । यह एकालाप अक्सर ऐसे रहस्यलोक की रचना करता है जिसका यथार्थ जीवन के साथ कोई रिश्ता नहीं होता । कविता में इस प्रकार के विस्मय-लोक की रचना करने वाले कवियों के बारे में मिश्रजी का अभिप्राय बडा साफ और बेबाक है, जब वे कहते है -

'वाह
वे कितने महान कवि है
पंक्ति पंक्ति में रहस्यमय अर्थ होते है ।

मिश्रजी भाषा के इस संकट को मानसिक ऐयाशी से अधिक नहीं मानते । उनका मानना है कि यह मानवीय संवेदना के अभाव को ढंकने का एक सुरक्षा-कवच है । इस सुरक्षा-कवच पर प्रहार करते हुए वे लिखते है -

तुम्हारा दर्द अनबोले घुस आया
मेरे दर्द की कोठरी में
कुछ भी तो नहीं रूका तुम्हारा
मुझ तक आने से
कहाँ था यह भाषा का संकट
जिस पर वे लोग
बरसों बहस करते रहे

और शब्द को ही आराध्य मानकर
उसके व्यूह में घेरते और घिरते रहे ।[८५]

भाषा की संवाद-धार्मिता, उसकी संवेदनीयता और संप्रेषणीयता पर पूरा भरोसा होने के बावजूद जब रोने और गाने के बीच फर्क समझ में न आये तो इस दुर्बोधता की जडे भाषा के बाहर कहीं अन्यत्र खोजनी पडेगी । ऐसे में हमे उन अप्रत्याशित परिवर्तनों और परिवर्तनो के पीछे कार्यरत शक्तियों को पहचानना होगा, जो हमारी संवेदनशीलता और बोधवृत्ति को कुंडित कर देती है ।

रामशेर की एक काव्य पंक्ति 'बात बोलेगी मैं नहीं' का सहारा लेकर कहा जाये तो मिश्रजी की कविता में बात बोलती है । ऊपर से सरल और कुछ अंशो में बोलचाल की भाषा की स्वाभाविकता लिये हुए मिश्रजी की काव्यभाषा में व्यंजना की कुछ ऐसी तलाश रहती है कि उसमें अनायास एक बांकपन आ जाता है । उदाहरण के रूप में हम देखें तो -

'लगातार पीछा करती
एक खूंखार दहशत
बदहवासे भागते हुए आदमी
कोई कहाँ छिपे
इतनी बडी-बडी पेचदार
इमारतों को पहने हुए यह शहर
पूरा-का-पूरा नंगा हो गया है
देखो-देखो हमारे शहर में
दंगा हो गया है ।'

रामदरशजी एक सुलझे हुए आलोचक-समीक्षक भी हैं, इस नजरिये से उनका मानना रहा है कि जब कवि नये सत्य का साक्षात्कार करता है, तो नयी भाषा का भी साक्षात्कार करता है । परन्तु उनकी कविताओं में हम नये सत्य का साक्षात्कार तो करते है, लेकिन नयी भाषा का साक्षात्कार नहीं हो पाता । कवि आज के सत्य, आज के संदर्भ में भी अपनी उसी भाषा-सरणि पर चलता दिखाई देता है, जिस पर वह दशकों से चल रहा है । एक बात उन्होंने आलोचक के सम्बन्ध में भी की है । एक कवि गाँव के परिवेश से महानगर में आकर कैसे एक नीरस आलोचक बन गया है तथा कैसे धीरे-धीरे उसके भीतर का गाँव तिरोहित होता गया है, इसे उन्होंने बडे क्षोम के साथ उठाया है । कम से कम अपनी कविता के संदर्भ में रामदरशजी को भी आत्म-परीक्षण करना होगा, क्योंकि उनकी कविताओं पर इधर महानगरीय छाया दृष्टिगत होने लगी है । एक बात और ! कविता के संदर्भ में रामदरश जी की धारणा है कि कविता अन्त में कविता ही बचती

है, वह चाहे कितनी मुद्राएँ धारण करे, कितने ही रूप-रंग बदले । परन्तु अपना मानना तो यह है कि कभी-कभी कविता अपनी विभिन्न मुद्राओं, भंगिमाओं के बावजूद कविता नहीं रह जाती, यह कविता होने या कहलाने योग्य नहीं होती । यह गैरतलब है कि रामदरश मिश्र की कविताएँ अपने स्वरूप को सार्थक सिध्ध करती है तथा स्वस्थ काव्य-मूल्यों का सृजन करती है -

'इतनी आँखे
इतने स्वर
इतनी सडकें
इतने घर
उत्सव में
गुजरते रहे एक दूसरे को काटते हुए
थों, जैसे कि अपने को बाँटते हुए
अन्त में कुरसी और टेबुल रह गये
पूछते हुए आपस में
भाई, ये लोग
क्या कह गये ?'

शायद कोई सच्ची कविता इन्हीं स्थितियों में पहुँचकर समाज के सामने एक निश्चित परिवर्तन की मांग करती है । मगर अपने 'जख्मों का उत्सव मनाकर' नहीं, न ही पश्चाताप की भाषा की शरण जाकर क्योंकि यह हरकत ही नहीं, स्थिति की भाषा हुआ करती है और आज की कविता इसके सहारे जिंदा न रहकर गये की आत्मीय निकटता प्राप्त होने के कारण 'जीवन-संग्राम' की भाषा के सहारे जिंदा रहती है । तभी वह कोई निजी निर्णय भी ले पाने की स्थिति में होती है । कहना नहीं है कि कवि की सृजनप्रक्रिया के दौरान यह भाषा 'दृष्टि की स्थिति मुक्त और संवेदना की स्थितिबध्ध वैयक्तिकता के समन्वित प्रयासं से मिलती है । ऐसी दृष्टि परिपाटीग्रस्त व्यंजनात्मक औजारों को छोड अपनी नई आग के लिए उन लोकोक्तियों बोलियों, लोक-गीतों और लोक-कथाओं की ओर जाती है, जिन्हें रूसी लेखक आर. पोमेरेन्त्सेव-भाषा का समृध्धतम खजाना-घर' कहता है ।[८६]

प्रकृति चित्रण :-

'उषा सुनहले तीर बरसती, जय लक्ष्मी सी उदीत हुई ।
उधर पराजित काल रात्रि भी जल में अन्तर्निहित हुई ।'

- जयशंकर प्रसाद

'अरे, कौन तुम दमयंती-सी हो तरू के नीचे सोई ।

हाय ! तुम्हें भी त्याग गया, क्या अलि नल-सा निष्ठुर कोई ।।'

- पंत

'नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हुँ ।
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हुँ ।
किसी फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हुँ ।।

- महादेवी वर्मा

हिन्दी कवियों के प्रकृति-प्रेम का इसमे बढ़कर प्रमाण और क्या होगा कि उन्होंने प्रकृति के वैभव के समक्ष युवती-बालाओं के मन-मोहक सौन्दर्य तक को ठुकरा दिया-

'छोड़ द्रुमों की मृदु छाया तोड प्रकृति से भी भाया !
बाले ! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दुँ लोचन !!'

प्रकृति और मानव का संबंध बहुत सनातन और चिरंतन है, इसलिए दोनों में धनिष्ठ संबंध है । सभी विचारक, कलाकार यह मानते है कि 'काव्य जीवन की अभिव्यक्ति है ।' मनुष्य एक जिज्ञासु प्राणी है । वह जीवन औ जगत के रहस्य को जानने के लिए प्रयत्नशील रहता है । मानव प्रकृति में भिन्न-भिन्न रूपों का अवलोकन करता है । मानव और प्रकृति के संबंधों को सभी लोग स्वीकार करते है, किन्तु उनके संबंधो को लेकर विभिन्न मतवादों की सृष्टि हो जाती है । यह स्पष्ट है कि हमारी सभी धारणाएँ, मौलिक प्रवृतियाँ, युग और देशानुरूप निर्मित परम्पराओं, सामाजिक संबंधो, दृष्टिकोणों के अनुरूप बनती है और बिगड़ती है । काव्य के निर्माण औ विकास में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है । यदि हम आदिकाल से लेकर आधुनिककाल तक के काव्य पर एक विहंगम दृष्टि डाले तो पायेंगे कि प्रकृति चित्रण विभिन्न कालो में भिन्न प्रकार से हुआ है ।

आदिकाल के कवियो ने प्रकृति का स्वतंत्र चित्रण किया है । प्रकृति के रहस्यों को न समझ सकने के कारण वह कभी प्रकृति के कर्कश, विकराल, प्रचंड रूपों को देखकर आतंकित होता था तो कभी कोमल, कमनीय और शांत रूप को देखकर उल्लासित होता था । प्रकृति के प्रति प्रजा-आराधना का भाव शायद इसी कारण मानव के मन में उदय हुआ हो । अतः हम कह सकते है कि आदिकाल के मानव-जीवन को पूर्णतः पालित और संचलित करनेवाली प्रकृति ही थी । वह मानव पर हावी थी, इसलिए उस काल के कवियों ने प्रकृति के बाह्य रूप का वर्णन किया ।

रीतिकालीन कवियों ने मानव-जीवन की जीवंत चेतनाओं और संवेदनाओं का चित्र न देकर अस्वस्थ और हल्की चेष्टाओं का स्वरूप अंकित किया है । उनके विचार से प्रकृति खतः हमारी भावनाओं का आलम्बन नहीं बन सकती है, क्योंकि प्रकृति में हमारे राग-विरागों को जगाने की क्षमता है, इसलिए प्रकृति का चित्रण हम आलंबन के रूप में क्यों करें ?

छायावादी युग में व्यक्ति-चेतना का प्रसार हुआ । सामाजिक संबंधों में नवीनता आई । जीवन अनेक रूढियों से मुक्त हुआ, अतः कवियों ने अपने देश और काल के प्रकाश में उभरने वाली जीवन के अनुकूल प्रकृति को लिया । छायावादी कवियों ने यह माना कि मानव की तरह प्रकृति भी सजीव है । उसमें भी चेतना है । इतना ही नहीं, बल्कि सभी जड और चेतन में एक ही महत चेतना का प्रसार है । अर्थात प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता छायावादी युग में नहीं रह गयी । छायावादी कवियों ने अपनी वैयक्तिक रहस्यवादी और बौध्धिक चेतना का प्रकृति पर आरोप किया । जगत और जीवन की समस्याओं और दार्शनिक समाधानों के रूप उनके मन में अंक्ति थे । इसलिए प्रकृति भी उन्हें बल देने के लिए सहायक होने लगी । इस बात की पुष्टि के लिए हम भावुक कवि पंत को ले सकते है । पहले तो वे मुग्ध भाव से प्रकृति की आराधना करते है । प्रकृति को मानव से सुन्दर मानते है ।

लेकिन बाद में जीवन यथार्थ के प्रति जागरूक होते पर वे स्पष्ट घोषित करते है -

'सुन्दर है विहग सुमन सुन्दर
मानव तुम सबसे सुन्दरत्तम ।'[८७]

आधुनिक काव्य में प्रकृति चित्रण :-

आधुनिक काव्य में प्रकृति और मानव दोनों एकाकार हो गए है । प्रकृति में मानव के तथा मानव में प्रकृति के रूप-वैभव का दर्शन सर्वत्र उपलब्ध होता है । प्रकृति आधुनिक कवियों का कथ्य है, कथन है और कथन का साधक है । ब्रहम के विराट रूप का प्रतिपादन करना हो, या जीवन-दर्शन सम्बन्धी किसी महत्त्वपूर्ण सिध्धान्त को समझाना हो, अथवा अपने किसी गुप्त प्रेम के किसी गोपनीय तथ्य की व्यंजना करती हो, हमारे काव्य रचयिताओं ने प्रकृति को सहायता के लिए आमंत्रित किया है ।

आधुनिक युगीन हिन्दी-काव्य में प्रकृति की छटा का चित्रण पर्याप्त सूक्ष्मता, सरसता एवं विशदता से हुआ है । विशेषत छायावादी काव्य तो प्रकृति के वैभव से इतना अधिक रंजित है कि कुछ विद्वानों ने प्रकृति-वर्णन के विशेष प्रकार को ही छायावाद समक्ष लिया था । यहाँ हम कुछ उदाहरण प्रस्तुत करेंगे -

'पगली, हाँ सम्हाल ले तोरा,
छूट पड़ा कैसे अंचल ।
देख बिखरती मणिराजी
अरी, उठा ओ बेसुध चंचल ।।'

- प्रसाद

'सिंधु सेज पर धरा वधू अब तनिक संकुचित बैठी-सी ।

प्रलय निशा की हलचल स्मृति में मान किए सी ऐंठी-सी ।।'

- प्रसाद

'दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है ।
वह संध्या सुन्दरी परी-सी,
धीरे, धीरे, धीरे ।।'[८८]

आज का मानव नगरीय सभ्यता में पल रहा है । वह मानव निर्मित पदार्थो के संपर्क में आ गया है । सभी तत्त्वों को अपने वश में कर लिया है - 'मनुष्य ने पंचमहाभूतों को अपने वश में कर लिया है' । फिरभी आज के काव्य में प्रकृति का चित्रण मिलता है । आज का मानव भी चाँद, हवा, वसंत, शरद आदि से प्रभावित होता है, मुग्ध होता है, क्यों ? मिश्रजी मानते है - प्रकृति में अक्षय सौन्दर्य है, क्योंकि उसमें अक्षय जीवन है, अनन्त ताजगी है । प्राकृतिक दृश्य अपनी इस जीवन्तता के कारण हमारे हृदयों को ताजगी से भर देते है और हम उन्हें रोज-रोज देखकर भी अघाते नहीं है । उसका सौन्दर्य नित नवीन जीवन से अनुप्राणित होता है । यह जीवन, यह ताजगी मानव-कृत वस्तुओं में नहीं, इसलिए उन्हें हम कुछ सीमा तक देखकर छोड देना चाहते है । कलाकार मानव हृदय को प्रभावित करने के लिए बार-बार प्रकृति का चित्रण करता है । इसीलिए वह प्रकृति सौन्दर्य को संबोधित कर पुकार उठता हुँ -

'बार-बार तुम आए, छाए छाए छाए
लेकिन हर बार लगा पहले-पहले आए ।'

'प्रकृति और काव्य पर विचार करते समय हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वास्तव में मानव-जीवन ही दोनों में प्रधान है । मिश्रजी लिखते है - 'प्रकृति को आलंबन बनाकर उसका यथातथ्य संश्लिष्ट रूप अंकित करना आज के कवि के लिए संभव नहीं है । प्रकृति सदैव मानव-जीवन की सापेक्षता में ही खिल सकती है, क्योंकि काव्य का लक्ष्य प्रकृति-चित्रण करना नहीं है, बल्कि मानव-जीवन को उसके विराट संदर्भ में रूपायित करना है । जो कवि मानव-जीवन के जितने ही गहन सत्यों को तत्सम्बन्धी व्यापक परिवेश में चित्रित कर सकेगा, वह उतना ही बडा कवि होगा ।'

कवि मिश्रजी के लेखन का संबंध हंमेशा अपने परिवेश से जुडा रहा है । वे जिस भू-भाग में पैदा हुए उस भू-भाग का मानवीय सौन्दर्य उसकी विभीषिका उसका सघर्ष सब जीते रहे ; इसलिए उनकी कविताओं और गीतों मे बचपन का जिया परिवेश और देखी हुई प्रकृति के चित्र आते रहे है । प्रकृति के प्रति उनका मोह कुछ अंचल प्रेम के कारण ही प्रतीत होता है । उन्होंने लगभग हर ऋतु को उसके विभिन्न रूपों को अपने गीतों और कविताओं में स्थान दिया है । शरद, ओ शरद, शरद आयी, बसंत, बसंत

आ रहा है, बसंतागमन, फागुन आया, फागुन में, पतझर, फिर फा।गुन आ गया, पावस गीत, मेरी राह न बांधो, बादल और सागर, आए धन बदरा सावन की सांझ जाडे में - आदि ऐसे चित्र है जिनमें मात्र प्रकृति चित्र ही नहीं, विचार और भाव भी गूंथे हुए है । मिश्रजी मानते है -

'मनुष्य के लिए प्रकृति अपने आपमें एक स्वतंत्र सत्ता न होकर विभिन्न प्रकार के उसके भावात्मक-विचारात्मक व्यापारों से बंधी हुई है ।'

'शरद आयी' -

'तालो के पंक हँसी कास, शरद आयी
गीले गीले ओठों हास, शरद आयी
काइयों-भरी खेतों की सिलवट टूट गयी
भादों सी आँखों में नई सुबह फूट ययी
उगती है बच्चों की साँस, शरद आयी
सपनों में चैत की सुबास, शरद आयी ।'[८९]

- बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ" से

सर्व प्रथम मिश्रजी ने शरद का स्वागत किया है । शरद का स्वागत करते हुए मानो उसका आभार प्रकट कर रहे हों । उसीने मानों उनके व्यक्तित्त्व को चरम उत्कर्ष दिया है, आत्मा को कण-कण में जीवित किया है । 'आभार' प्रदर्शन का भाव इस गीत में दृष्टिगत होता है -

'स्वागत है ओ नये शरद !
तूमने मेरी आत्मा को
मिटा-मिटा कण में
जीवित किया
बूंद को पारावार कर दिया ।'

शरद के मादक सौन्दर्य से अभिभूत होकर कवि प्रिया की निकटता प्राप्त करने की आकांक्षा व्यक्त करती है । इस मादक परिवेश में कवि जीवन के एक-एक पल का उपभोग करना चाहता है -

'सागर से छोर दूरियों ने सब खींच लिए
मेहों से हम तुमने नयन बहुत सींच लिए
आओ अब रहें पास-पास शरद आई
जाए ऋतु लौट ना उदास शरद आई ।'

वसंत चित्रों में जीवन की शक्ति और सौन्दर्य ही अधिक व्यंजित हुए है । वह

व्यापक सामाजिक जीवन के स्पंदनों और सौन्दर्य को रूपायित करने वाले चित्रों के रूप में आता है । मिश्रजी ने उनके ऐसे गीत लिखे है, जिनमें लोक-छन्दों, लोक-ग्राह्य प्रतीकों और लोकभाषा की शक्ति और सौन्दर्य निहित है । देख सकते है -

'फिर फागुन आ गया
डह डह डहका पलाश
परदेशी अंखियन में
बन अंगार लाल लाल छा गया
खींच रहीं नंगी वन-बाँहे अंगुलियों से आसमान में -
सन्नाटा-रेखाएँ, डूबी दल-फलों के चित्र-घ्यान में
डालों के खंडहर में फिर वही
बैरी पंछी आ के गा गया ।'

- 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' से

बसन्त की ऋतु प्रणयी दिनों के लिए अत्यन्त प्रिय ऋतु है । प्रियतम सारी दिशाओं को अपनी प्रिया की अलकों में गूंथ देना चाहता है -

'आओ प्रिय !
आज गूंथ दूँ उडती अलकों में दिग-दिगन्त
देखो आया वसंत
देश-देश से ये स्वर आ आ कर
बूला बुला जाते है
बन्द घरों की दीवारें फिर फिर
हिला हिला जाते है
आओ प्रिय !
आज तुम्हारे सहमे अधरों पर
कस दूँ ये स्वर अनंत
देखा आया वसंत ।'

- 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' से-

शीत की सर्दी और अभावों की निस्पन्द उदासी के वातावरण को चीरता हुआ जब फागुन आता है, तो कवि का हृदय उमड़ पडता है । दिशाओं तक मस्ती के साथ उठती हुई धूल कवि को मस्त अवधूत के समान लगती है । फागुन की हवाएँ जब उपवनों, वनों के पेडों के पत्ते को झर-झर गिराती हुई, खेतों की पकी फसलों को बजाती हुई यहाँ से वहाँ तक सरपट भागती फिरती है तो कवि उन्हें देखकर मुग्ध हो जाता है -

'कुछ धूप, धूप में छाँह मधुर

कुछ शीत, शीत में दाह मधुर
कुछ पतझर-पतझर में मधु ऋतु
की भरी गुलाबी बाँह मधुर
अंधड में तिरती मधु परियाँ
नंगे वन बीच सुरभि-तरियां
मेरे भी मन का सूनापन सुधियों के रस में लहराया ।'

नंगे-नंगे पेड़ कवि के आकर्षण के केन्द्र रहे है । कवि जब नंगे-नंगे पेडों, सूनी शाखाओं को देखता है, तो उसे लगता है कि अस्थिपंजर से अब कहीं एक किसलय फूटा, एक कली चटकी, कहीं एक मधुमकखी भिनभिनायी, कहीं एक कोयल कूकी और बार-बार लगता है कि दिगन्त तक लाल-लाल आभा की मुलायम छांह आकाश में लहरा उठी है । स्वच्छ बुहारी हुई पगडंडियों से जब रंगो से सराबोर बरोही फाग गाते हुए गुजरे है, तो आसपास के खेत गूंजे है और उमड़े हुए खेतों मे काम करने वाली मजूरिने अपने सारे पिछलें उपवासो तथा सर्दी के दुःख-दर्द को भूलकर अन्न की गन्ध से ऊष्मित वातावरण में गीतमय हो उठी है -

'फागुन की हवा एक पात-पात लूट गयी
नंगी टहनी-टहनी पोर-पोर फूट गयी
लाल-लाल अंग हंसे, उड गया दुकूल ।
आर-आर-सार पीला सूनापन दहक गया
सोये सन्नाटे में गीत एक महक गया
धूलीमय रंग हुआ, रंगमयी धूल ।'

कवि को लगता है कि फागुन की प्रातः गुलाब-सी सहमी-सहमी आती है, तो मानो सन्नाटे की पंखडियाँ खुल जाती है -

'यह गुलाब-सी प्रातः खड़ी सहमी-सहमी
सन्नाटे की खुली-खुली पंखड़िया रे ।'

फागुन ऋतु के साथ कवि के हृदय के इतने रागात्मक सम्बन्ध जुडे है कि फागुन का नाम सुनते ही उसकी आँखों के सामने उसके सौन्दर्य की खुमारी लदी-लदी सी खुलने लगती है । फागुन का हर दिन कवि को त्यौहार-सा लगता है । उसी फागुन के बारह दिन अनजाने में बीत जाने के बाद कवि को ऐसा लगा मानो परदेश से कोई मेहमान आकर बिना मिले चला गया -

'तुम बिन, लगता, जैसे कोई
त्योहार आजोन गया निकल..... ।'[९०]

कवि को इसका अत्यधिक दुःख है कि जिस फागुन के आने से उसे सारा वातावरण

एक हल्की-हल्की सुगंध से ऊष्मित प्रतीत होने लगा था, आज उसके आधा बीत जाने पर भी उसे पता तक न चला -

'लेकिन जब वसन्त आया
तो मैं ने पहचाना ही नहीं
सामने आकाश में
धुआँ बलखाता रहा
बगल की नंगी डाल पर
एक कौआ सिर खुजलाता रहा
और मैं बैठा रह गया
अपने दरवाजे पर
वसन्त की कविताएँ पढता हुआ ।'

'बसन्त की बिदाई' नामक गीत में बिदा होते हुए भी बसन्त का भाव-भीना चित्र है, थरथराकर नीम के फूलों के गुच्छों का एकाएक स्तब्ध हो जाना, पक्षी के स्वर का गहरे दर्द में डूबकर तड़पना, फिर चुप हो जाना, ये सारे भाव विदाई के प्रतीक हैं । उन्हीं को देखकर कवि को बसन्त की बिदाई का आभास होता है -

'नीम के फूलों के गुच्छे
थरथरा कर एकाएक स्तब्ध हो गये
एक पक्षी का स्वर
अचानक गहरे दर्द में डूबकर
तडपा, फिर चुप हो गया
लगता है,
बसंत विदा हो रहा है ।'

नीरस जीवन भी फागुन ऋतु में आनन्दित हो उठता है । भाव 'फागुनी रात' गीत में देख सकत। हैं -

'यह फागुन की रात रे, मन उड़ उड़ जाए
हँसता मधु का चांद गगन में
झुर-झुर छवि की धार नयन में
नग्न शिलाओं सी तरू-बाँहों से
छन-छन झरता रस वन में
जीवन के रेतीले पथ पर
यह रस की बरसात रे, मन उड़ उड़ जाए
गंधाकुल आकाश नशीला

पी कर पत्थर भी है गीला
भीग रहे उजले-उजले पथ
बरबस मन का बन्धन ढीला
छवि का नर्तन देख रही है
तारों की बारात रे, मन उड़ उड़ जाए ।'

कविने जिस कलम से बसन्त के विभिन्न सुन्दर चित्र खींचे है, उसी कलम से पतझर को भी चित्रित किया है । 'पतझर' नामक गीत में वे कहते है -

'दिशा - दिशा में जीर्ण शिशिर का मृत रादेन झहराता,
आया मधु ऋतु की पुकार-सा पतझर झर, झर, झर, झर
रूखा, सूखा स्वर चूं चरमर बांसों में भर जाता
खड़काता समीर डालों को बहता हर-हर-हर-हर ।'

कवि ने अपने गीतों में लगभग हर ऋतु को स्थान दिया है । ऋतुओं के अतिरिक्त प्रकृति के विभिन्न रूपों और अंचल की विशेषताओं को प्रकट किया है 'धूप, पके धान-सी धूप, मोर फूटी, बादल, चले जा रहे है, सावन की सांझ, पतझर आदि ऐसे चित्र है ।

'पके धान-सी धूप झरी, पतझर आया
सूना-सा आंगन धरती का भर गया ।'

'स्वर फिरने लगे' कविता में भी प्रकृति का पतझर सम्बन्धी चित्र है -

'झर झर झर पत्ते झरने लगे
भर आया दर्द से हिया
बुझ-बुझ कर खेतों के रंग बिखरने लगे ।'

'बादल चले जा रहे' कविता में कवि ने जाते हुए बादलों का चित्र खींचा है । जिस तरह संध्या को थके राही मेले लौटते है, उसी तरह बादल जा रहे है -

'बादल चले जा रहे
संध्या को लौटे मेले से
जैसे राही हारे
बादल चले जा रहे ।'

प्रकृति के परिवेश में कविने अपनी मनःस्थिति का सुन्दर चित्रण किया है । 'बादखा बरसे' नामक कविता में प्रकृति के परिवेश में कवि की मनःस्थिति का चित्र देखिए -

'न माने बादरवा बरसे
हौले - हौले, गगन झुक रहा, धरती उडती जाये,
फसल पुकारे मेघों को, फसलों को मेघ बुलाये

मैं परदेशी तुझे पुकारूं, तू मूझको घर से
न माने बादरवा बरसे ।'[९१]

मिश्रजी ने संध्या का बडा सुन्दर चित्रण किया है । देहकता दोपहर' नामक कविता निम्न पंक्तियाँ देखिए –

'शाम होगी, नगाडे घौसे बजेंगे, दिशाएँ बांहें पसारेंगी
सिन्धु उमडेंगे बारातों के, कि चाँदनियाँ नई, घूंघट उघारेंगी ।'

इस तरह से प्रकृति के हर रूप को उन्होंने चित्रित किया है और भावों और विचारों से गुंथी होने पर वह और भी प्रभाव पैदा करती है ।

कवि के प्रकृति चित्रण का रोमानी रूप 'आए धन बादश' में आकर्षक रूप से व्यक्त हुआ है । 'आए धन बादरा' की नायिका की वियोग भावना को ये बादल अधिक उदीप्त कर देते है । इस पावस के मौसम में नायिका को अपना प्रिय बार-बार याद आता है । तेज बारिस से खेत, पानी से भर जाते है । नायिका उन खेतों को आंसुओं से भरे नेत्र के रूप में दर्शन करती है । वह बादलों से अपने प्रिय की शिकायत करती हुई कहती है –

'दूर वहाँ कजली के सग फूट से पड़े
जलद-जाल से हवा में अलक छूट से पड़े
झांक रहे जंगले से दो उदास नयन वे
बादल सुधियों के सुनसान टूट से परे
'मेरे परदेशी हरि छाए परदेस में
कभी भी न पतिया पठाए धन बादरा ।'

कवि ने अपने आस-पास प्रकृति के जिस सौन्दर्य को देखा उसके प्रति अपना पूर्ण आकर्षण व्यक्त करते हुए ऐसे वातावरण की सृष्टि की है, जिसमें एक अद्भूत वेदना है, टीस है और कुतूहल है । कवि को जो कुछ कहना है उसे नहीं कह पाता; पर प्रकृति के माध्यम से निर्मित वातावरण सब कुछ कह देता है । प्रकृति को आलंबन रूप में चित्रित करते हुए कवि ने जिस मानसिक जगत को शक्तिमता का परिचय एक ही स्थल पर पाठकों को कराया है, वह स्तुत्य है

'आँखों में धन-वन पग पथ पर
कुछ कहने को मथता अन्तर
'वह कुछ क्या है' पूछ रहा मैं
किन्तु न उरपाता कोई स्वर ।'

प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति सहज आकर्षण जहाँ-कहीं भी उनकी कविता में स्पष्ट हुआ है, वहीं हमें गीतों की बजती धुनिमें प्रकृति की सजीव सुषमा झांकती हुई दिखलायी

पड़ती है । प्रिया की टेर और प्रकृति के सम्मोहन के बीच चित्रित कवि का अन्तर्द्वन्द्व द्रष्टव्य है –

'मेध ज्यों-ज्यों हृदय ढारे गया वरदानी
भूमि-उर अंकुर पसारे गया अभिमानी
विहग सुर त्यों-त्यों पुकारे गया दे पानी
धान ने लहरा क्षितिज हशिया
भर लिया, भर लिया
विहग एक वन-वन पुकारा किया
ओ पिया ओ पिया ।'

कवि ने भिन्न-भिन्न प्रकृति प्रतीकों के माध्यम से जीवन में भोगे हुए सुख-दुःख को भी बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है –

'इन दृगों के पंथ शतशः शिशिर की रात बीती
जेठ आया, नभजला, धिरती धनी बरसात बीती
सांस खण्डहर में खडे पतझर लेकर प्राण से तरू
पार करता शैल-सागर शक्ति का रवि ढल रहा है ।'

कवि ने डूबते हुए सूर्य और धिरती हुई सांझ का भी वर्णन किया है । कवि कह रहा है कि किरण-रूपी बालिका सहम कर क्षितिज की गोद में अपनी लाज छिपाने चली और दिन अपनी ही अंतर-ज्वाला से धीरे-धीरे ऊब गया । पनघट पर संध्या के समय दिन डूबने के समय कैसा वातावरण होता है, उसे कविने विशेष महत्व दिया है –

'सां पहर पनघट की बेला,
डूब गया मन धीरे-धीरे
संध्या की सोई अलकों में हँस-हँस
कौन धूल भर देता
नभ में हँसता चाँद अकेला,
डूब गया मन धीरे-धीरे ।'[९२]

'पहाड की सांझ' कविता में कविने संध्या का सुन्दर चित्र खींचा है । इस कविता में कविने सूर्य को जीवन के पथ के रूप में चित्रित किया है । शाम होते ही चारों ओर सन्नाटा छा जाता है ।

'सुनसान पहाड़ी पर उतरी नीरव
संध्या की बेला
धूमिल-धूमिल फूली-फूली, ढल रही गगन में गोधूली

रंग रही पहाडी धरती को लेकर सन्नाटे को तूली
झाडी के लट में उलझ-उलझ राम झूल रहा नत कोलाहल ।'

प्रकृति कहीं पर हमारे संघर्षो की संगिनी होकर आती है, कहीं जन-जीवन के विराट रूप को व्यक्त करने के लिए पृष्ठभूमि होकर आती है, कहीं वह अपने नये उल्लास और सौन्दर्य से श्रम और संघर्ष से थकी हुई जनता के लिए नयी आस्था और उमंग का संदेश लेकर आती है -

'प्राणों के रस की छाया में युग से जग को पाला
कलि में हास, लता में यौवन, कोकिल में स्वर गला
मिटकर ऊसर पर तरू बनता, पाषाणों में झरना
फिर भी तुम कहते हो मुझको नभ में उड़ने वाला
तुमने केवल तन पहचाना मन पहचान न पाए
अपनी लधु नौका से मेरा
सिन्धु अथाह न बाँधों ।'

मिश्रजी के प्रकृति-चित्रण के संबंध में समग्र रूप में कहा जा सकता है कि शुरूकी कविताओं में अनुभवों का संवेदन पक्ष प्रायः प्रकृति-राग के रूप में उभरा है । पदगर्ती 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' में प्रकृति के प्रति कवि का रवैया गैर रोमानी हो जाता है । 'धूप' 'कंधे पर सूरज' तथा अन्य पखर्ती काव्य संग्रहों की कविताओं में प्रायः प्रकृति उपकरण प्रतीकों में बदल गये है । अतःजिस प्रकृति-राग ने मिश्रजी की कविताओं की नींव रखी थी, वह बाद की कविताओं में एक अनुपस्थित नहीं है । प्रकृति अब भी कविता में आती है, लेकिन उसके उल्लसित रूप के बजाय अवसाद और खिन्नता से धिरा रूप अधिक मुखर है । 'खाली पेड', 'सूख चली तलैया', 'टूटे बरगद', 'गंधहीन गुलाब', 'धूपहीन सूरज' जैसे प्रयोगो से अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रकृति के प्रति रोमानी दृष्टिकोण बिल्कुल नहीं है । जैसा कि पहले कहा गया है, प्रकृति का सीधे चित्रण नहीं होता, प्राकृतिक उपकरण प्रायः 'प्रतीक' बनकर आते हैं । अतः बसंत की प्रतीक्षा केवल बसंत ऋतु की प्रतीक्षा न रहकर बृहतर संकेत देने लगती है -

'बाहर निकलो
देखो
बंद दिशाओं को तोड़ती
धूल भरी हवाएँ बह रही हैं
उदास रूप में झरते चले जा रहे है पत्ते.....।'[९३]

रामदरश मिश्र की सन् १९५३ में लिखी गयी उनकी एक प्रारंभिक कविता 'बोझ बहुत भारी है' से ही उनकी रचनात्मक चेतना के मूलभूत सरोकारों को समझने का प्रयत्न

किया है ।

कविता में एक प्रकृति-चित्र है । सड़क के दोनों किनारे लंबे-लंबे यूकिलिप्टस के पेड़ स्वप्निल चांदनी के मधुर आलोक में आत्म-विस्मृत से खड़े है । काव्य नायक भी प्रकृति के इस अनिर्वचनीय सौन्दर्य में क्षण-भर के लिए खो जाता है । वह अपने इस अद्वितीय अनुभव-क्षण के आंतरिक उल्लास से प्रेरित अपने साथ चलने वाले नौकर से, जिसके सिर पर बहुत सारा बोझ लदा है - पूछ बैठता है - 'कैसा लगता है तुझे ?' नौकर का यह कथन कि 'बोझ बहुत भारी है', काव्य-नायक की चेतना को एक झटका देता है । वह खीझता है । किस पर ? अपने आप पर ? नौकर की अप्रत्याशित प्रतिक्रिया पर ? सौंदर्य को पहचानने की नौकर के असामर्थ्य पर ? या इस समग्र स्थिति की विसंगति और विडंबना पर ? यह नहीं कहा जा सकता । लेकिन प्रकृति के सौदर्य के साथ वह दुबारा तादात्म्य नहीं साध पाता ।

'उग रहा है चांद
पूरब की घाटियों में जंगलो के पार
सड़क के दोनों बाजुओं पर
लंबी छरहरी बांहो की तरह,
चिकने पेड सो रहे है
चूडी की खनक के समान कोई पंछी
कुनमुना उठता है
यूकि लिप्टस की चंबरदार पत्तियों के
झरोखे से
किरणों की झलमल निगाहें
एक क्षण झांकती हैं
लो उतर गयीं भू पर
हवा का जारजेट - सा
एक हलका-फुलका झोंका आया
तन सिहरा, मन सिहरा
पूछा धुरहू से -
'कुछ देख रहा है तू ?
धुरहू कंहार है
मेरे पीछे मेरा बोझा ढ़ोता आ रहा है -
दबा-दबा
बोला - 'हां बाबू देख रहा हुँ -

आगे कुछ चिराग जल रहे हैं
शायद हम आ गये
बोझ बडा भारी है ।'
बोला में - धत्तेरी की ।'[९४]

सामान्यतः मिश्रजी ने प्रकृति के विविध रूपों और रंगो में अपनी आत्म स्थितियों को खोजने का प्रयत्न किया है । बंद कमरे में भी प्रकृति उन्हे घेरे रहती है, कभी धूप के एक छोटे टुकडे के रूप में और कभी खिडकी पर दस्तक देनेवाली हवा के रूप में । जब वह उनके आसपास नहीं होती, तब उसकी उपस्थिति उनकी चेतना को 'हन्ट' करती रहती है । वस्तुतः उनकी सर्जनात्मक चेतना को प्रकृति से ही बल प्राप्त होता है । उन्हें जैसे हर मौसम की बड़ी आंतरिक और संवेदनशील पहचान है । उनका उल्लास, उनकी बेचैनी और उनकी कामना का रूप बदलते हुए मौसम के साथ बदलता रहता है । यह बात अलग है कि हर बदलता हुआ मौसम उनके हृदय में उल्लास नहीं अवसाद ही पैदा करता है । शरद आता है तो उन्हे सर्द निस्तब्धता में भय से कांपते फूल दिखाई दे जाते है ।' उधर 'अधसूखी तलैया के किनारे' 'पतझर की शाम बडी भारी' बन जाती है । एक विडंबनापूर्ण स्थिति में 'हेमंत की सूनी दोपहर' हाथ से सरक जाती है । पूस आता है तो 'उसकी बर्फ से जमकर' वह गीत ठंडा हो जाता है, जिसे कवि अकसर गुनगुनाया करता है । वसंत आता है तो 'जंगले से झरकर खाली कनस्तर में डूब जाता है ।' और वर्षा का मधुर संस्पर्श जो कंपन जगता है, उसमें 'खेतों का यौवन डूबने की' आशंका भी शामिल रहती है । इस प्रकार कवि 'खुले आसमान के नीचे नंगे मौसमी टकराहये' का साक्षी बनता है ।

शुरू की कविताओं में अनुभवों का संवेदन पक्ष प्रायः प्रकृति-राग के रूप में उभरा है । यह जानना दिलचरम होगा कि 'पथ के गीत' में जहाँ कवि की प्रिय-ऋतु पावस है, वहीं 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' में शरद और वसंत (फागुन) के बिम्ब अपेक्षाकृत अधिक है । 'पथ के गीत' में जहाँ सीधे तौर पर कई गीत पावस के सौन्दर्य के साक्षी है, वहीं कई रचनाओं का प्रकृति से सीधा सरोकार नहीं है । 'पर विद्रोही कब सुनता है ?' शीर्षक का आरंभ 'बरखा की साँझ' से हुआ है । मनः स्थितियों और विरह की अनुभूतियों को तीखा करने के लिए भी बादल, बिजली की चर्चा बराबर हुई है -

(१) फिर यक्ष-विरह के पागल दिन किसके, जीवन में भर आए ।
किसकी आहों का धुआँ लिए ये मेघ गगन में भर आए ।

(२) मेरे भी जीवन में जलती है प्यास बिजलियों वाली ।
भर जाती दृग इन्द्र-धनुष से सुधि की गलियों वाली ।

'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' में प्रकृति के प्रति कवि का रवैया काफी गैर रोमानी हो

गया है ।

'टिंचरी गंध से बिंधी
उदास दोपहरी'
'पूरब की भीगी हवा के साथ
धीरे से यू पडा यह बुखार' ।

जैसे प्रयोग इस सन्दर्भ में देखे जा सकते है । यह प्रवृत्ति 'पक गयी है धूप' में और जोर पकड़ती है । कोमल प्रकृति कठोर यथार्थ का आईना बन जाती है - 'चौराहे पर लालबत्ती के पास रूकी खड़ी है हवा,

'फूलों के जाल फैंक कर,
कामदेव बेच रहा है ताकत की दवा ।'

धूप भी कटे पंछी-सी लगती है और डुबती हुई साँझ गुदगुदाती नहीं, दहशत पैदा करती है -

'छिपकली जैसे अंधकार के जबड़े में
पतंगे की तरह लाल दिशाएँ काँपती रहीं
फिर निगल ली गयीं ।'

'कंधे पर सूरज' की कुछ कविताओं में भी प्रकृति का आकर्षण 'मार्क' किया जा सकता है । लेकिन प्रायः प्रकृति के दृश्य प्रतीकों में बदल गए है ।

रामदरश मिश्र की कविताओं में प्रकृति-राग के समानान्तर 'आस्था' और 'जिजीविषा' का स्वर प्रारंभ से आज तक सुना जा सकता है । 'पथ के गीत' में कई रचनाएँ - 'समुद्र' 'नाविक', 'पंछी', 'तूफान' आदि अप्रस्तुतों के जरिए सतत संघर्ष करने की मानवीय प्रवृत्ति को उभारती है ।

'नन्हा सा नाविक पंछी तू खेल रहा है तूफानों से
नीले सागर में नभ के लहरों सा झंझा का झोंका रे
जलता बुझता रहता है बिजली बादल के गीत-सहारे
इस विप्लव-बेला में तु जीवन की छोटी नाव निरन्तर
खेता जाता है लहरों में डँडों से लधु पंख पसारे
सो जाता लहरों का कोलाहल तेरे मधुमय गानों से
नन्हा सा नाविक पंछी तू खेल रहा है तूफानों से'' ।।

मिश्रजी की रचनाएँ साद्यंत सुबध्ध होने के दृष्टांत प्रस्तुत करती है । इनके आरंभिक गीतों में से 'रात रात भर मोरा पिहँके' भी इसी दृष्टि से उल्लेखनीय है । नदीतट, रात, मोर, पंछी नांद, जलप्रवाह, हवाएँ, बालू के महल, सपने मिलकर एक ऐसा वातावरण निर्माण करते है, जो यथार्थ के दोनों रूपों - प्रत्यक्ष तथा परोक्ष - का अनुभव

करवाएँ । यहाँ प्रकृति मानो एक चरित्र है ।[९५]

'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' में जूझने का आवेग कम दिखाई देता है एक उदासी और अकेलेपन की छाया मँडराती दिखायी देती है । 'पथ के गीत' में अनुभव किया गया था कि सदा चलते रहना जिन्दगी है, लेकिन 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' में 'चलना' मजबूरी लगने लगता है :

'क्षत-विक्षत-नाप रहा यह जलती दूरी है,
गिर-गिरकर भी चलने की क्यों मजबूरी है ।'

जिस प्रकृति राग ने मिश्रजी की कविताओं की नींव रखी थी, वह बाद की कविताओं में एकदम अनुपस्थित नहीं है । प्रकृति अब भी कविता में आती है, लेकिन उसके उल्लसित रूप के बजाय अवसाद और खिन्नता से धिरा रूप अधिक मुखर है । 'खाली पेड़', 'सूख चली तलैया', 'टूटे बरगद', 'गंधहीन गुलाब', 'धूपहीन सूरज' जैसे प्रयोगों से अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रकृति के प्रति रोमानी दृष्टिकोण बिल्कुल नहीं रहा । जैसा कि पहले कहा गया है, प्रकृति का सीधे चित्रण नहीं होता, प्राकृतिक उपकरण प्रायः 'प्रतीक' बनकर आते है । अतः 'वसंत' की प्रतीक्षा केवल वसंत ऋतु की प्रतीक्षा न रहकर बृहत्तर संकेत देने लगती है ।

रामदरश मिश्र मूलतः गाँव की संवेदना के कवि है, इसलिए इनकी कविता में ग्रामीण चेतना के बिम्बों का आधिक्य है । इन में फागुन, शीत अमराह, सरसों के खेत आदि का सुन्दर चित्रण हुआ है । किन्तु इनके प्रकृति चित्र मात्र बिम्बांकन होकर ही नहीं रह जाते, अपितु ऐसे प्रतीकार्थ में भी ढल जाते है, जो मिश्रजी के कविमन की संवेदना के लगाव को प्रकट करता है ।

मिश्रजी के प्रकृति-चित्रण के दो भेद किए जा सकते है -

(क) ग्रामीण प्रकृति से जुड़े चित्र तथा

(ख) महानगरीय परिवेश से जुड़े हुए चित्र ।

अक्सर ये दोनों प्रकार के चित्र एक-दूसरे में संक्रमित हो जाते है और अलग अर्थ की व्यंजना करने लगते है ।

मिश्रजी के प्रकृति-चित्रण में राजनीतिक अर्थो की व्यंजना भी देखी जा सकती है । काश्मीर पर पाकिस्तानी आक्रमण का वर्णन करते हुए वे जो चित्रण करते है उससे यह बात प्रमाणित होती है - 'सपनों के फूलो' सी फूली वह झरझर कुसुमों की घाटी । धुएँ की लपटों में घायल-सी भरघट-सी लगती होगी ।।'

प्रकृति के विभिन्न उपादान उन्हें अपने व्यक्तित्व के संग से लगते है । कुछ उदाहरण दृष्टव्य है -

(१) ग्रीष्म की तपन में गुलमुहर के फूल-सा जो दिन मिला था मुझे ।

(२) ममता की व्यास रेखाई मुझे जोडे हुए है ।

(३) भूसे की बछिया से । पेन्हाती हुई गाय-सी मेरी रातें

(४) शोकसभा में, सिर लटकाए निस्पन्द शोक व्यापारियों से दिन, झींगुरों के स्वर-सी मेरी कुछ सुबहें ।

बसंत कवि का प्रिय मौसम है और इसके चित्र अलग-अलग परिवेश में विविध प्रतीकायोँ के साथ इनकी कविताओं में अंक्ति हुए है ।

कुछ चित्र दृष्ठव्य है -

(१) शहर में बसंत के अल्हड उन्माद को पहचानना तो

(२) दूर कवि इसके आगमन को भी नहीं जान पाता -

'लेकिन जब बसन्त आया
तो मैं ने पहचाना ही नहीं
सामने आकश में धुआँ बल खाता रहा
बगल की नंगी डाल पर
एक कौवा सिर खुजलाता रहा
और मैं बैठा रह गया
अपने दरवाजे पर
बसंत की कविताएँ पढता हुआ ।'

(२) गाँव की बदली हुई मनःस्थिति में बसंत के आगमन की प्रतिक्रिया कैसी होती है-

'दिन दहाड़े उल्लू बोलते है, आदमी चुप है,
खाइयों और गुफाओं में उजाला है
मैदानों में अंधेरा धुप है
बडे खेत छोटे खेतों को खा रहे हैं बीन बीन
शरीर पर लूट रहे है देश
आत्मा बिक रही है पैसे की तीन ।
बसंत खडा सोचता है - शहर में तो वह अजनबी
होही गया था । यहाँ भी कोई नहीं पहचानता
एक बार फिर
अपने स्तब्ध पुष्प के तन को देखता है,
और चुपचाप मरोड़ कर
डाल देता है झोले में ।'[९६]

- 'पक गई है धूप'

मिश्रजी के प्रकृति चित्रों में नीम, सेमल, टेसू अमल तास, गुलमोहर, खेत, मैदान,

बादल जल, नदी, नाव, वर्षा, शरद, ग्रीष्म, बसंत, हेमन्त, पंतझर, फागुन आदि सभी के चित्र मिल जाते है । इन प्रकृति चित्रों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये केवइ चित्र मात्र नहीं है, अपितु दायित्व बोध से जुड़े हुए प्रतीकार्थ को भी व्यंजित करते है । एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

'बदखा रे
आ... आ... आ...
जूझ रहे है बीज रेत से नित नवता के दर्दी
भटक रहा तू आवारा सा यह कैसी नामर्दी
धूप चीर उगते शिशुओं पर,
अपने पंख बिछा ।'

इन पंक्तियों में बादल का दायित्व बीज के प्रति जोडकर कविने अपनी सामाजिक चेतना को मुखर किया है ।

रामदरश मिश्रजी की काव्य यात्रा बहुत लम्बी है । इस यात्रा में वे अनेक बार आन्दोलनों के बीच से गुजरे है, किन्तु कहीं भी वे भटके नहीं । आधुनिकता के व्यामोह में उलझे नहीं । अपनी आधुनिकता को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा भी है – आधुनिकता का समर्थक हुँ – मैं उसे जीकर आकार देने का विश्वासी । किन्तु एक प्रकार के अतिवादी फैशन को आधुनिकता मान लेने में मेरी आस्था नहीं है । मानव संवेदनाओं और मूल्यों के सन्दर्भ में ही नये-नये प्रयोगों की सार्थकता है, यह विश्वास लेकर मैंने नयी कविता भी लिखी है और नये गीत भी । यो मैं नये गीतों को नयी कविता नहीं मान पाता । स्वाभाविक है कि अति आधुनिकता का पोज देने वाले-लोग इन गीतों या गीतात्मक संवेगों वाली अन्य कविताओं को अपटूडेट न माने – अपटूडेट नहीं याने कविता नहीं ।' यह मंतव्य मिश्रजीने 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' नाम के कविता संग्रह में व्यक्त किया था और हमेशा इस पर दृढ रहे । उन्होंने गीत भी लिखे, गजल भी औ मुक्त छन्दवाली नई कविता भी, किंतु सदैव उनका आग्रह सार्थक सामाजिक मंतव्य वाली कविता पर रहा । निरूदेश्य लापरवाही से काव्यकर्म में प्रवृत होनेवाले कवियों से असहमत होते हुए वे कहते है – 'अब तो लोग । चलते चलते रास्ते में से उठा लेते है कविताएँ । पत्थर के टूकड़ों की तरह । और जोर से फेंक देते हैं किसी भी दिशा में । फिर हाथ झाड़कर चल देते है – जहाँ जाना होता है । मुड़कर भी नहीं देखते । कि उस टूकडे से, किसी सेठ की खिड़की का शीशा टूटा है या सडक का बल्ब या टुकड़ा स्वयं चोट खाकर कहीं गिर गया है ।'

– 'कंधे पर सूरज'

कविता के कर्म के प्रति इस प्रकार से समर्पित कवि अनेक काव्य आन्दोलननों से बहुत बड़ा है और उसकी काव्य यात्रा खेमेबन्दी से मुक्त होकर भी सार्थक है ।

प्रतीक योजना

'प्रतीक' शब्द अंग्रेजी के 'सिम्बाल' शब्द से परिभाषित किया जा सकता है । हिन्दी समीक्षा जगत में प्रतीक और बिम्ब शब्द पाश्चात्य समीक्षा शास्त्र से हिन्दी में अवतरित हुए है । प्रतीक शब्द की सरल शब्दावली में व्याख्या करते समय हम कह सकते है कि जो शब्द प्रस्तुत संदर्भ से हटकर किसी अन्य की ओर संकेत करे, वह प्रतीक है । प्रतीक बिम्ब का निकटवर्ती होते हुए भी स्वरूप भिन्नता के कारण अलग अर्थ रखता है । वास्तव में बिम्ब का विकसित रूप प्रतीक है । भारतीय साहित्य शास्त्र में शास्त्रवादी आचार्यों ने ध्वन्यार्थ की जो व्याख्या की है, प्रतीक उसके निकट की वस्तु है । प्रतीक के संदर्भ समाज, धर्म, राष्ट्र और वैयक्तिक जीवन के वैशिष्ट्य आदि सभी से जुड सकते है ।

वह अवश्य है कि इतिहास के विकास-क्रम की प्रक्रिया में प्रतीक के अर्थ नये संदर्भों में बदलते रहे हैं । प्रतीक की व्याख्या करते हुए SL. छोटेलाल प्रभात ने कहा है कि - **'संस्कृत में यह अंग या अवयव से लेकर विकसित और प्रतिकूल तक का अर्थ देता रहा है । इतिहास के खण्डहरों में भटकने का भी अपना रस है, पर इस संदर्भ में इतिहास की ओर देखना इसलिए आवश्यक है कि प्रतीक शब्द से पुराने अर्थों के अवशेष नये अर्थ के आयामों को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है, जिससे अवचेतन में छिपी कुंठित पीडाएँ लेखक को समझने में सहायक होती है । वैसे प्रतीक के पुराने पीछे छूटे हुए विस्तृत अर्थ उसके वर्तमान को परिभाषित करने में सार्थक है । हिन्दी का प्रतीक शब्द तन से शुद्ध संस्कृत परंपरा का है, पर इसका अर्थ युरोपीय परम्परा से विशेष जुडा है । सच तो यह है कि सौन्दर्यशास्त्र तथा कला चिंतन के आधुनिक संदर्भ में यह अपने से अधिक अंग्रेजी पर्याय के अर्थ की व्यंजना करता है ।'**

हिन्दी काव्य में प्रत्येक युग में प्रतीकों का प्रयोग होता रहा है । आधुनिक कविता में प्रतीक का प्रयोग विकसित होते हुए भी लाक्षणिक शैली के रूप में विकसित दिखायी पडता है, **'पाश्चात्य अलंकारों को आत्मसात करके नूतन प्रतीक योजना में लक्षणा के इतने अधिक प्रयोग हुए कि लाक्षणिकता इस काल के काव्य की एक शैली ही बन गयी ।'**

विषय की द्रष्टि से प्रतीक पौराणिक रहस्यात्मक बौध्धिक तथा शुद्ध प्रतीक आदि रूप में वर्गीकृत किए जा सकते है । आज प्रतीक काव्य का एक विशेष गुण बन गया है । 'प्रतीक' अन्तर्मुखी कवि का मूल्यवान अस्त्र है, 'प्रतीक सूक्ष्म की अभिव्यक्ति है । द्विवेदी-युग के बाद के काव्य में प्रभाव साम्य की ओर ध्यान अधिक रहने से धर्मों के प्रभाव को कवि ने अधिक महत्ता दी । प्रभाव जहाँ तक सामान्य है, वहाँ तक विषय-प्रधान है । कालिमा देखकर मन में मलीनता के भाव जाग्रत होते है । चांदनी की स्छच्छता;

निष्कपटता के भाव जगाती है; अतः आधुनिक काव्य ने उसे निष्कपटता का प्रतीक माना; सांसों के स्वतः आवागमन ने स्वाभाविकता के भाव प्रकट किये ।'[९७]

डॉ. भगीरथ मिश्र के अनुसार - **'प्रतीक अपने रूप-कुरूपार्थ या विशेषताओं के साद्दश्य एवं प्रत्यक्षता के कारण जब कोई वस्तु या कार्य किसी अप्रस्तुत वस्तु, भाव, विचार, क्रिया-कलाप, देश-जाति-संस्कृति आदि का प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रकट किया जाता है, तब वह प्रतीक कहलाता है ।'**

डॉ. गोविंद रजनीश ने लिखा है कि - **'काव्य में प्रतीक का प्रयोग काव्य-रचना की अन्तः प्रेरणा से सम्बन्धित होता है । इस विधान में कवि की वैयक्तिक अनुभूतियाँ और सामाजिकता के जटिल संदर्भ परस्पर अन्तःप्रक्रिया करते है ।'**

'प्रतीक भावों की गहनतम अभिव्यक्ति के साधन है, जिनके माध्यम से अमूर्त, अदृश्य, अश्रव्य, अप्रस्तुत, विषय का प्रतिविधान मूर्त द्रश्य, श्रव्य, प्रस्तुत द्वारा किया जाता है । प्रतीक मानव, परिवेशन में द्रष्टिगत वस्तु का मानव प्रतिमा के साथ तादात्म्य कर लेता है । कल्पना के पुट द्वारा उसका आदर्शमय स्वरूप प्रस्तुत कर कला का सृजन करता है ।'

डॉ. प्रेम प्रकाश गौतम का मत है कि, 'प्रतीक अनुभूति के संप्रेषण का साधन है, प्रतीक योजना करते हुए कवि का उदेश्य अपने को अर्थ की अभिव्यक्ति अपने अनुभव का प्रेषण करता है । अर्थ-प्रेषण ही कवि की अभिप्रेत होता है, बिम्ब प्रस्तुत करना नहीं ।' अज्ञेयजी का मत है कि, 'विवेक की प्रतिमा भी प्रतीक सृष्टि की प्रतिभा का सहारा लेकर ही प्रतिफलित होती या हो सकती है । मानवेत्तर सभी प्राणी, जिन्होंने प्रतीक सृष्टि की, यह प्रतिभा नही पाई है, एक सीमित जीवन ही जी सकते हैं । उनका जीवन स्थूल जगत की अगोचर अनुभूतियों तक ही सीमित रहता है और वे अनुभूतियाँ भी एक-दूसरे को संप्रेष्य नहीं होतीं, क्योंकि संप्रेषण का कोई परिपक्व साधन उनके पास नहीं है ।'

इस तरह हम कह सकते हैं कि प्रतीकात्मक व्यंजना हमारी वाणी, ध्वनि, रंग-रूप, प्रवृत्तियों, शोकादिक अनुभवों, विचारों आदि की चेतना का अत्यधिक विस्तार करती है और इस प्रकार हम कवि के आशय, उसके विस्तृत अनुभव को बहुत कुछ स्वयं भी अनुभव करने में समर्थ होते है अथवा प्रतीक के माध्यम से उसका कल्पनात्मक दर्शन करते है, कारण कि कवि अपनी विशेष प्रतिभा शक्ति से आन्तरिक अनुभूतियों की यथार्थ अभिव्यक्ति के अर्थ-संकेतों से पुष्ट प्रतीक-शब्दों को बडी सतर्कता से प्रयुक्त करने में समर्थ होता है । वह उन पदार्थों, अनुभूतियों और शब्दों के अर्थ-संकेत के आध्यात्मिक सम्बन्ध को भली-भांति पहचानता है, तभी वह उसका प्रयोग करता है । उनको अपनी कल्पना से आवेष्टित करता है ।

स्पष्ट है कि काव्य में प्रतीक का प्रयोग किसी-न-किसी रूप में सदैव होता रहा

है । जिन कवियों की कविताओं में कहीं सपाट बयानी दिखायी पडती है, वहीं उनकी दूसरी कविताओं में प्रतीक का सुन्दर प्रयोग भी हुआ है । प्रतीक एक प्रकार से काव्य-मूल्य बनकर प्रयुक्त हो रहा है । प्रतीक के स्वरूप और उसके काव्य में प्रयुक्त होने की प्रक्रिया के स्पष्टीकरण के बाद रामदरश मिश्रजी के काव्य में प्रतीकों के प्रयोगों का मूल्यांकन यहाँ प्रस्तुत है ।[९८]

मिश्रजी के सभी काव्य-संग्रहों पर एक विहंगम दृष्टि डालने पर पता चलता है कि मिश्रजी के काव्य में कुछ प्रतीक ऐसे हैं, जो बार-बार आए हैं । हो सकता है, वे विशेष रूप से उन्हें प्रिय हों । जैसे - बसन्त, फागुन, जंगल, धूप, सडक, जल, गठरी आदि । अधिकतर प्रतीक प्रकृति से ही गृहीत है । सबसे पहले बसंत को ही लें, बसंत कई रूपों में चित्रित हुआ है ।

- **बसंत की सुबह :-**

'तुम कितनी भटकी हो हवा !
लेकिन देखो,
अब सुबह हो रही है
आकाश और धरती के बीच एक सुनहली आग-सी
जल रही है
जाओ इस झील में नहा आओ
और इस नयी धूप में अपने पंख सुखा लो
देखो, चारों ओर फूल खिल रहे हैं ।'

- 'कंधे पर सूरज'

- **बसन्त आ रहा है :-**

'न जाने तुम कौन हो,
ओ, रूप-रंग-विहीन
जिसे मैं आज याद कर रहा हूँ
'तुम कोई हो भी या नहीं !'
मैं नहीं जानता
मगर तुम्हीं तुम मेरी आत्मा में भर गये हो ।'

- 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ'

- **ओ वसंत की हवा :-**

'शाखाओं के सँग सँग आया

मैं हिम-रातें पीता
शाखाएँ ये फूल बन गयीं
मैं रीता का रीता
रीती आँखों में फूलों के
दीप-दीप धर दो
माँगता शून्य गुलमुहर दो ।'

- 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ'

हमेशा वह यौवन, उल्लास, उमंग आदि का ही प्रतीक है । कहीं उसके आगमन पर खुशी जाहिर की गयी है, तो कहीं उसके आने का उल्लास पंक्तियों में भरा हुआ है । मिश्रजी के पहले दो काव्य-संग्रहों - 'पथ के गीत' और 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' में बसंत का जो रूप चित्रित हुआ है, उससे बाद के अन्य संग्रहों जैसे - 'कंधे पर सूरज', 'पक गई है धूप', 'दिन एक नदी बन गया', 'जुलूस कहाँ जा रहा है' में आये रूपों से पर्याप्त भिन्नता है । भिन्नता इसलिए है क्योंकि शुरू-शुरू में मिश्रजी की कविताएँ छायावाद से प्रभावित रही हैं । मार्क्सवाद के अध्ययन के बाद मिश्रजी की रचनाओं पर प्रगतिवाद का प्रभाव पडा है ।

बसन्त का आगमन यौवन के आगमन का, किसी विराट खुशी की प्राप्ति का प्रतीक है । 'बसंत आ रहा है' नामक काव्य में कवि अज्ञात फूल को सम्बोधित कर रहा है, जो कि निस्सन्देह प्रेयसी का प्रतीक है । कवि कहता है कि मेरी साँसें तुम्हारी सुरभि से पागल हो गयी है और बार-बार ऐसा महसूस होता है कि बसन्त आ रहा है । इस तरह बसन्त प्रिय के आगमन का प्रतीक बन जाता है । प्रिया के आगमन से पहले की अपनी अनुभूति को व्यक्त करने के बाद कवि सीधे नहीं कहता है कि मेरा यौवन लौटकर आ रहा है या तुम आ रही हो । वह कहता है -

'ओ कोई अज्ञात फूल ।
मेरी सांसे तुम्हारी सुरभि से पागल हो गयी हैं
और न जाने क्यों रह-रहकर ऐसा लग रहा है
कि
बसन्त आ रहा है ।'[९९]

इस तरह कवि प्रिय आगमन की बात को बसंत से जोड देता है । 'बसंत की हवा' भी यौवन की विशिष्ट अनुभूति का चित्र है । कवि शुष्क जीवन को रंग देने की मांग कर रहा है, यौवन से बिनती कर रहा है । स्वयं को भूला हुआ जानकर कहता है कि मुझे शाम का घर दो, ठिकाना दो । यौवन का दीवानापन स्पष्ट ही व्यक्त है । कवि कहता है -

'ओ बसन्त की हवा !
कंठ यह गीतों में भर दो,
कि जड नीरवता को स्वर दो ।'

इस तरह कवि का शुष्क जीवन मानों बसन्त की हवा से यौवन की मांग कर रहा है - कवि ने रीति आँखों में फूलों के दीप और अपने शून्य के स्थान पर गुलमुहर की मांग की है, जो उत्साह की ज्योति का प्रतीक है ।

इसके पश्चात् प्रियागमन पर जैसे बसन्त बौरा उठता है अर्थात् यौवन मतवाला हो उठता है, 'बौरा-बौरा बसन्त' मचलते दीवाने यौवन की ओर संकेत करता है और दीवानगी की हद तो देखो -

'आओ प्रिय !
आस गूँथ दूँ उडती अलकों में दिग्-दिगन्त
देखो आया बसन्त' ।

यौवन के आगमन का उल्लास और गगनचुम्बी कल्पनाएँ बसन्त के माध्यम से प्रकट की गयी है - जिस तरह बसन्त के आने पर नीरस सेमल तक की पोर-पोर लाल हो उठती है, दिशाएँ मानों गंध रंगी चूनर-सी हों, उसी तरह यौवन भी अच्छे-अच्छे नीरस व्यक्ति के दिल में भी उल्लास की चमक पैदा कर देता है । नीरस सेमल-जड मनुष्य का प्रतीक है ।

'हवा दौडी हुई
उसे मोड तक आयी
फिर एकाएक रूक गयीं
समुद्र के ऊपर फैले
धूमिल सन्नाटे जैसा मौन हाहाकार
दीठियों के आकाश में हहर रहा है
लगता है -
बसन्त विदा हो रहा है !'१००

वसन्तागमन और वसन्त के होने के अहसास के बाद वसन्त का चला जाना, वसन्त की विदाई यौवन की विदाई की ही ओर संकेत करती है । एक काव्य में मिश्रजी ने इस विदाई का भी चित्र दिया है - वे एक बिम्ब द्वारा वहाँ स्पष्ट करते है कि नीम के फूलों के गुच्छे थरथराकर स्तब्ध हो गए, न जाने क्यों एक पक्षी का स्वर अचानक गहरे दर्द में डूबकर तडपता है, फिर चुप हो जाता है जो कि एक गहरी व्यथा का परिचायक है - निश्चित ही बौरे-बौरे बसन्त के भोगने के बाद कवि को बसन्त का

जाना अखरेगा ही, लेकिन यौवन का ज्वार जितनी तेजी से चढता है, वैसे ही तेजी से उतर जाना निश्चित होता है । यौवन के जाने का अहसास ही कितना दुःखमय होता है, वह 'बसन्त की विदाई' नामक काव्य से सहज ही स्पष्ट होता है ।

'दूकानों पर उतरायी है तितलियाँ
भँवरों के होठों से चिपकी हैं
कोफी की प्यालियाँ
चौराहे पर लालबत्ती के पास
रूकी खडी है हवा
फूलों के बाण फेंक कर
कामदेव बेच रहा ताकत की दवा'

– 'पक गई है धूप'

'टहनी पर खिला
एक बडा-सा पीला गुलाब
आभा से थरथराता हुआ
एक
एक
पंखडी
झरती
रही
शाम
तक
और अन्त में जब कुछ नहीं रहा
तो एक अनुभूति गुलाब होने की
महकती हुई दिशाओं तक छा गयी ।'

– 'पक गई है धूप'

यहाँ तक तो स्पष्ट है, लेकिन कवि ने जहाँ 'महानगर में बसन्त' और 'बसन्त का एक दिन' नामक कविता में बसन्त का जो चित्रण किया है, वह उक्त वर्णन से नितान्त भिन्न निम्न कोटि का है, क्योंकि यहाँ तक आते-आते कवि की द्रष्टि में पर्याप्त भिन्नता आ चुकी थी, प्रौढता आ चुकी थी ।

'महानगर में बसन्त' नामक काव्य में उन्होंने व्यंग्य किया है – आज के नगरों

की सभ्यता पर जहाँ नकली बसन्त अर्थात् महज दिखावटी यौवन का बोलबाला है । असली यौवन तो कहीं और पलता है, यहाँ उसकी कोई पूछ नहीं - समग्र वातावरण में अवास्तविकता को प्रमुखता मिली है, तितलियाँ बागों की जगह दुकानों पर हैं । चौराहे पर, लाल बत्ती के पास हवा ठहरी है । भँवरों ने फूलों का स्वाद लेना छोड दिया, उनके होठों से कॉफी की प्यालियाँ चिपकी है, ये सारे नाकामयाब यौवन के प्रतीक हैं - तितलियाँ युवतियों की और भँवरे युवकों के प्रतीक है । वहाँ बसन्त को अब कोई नहीं जानता । यौवन लुटा-लुटा-सा है । महानगर की भीड में कहाँ खिल पाता बेचारा, उसकी हालत द्रष्टव्य है -

'बसों में फट गये हैं
रेशमी वस्त्र और साज
धूल से भर गये हैं लहरीले कोमल कुन्तल
टूट गया है ताज
कई दिनों से पागल-सा भटक रहा है
सडकों, गलियों, पार्कों, कॉफीघरों में
आह, कोई नहीं पहचानता अब यहाँ
सोच रहा है बेंच पर बैठा-बैठा
थका ऋतुराज ।'[१०१]

'जंगल एक ऐसा प्रतीक है, जिसका प्रयोग कवि ने कई स्थानों पर किया है । 'जंगल में मैं' और 'मुझमें जंगल' दो रूपों में कवि उसे लेता है । बंद जल में तैरती मछलियाँ - उस अवरोध का प्रतीक है, जो मानव की सहज गति को रोकती हैं -

'यहाँ तो बन्द जल में तैरती हैं मछलियाँ
बन्द हवाओं पर टँगे हैं मकान
जैसे कुहरे पर आकाश
बन्द खुशबुओं को बेचती फिरती हैं रातें
कहाँ हैं वह जंगल
जहाँ से कभी एक बार गुजरा था ?'
- 'पक गई है धूप'

'अभी-अभी ये लोग जंगल में आये थे
कुल्हाडियाँ और गँडासे लिये हुए
तमाम घनी कँटीली झाडियाँ काट गये हैं

बडे-बडे टीलों को तोडकर बराबर कर गये हैं
और आँखों में विजय की अस्तव्यस्त चमक लिये
लौट रहे हैं
कल फिर आयेंगे
एक बडे से लोहे के जाल में
घबराये हुए अनेक खूँखार जानवर कैद हैं ।'

- 'कंधे पर सूरज'

कवि परेशान है जहाँ से वह गुजरा था, जो उसने अनुभव किया था, वह यहाँ नहीं है और जलती हुई एक-एक अनुभूति उसमें से गुजरने लगती है । जंगल का जलना एक गहरे आघात का द्योतक है । आग मानों एक भव्य शून्यता है, जो शांति से अन्दर ही अन्दर कवि को भस्मीभूत कर देती है । बंद जल सीमित दायरों का प्रतीक है और सुलगता जंगल सुलगती भावनाओं का प्रतीक है ।

'निर्वसना डालियाँ
पुराने वस्त्र फेंक कर
उतर आयी हैं धूप की गुनगुनी नदी में
सीमान्तों को तोडता पवन बहता है
रास्ते हिलते हैं
और नंगी परछाइयाँ, परछाइयों में समा जाती है'[१०२]

'पतझर' भी एक ऐसा प्रतीक है, जो कवि द्वारा कई बार प्रयुक्त हुआ है । पतझर की दोपहर, 'पतझर की एक अनुभूति' नामक काव्य में उन्होंने पतझर को कोई रूपों को लिया है ।

'पतझर एक अनुभूति' नामक काव्य में पतझर उस आशा का प्रतीक है जो निराशा के बाद आती है । उस आशा को कवि कई प्रतीकों द्वारा स्पष्ट करता है । पतझर वास्तव में उदासी का नहीं, आशा का द्योतक है, क्योंकि पतझर के बाद ही वसन्त आता है । बसंत की आशा पतझर के साथ जुडी है । कवि भी आशावादी हो उठा है -

'निष्पन्द, खिले गुलाब-सा
एक सन्नाटा आकाश में ठहरा है
और रह-रहकर लगता है
अब कहीं से कोयल बोल उठेगी ।'

कोयल का बोलना भविष्य की खुशी का और आज का सन्नाटा उदासी का प्रतीक है । 'पतझर की दोपहर' में भी उदासी की एक गहरी रेखा खिंची दीखती है ।

'झरता है बाँस-वन
पीली-पीली दोपहरी
ठहरी हैं रहें
ठहरी हैं चौमुहानी.....।'

'एक नीम मंजरी' मिश्रजी के सुन्दर गीतों में से एक है, जो कि अपने आप में प्रतीकात्मक है । नीम मंजरी ही प्रतीक है - प्रणय की प्रथमानुभूति के गीत में कवि कहते है -

'एक नीम मंजरी
मेरे आंगन झरी
कांप रहे लौहे के द्वार ।'

मिश्रजी की अनुभूतियों और संवेदनाओं का धरातल काफी व्यापक है । सामयिक स्थितियों से साक्षात्कार करने की उनमें पारदर्शी द्रष्टि है । उन्होंने युगीन संदर्भ और विसंगतियों को प्रतीकात्मक ढंग से व्यक्त किया है -

'अपनी धरती की सांसों को
पी लिया है सांपों ने
उसे समुद्रों पार से
आक्सीजन दिया जा रहा है ।'

'दवा की तलाश' कविता में कवि ने 'माँ' को ग्रामीण संवेदना के प्रतीक के रूप में लिया है । कवि महानगर के जंगल से लौटने की प्रतीक्षा में है -

'दिल्ली में दिल्ली को तलाश रहा हूँ
किसी गली में अपने को फँसा कर
अनेक गलियों को फाँस रहा हूँ
और मन को समझा-बुझा दिया है
कि माँ अब तक तो मर चुकी होगी ।
कल गाँव से नया-नया आने वाला एक युवक
कह रहा था -
माँ अभी मरी नहीं है
वह अभी भी तुम्हारे लौटने का इन्तजार कर रही है.....।'[१०३]

'बसंत की सुबह' कविता में कवि ने अपनी जनवादी द्रष्टि को प्रतीक के माध्यम से उभारा है । हवा शोषित जन-सामान्य के रूप में चित्रित है । इसमें वायदा करने

वाले तथाकथित समाज-सेवक हैं । भ्रष्टाचार से परिपूर्ण घुटनमय सामाजिक-राजनीतिक वातावरण है । जनसेवा के नाम को भुलाने वाले समाज के कर्णाधार है, स्वतंत्रता और सुखमय भविष्य की कल्पना करने वाली आँखों में सपने लिये हुए लोग घुटनपूर्ण वातावरण में छटपटा रहे है । कवि ने इन्हीं सब तथ्यों को इस कविता में प्रभावी रूप से समेटने का प्रयास किया है । कवि ने इन प्रतीकों के माध्यम से जन-सामान्य को क्रांति के लिए आह्वान किया है -

'तुम हवा हो
फसलों की धुन पर
गाओ बनजारों की तरह आबारा प्रेम-गीत
जो जंगलों, मैदानों, घाटियों का अन्तराल तोडकर
बहता रहे..... बहता रहे..... ।'

'गठरी' नामक कविता में कवि ने 'गठरी' को 'समस्याओं' के प्रतीक के रूप में लिया है । इस कविता में कवि ने जिन्दगी के अनेक पक्षों को उभारा है, जिनसे आज का आदमी जूझ रहा है । समस्याओं के असह्य बोझ से लदा मनुष्य इन कविताओं में देखा जा सकता है -

'लेकिन ज्यों ज्यों मैं बडा होता गया
मुझे अपने चारों ओर गठरियां ही
गठरियां दीखने लगीं
कि गाँव के आदमी के सिर पर जो कुछ है
(वह चाहे पगडी या टोपी ही क्यों न हो)
एक गठरी है ।'[१०४]

'हम नन्हें-नन्हें जीव' सही मायने में एक प्रगतिशील कविता है । प्रगतिशीलता जो छोटों को आगे बढने के लिए, गिरे हुए को उठने के लिए प्रोत्साहित ही नहीं करती है, अपितु पीठ थपथपाती है । कवि की लोक संवेदना छोटे-छोटे प्रतीकों और बिम्बों से बडा चित्र उकेरती है । न कहीं संप्रेक्षण का गैप है, न ध्वनियों और रंगों का मोह-जाल, न दर्शनों की ऊलजलूल गहराई, जिसमें कवि की बात ही कहीं फँस जाय । सादगी से नन्हें-नन्हें जीवों ने ऊँचे विशाल शिखरों को कितनी बडी चेतावनी दी हैं, जो ठोस और अभिप्राय है । 'छोटे' शब्द शोषित और 'ऊँची' शब्द शोषकों के प्रतीक के रूप में कवि ने लिया है -

'आज हम छोटे है
दबे हुए हैं

ऊँची नजरों में छोटे हैं
लेकिन कल कहाँ होंगे
पता नहीं ।
शायद हम बैठकर तुम्हारे शिखरों पर
फिर अपने थके पांव खोलेंगे
पंख फड-फडायेंगे
नयी चढानों के लिए
नयी उडानों के लिए ।'

'चूहा' एक प्रतीकात्मक कविता है । कवि ने चूहा के माध्यम से भ्रष्ट नेताओं और सुख-सुविधाभोगी शासनाधिकारियों की स्वार्थपरता पर तीव्र प्रहार किया है । ये लोग अपने गलत कारनामें छिपाने के लिए जनसंचार माध्यमों पर भी प्रहार करते है । पूंजीपति इनसे संरक्षण पाते है, क्योंकि पूंजीपतियों से इनकी जेबें फूलती है । प्रस्तुत कविता में 'किताब' जनसंचार माध्यम का प्रतीक है । कवि ने स्पष्ट किया है कि ये माध्यम यदि इन लोगों के प्रतिकूल जायेंगे तो नष्ट कर दिये जायेंगे । कवि ने आशंका व्यक्त की है कि वर्तमान पूंजीवादी सभ्यता में जनसंचार के माध्यम भी स्वतंत्र नहीं रह गये हैं -

'सावधान
चूहे फिर उतरा गये हैं सडक पर
जल्दी ही घरों में प्रवेश करेंगे
अपनी-अपनी किताबें संभाल लो
ये गोदाम या तिजोरी नहीं काटते
केवल किताबें काटते हैं
क्योंकि उनमें इनसे बचने
या मारने के उपाय लिखे होते हैं ।'

कल्पवृक्ष कविता में 'कल्पवृक्ष' सत्ताधारियों के झूठे आश्वासनों का प्रतीक है । कवि की जनवादी द्रष्टि अवसरवादी राजनीति को देख नहीं पाती । नेताओं की अवसरवादिता पर कवि ने कल्पवृक्ष के माध्यम से व्यंग्य किया है -

'यह राजधानी है
यहाँ स्वर्ग जाने के लिए क्या नहीं है
कुर्सी है
कनाट प्लेस है

अंग्रेजी है

और यमुना का पानी है ।'[१०५]

'उडो बगुलो' कविता में बगुलों सुविधा-भोगी राजनेताओं का ही प्रतीक है । अपनी सुख-सुविधा के लिए ये नेता देश का अनुचित उपयोग करते हैं । ये नेता प्रत्यक्ष में देश-सेवा का नाटक करते है । अपने चरित्र को स्वच्छ घोषित करते है, लेकिन ये जन-सामान्य का मांस तक खा जाते है -

'उडो बगुलो, उडो

देश का आकाश अपना है

जहाँ चाहो मुडो

परों में हो श्वेतहंसी चाल

तैरती हो शांति स्वर में

द्रष्टि मे हो ताल

दे जहाँ चारा दिखाई

भूमि से आ जुडो ।'

पेड कविता में पेड जन-सामान्य का प्रतीक है । 'नया मौसम' परिवर्तन का प्रतीक है । जनता पिछली सरकार के कारनामों से असंतुष्ट होकर दूसरी पार्टी को अपना बहुमत देकर जिताती है । वह सोचती है कि नयी सरकार उसके हित के लिए कुछ करेगी, पर उसे सुनने को यह मिलता है कि वह इसी बात पर बहस में लगी हुई है कि पिछली सरकार के कौन-कौन से अभियोग लगाये जाय -

'उदास खडे पेड कब से

पिछली आंधी में टूटे हुए पेड

नये पत्तों की प्रतीक्षा में

और नया मौसम

जोर-शोर से अभी इसी बात पर बहस कर रहा है

कि आंधी के खिलाफ

कौन-कौन से अभियोग लगाये जाय ।'

'बिल्ली रानी' शोषण की व्यवस्था की प्रतीक है । शोषण उन्हीं का शोषण कर सकते हैं, जो असहाय और निर्बल है । वे उन लोगों का शोषण नहीं कर पाते जो समर्थ है । शक्ति सम्पन्न लोगों का शोषण संभव नहीं है । चिडिया से कवि का तात्पर्य ईमानदार पत्रकार, प्रतिबध्ध लेखक एवं सच्चे देश-सेवियों से है -

'बिल्ली रानी,
तुम्हें जानना चाहिए था
कि चूहे और चिडिया में भेद होता है
पूंछ और पंख का अन्तर
तुम्हें जानना चाहिए था बिल्ली रानी ।'

'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' की 'दूर ही दूर से बुलाता है' गीत की कुछ पंक्तियाँ देखिए –

'राह पावों में पिन्हाकर कोई
दीठियों पार मुस्कराता है
रूप उसका सदा अदेखा कर
जैसे कोई फूल महमहाता है
बन्द तन्हाइयों के कमरे में
जैसे कोई झाँक-झाँक जाता है ।'[१०६]

यह वस्तुतः वसन्त की प्रतीक्षा का गीत है । पावों को राह पिन्हाकर दीठियों पार मुस्कराने वाला, फूल की तरह महक कर भी अदेखा रह जानेवाला, बन्द तन्हाइयों के कमरे में झाँ जानेवाला वसन्त है । लेकिन कविता पढते ही हमारे सामने स्पष्ट हो जाता है कि किसी सुवास की खोज का अह्वान करनेवाला यह वसन्त केवल एक मौसम न रहकर जीवन की किसी महत्ती संभावना का प्रतीक भी बन जाता है और यह संभावना क्या आज के भारत के आम आदमी का वह सुख-स्वप्न नहीं है, जिसकी पहचान उत्तरोत्तर घुँधली बनती गई है –

'न जाने तुम कौन हो
ओ रूप-रंग-विहीन
जिसे मैं आज याद कर रहा हूँ
तुम कोई हो भी या नहीं ?'

लेकिन यहीं प्रश्न उठता है कि यदि वह कुछ नहीं हे, उसकी सत्ता ही संदिग्ध है, तो यह सारी बेचैनी, अकुलाहट, खोज और प्रतीक्षा किसको लेकर है । उसका औचित्य क्या है ? उसकी सार्थकता क्या है ? सार्थकता यह है कि वसन्त की खोज वसन्त का साक्षात्कार भले न हो पाए लेकिन वह आत्म-साक्षात्कार अवश्य बन जाती है –

'एक दिन यह सब बिखरा हुआ छोडकर
उसके पास जाने को तैयार होता हूँ
तो मालूम होता है

मौसम बीत चुका है
और फिर अगले मौसम के इन्तजार में
कागजों मे खो जाता हूँ
जानता हूँ वह फिर आएगा
और मैं फिर नहीं जा पाऊँगा कागजों के पार ।'

मौसम- और खासतौर से वसन्त की तरह ही मिश्रजी का एक दूसरा प्रतीक है चिडियाँ जिसे वे अलग-अलग संदर्भों में रखकर अलग-अलग प्रकार के अर्थ संकेत प्रदान कर देते है ।

इस प्रतीक से हृदय की मधुर भावना, स्वप्न की उडान पारिवारिक जीवन की आन्तरिक ऊष्मा का अर्थ-संकेत किया जाना सहज है, किन्तु कवि ने कहीं-कहीं इस कोमल प्रतीक द्वारा हृदय की अपराजेय शक्ति की भी व्यंजना की है -

'यह दोपहर चीरती हुई
उस गुलमुहर से एक नन्हीं चिडिया गा उठी ।'

मिश्रजी ने फूल, सुगंध, चाँदनी, पक्षी-स्वर, जल और अंकुर आदि कोमल दीखनेवाले प्रतीकों से आज के युग की कठोर और क्रूर सच्चाइयों की व्यंजना की है ।

अर्थ-गौरव की वृध्धि के लिए कवि ने प्रतीकों का प्रयोग भी बहुतायत से किया है । कभी-कभी चेतना-प्रवाह की झोंक में अस्पष्ट और उलझे प्रतीक भी रखे गये है । उदाहरण के लिए 'तीन कविताएँ' या 'एक सपना' को देखा जा सकता है ।

'सामने बिछा हुआ एक लम्बा मैदान
अपरिचित
कुछ अजनबी शक्लें उभरती हैं
और एक-दूसरे की परछाइयाँ काटती हुई
धीरे-धीरे पिघल जाती है
सब के बीच
एक अमलतास उगता है
जब तक उसे पहचानूँ
बबूलों के जंगल में खो जाता है ।'
- 'तीन कविताएँ' में से

'अन्धी गलियों के मोडों से गुजरता हूँ
सामने एक बडा-सा मकान उभरता है

जिसकी छत पर एक परिचित चेहरा
मुझे बुलाता हुआ
हँस-हँस कर रेशमी रूमाल हिला रहा है
सीढियों के पास अँधेरे में
दो जलती आँखें मेरी ओर बढती हैं.....[१०७]

- 'एक सपना'

प्रतीक रूप में यह कविता व्यष्टि और समष्टि के मनोमय धरातलों पर खुलती दिखाई देती है । मन के लिए ताल का रूपक बहुत पुराना है । हिलोर उसकी मनोवृत्ति है, जो कंकडी रूप वस्तुओं के सम्पर्क से उत्पन्न होती है अर्थात् कवि की आकांक्षा है कि उसका अर्थ-शुष्क और प्रसुप्त अंतस्तल वस्तु-जगत् के संस्पर्श से तरंगायित हो जाए । यंत्र-युग के कवि में मानसिक एकरसता को टूटते देखने की लालसा कितनी स्वाभाविक है ।

'सडक' काल यात्रा का प्रतीक काव्य है । गति जहाँ देश की आत्मा के निवास तक पहुँचने का उद्‌बोधन करती है, हमारे रंगीन स्वप्न का बोध कराती हुई समाज शास्त्रीय विकास-प्रक्रिया प्रस्तुत करती है । मानव जाति के विकास के प्रथम चरण में मनुष्य देखता है -

'मुझे लग रहा था
कि मेरे भीतर मेरा गाँव ही
फैलता और बडा होता जा रहा है ।
मैं इस सडक को कितना प्यार करने लगा था
यह सडक नहीं, मेरा देश है ।'

विकास के दूसरे चरण में मानव विज्ञान से सम्पृक्त होकर चकाचौंध में उल्लसित हो उठा है -

'और एकाएक एक दिन
इसने लाकर मुझे
एक जगमगाते कोलाहल के किनारे खडा कर दिया ।'

और विकास प्रक्रिया के अगले चरण तक पहुँचते-पहुँचते वह भौंचक हो उठता है -

'और मैं भौंचक-सा देखने लगा-
कहाँ आ गया हूँ मैं
उसने कहा -
'आओ आगे बढो - यही तुम्हारा देश है ।'

मैं घबराया-सा आगे बढा
लेकिन मेरी नजरें आकाश में टँगी रहीं
ऊँची-ऊँची इमारतें-इमारतें..... इमारतें.....
पत्थरों के इतने रंग
इतने आकार
इतना गौरव
और मशीनों पर भागते चिकने चुपडे लोग
किसी को किसी की सुनने की फुर्सत नहीं ।'[१०८]

तब तथाकथित वैज्ञानिक विकास को देखकर शान्तिप्रिय, प्रेम और सहानुभूति के अभाव में मनुष्य अपने आप में प्रश्न करता है -

'कहाँ हैं वे लोग
जिन्हें अब तक देखता आया था
यदि यह देश है, तो वह क्या था ?'

तब घुटन भरे वातावरण में चिल्लाता-चीखता देखता है, सर्वत्र संघर्ष की ज्वाला तूफानी हवा की तरह फैलती जा रही है, बिखराव और टकराहट की अजगरी भक्षी अट्टहास करता तारिका की तरह मुँह फैलाती जा रही है । कवि इसी युग-युगार्थ की चुभती स्थिति का अंकन करता है -

''देहात से आने वाली वैसी ही अनेक सडकें
गली-गली भाग रही है ।
कहीं वे आपस में मिल जाती हैं
कहीं वे एक-दूसरे से टकराती हुई निकल जाती है ।
इधर भी सडक, उधर भी सडक
दायें भी सडक, बायें भी सडक
'ओ सडक ।' ''

विचार सूचित करने का दायित्व प्रतीक का है, बिम्ब संवेदना जगाते है । परन्तु मिश्रजी के प्रतीक संवेद्य हैं और बिम्ब सांकेतिक । एक मुक्तक है 'कंकडी' -

'चारों ओर का जल समेटकर
अगाध बने
अपनी चुप्पियों में डूबे सरोवर
तुम एकाएक थर्रा क्यों उठे ?

मैंने तो एक छोटी-सी कंकडी फेंकी थी ।'

यहाँ सरोवर विमल जल जीवन का प्रतीक नहीं, संचित पूंजी का प्रतीक है । एक आकस्मिक कंकडी इसे दहशत से थर्रा देती है । यह कंकडी परिवर्तन का संकेत है । जिसके लिए सरोवर की बध्ध स्थिति और कंकडी की गति मिलकर एक सक्रिय द्रश्य का निर्माण करती है । इस द्रश्यात्मकता को बिम्ब कहेंगे और फलित अर्थ को प्रतीकार्थ । यहाँ कंकडी शब्द का प्रतीक है । कवि का शब्द बहुत बडा परिवर्तन जगाये या नहीं परन्तु वह इस सम्भावना का निर्देश अवश्य कराता है ।

व्यंग्य

व्यंग्य के विषय में विद्वानों का मत है कि, 'व्यंग्य गहरी सामाजिक चिंता से जुडी साहित्यिक विधा है । जनता के कल्याण की हार्दिक आकांक्षा ही व्यंग्य को धार देकर उसके प्रभाव को बढाती है । जुमलेबाजी, भाषा के प्रति खिलंदरेपन का रवैया किस्सागोई आदि चीजें व्यंग्य को बहुत दूर तक नहीं ले जातीं । सामाजिक आन्तर्दृष्टि के अभाव में, जनता की वास्तविक प्रतिरोधात्मक शक्तियों के प्रति उदासीन रहकर सार्थक व्यंग्य नहीं लिखा जा सकता ।

व्यंग्य के सार्थक उपयोग के संदर्भ में एक विद्वान का मत है कि, **'आक्रमण करने की दृष्टि से वस्तुस्थिति को विकृत कर उससे हास्य उत्पन्न करना ही व्यंग्य है ।'** आर्थर पोलार्ड 'सटायर' नामक अपनस चर्चित पुस्तक में कहता है, **'व्यंग्य वस्तु-स्थिति की आलोचना मात्र करके नहीं रह जाता, अपितु उसकी आदर्श स्थिति का भी निर्देश करता है ।'** डॉ. प्रेमशंकर का मत है कि, **'व्यंग्य वैचारिकता तथा संवेदन के संयोजन से सम्बध्ध होता है और एक ऐसी रचनात्मक ऊँचाई प्राप्त करता है कि उसका निषेध करना, उसे नकार पाना लगभग असंभव हो जाता है ।'** व्यंग्य के प्रति डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदीजी का मत है कि, **'व्यंग्य वह है जहाँ कहने वाला अधरोष्ठ में हँस रहा हो और सुनने वाला तिल-मिला उठा हो और फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहास्यास्पद बना लेना हो जाता है ।'** सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार हरिशंकर परसाईजी का मत है कि, **'व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखण्डों का पर्दाफाश करता है..... यह नाग नहीं है । मैं यह कह रहा हूँ कि जीवन के प्रति व्यंग्यकार की उतनी ही निष्ठा होती है, जितनी गम्भीर रचनाकार की, बल्कि ज्यादा ही । वह जीवन के प्रति दायित्व का अनुभव करता है । जिन्दगी बहुत जटिल चीज है । इसमें खालिस हँसना या खालिस रोना जैसी चीज नहीं होती । बहुत-सी हास्य रचनाओं में करूणा की धार है ।'**

मिश्रजी का भी व्यंग्य के सम्बन्ध में यह विचार है, 'व्यंग्य विधान आधुनिक साहित्य

का प्रमुख अंग है । प्रगतिशील साहित्य ने पहली बार प्रभूत व्यंग्य-विधान किया । समाज की सडी-गडी शक्तियाँ, रूढिगत परम्पराएँ, सामन्ती और पूंजीवादी समाज की शोषक प्रवृत्तियाँ, उनकी अमानवीय भूख-प्यास, सुसंस्कृत और शिक्षित शरीफों की हृदय-हीनता और असंगतियाँ आदि प्रगतिशील साहित्य के व्यंग्य का विषय रहीं । इनकी कुरूपताओं और अशक्तियों के ऊपर आवृत्त पर्दे को निर्ममता से हटाकर उनका मजाक करना और उनकी निस्सारता दिखाकर शोषित किसान मजदूर जीवन की जीवन-शक्तिमता का समर्थन करना प्रगतिशील साहित्य का उदेश्य था । प्रगतिशील साहित्य का व्यंग्य हमेशा सोद्‌श्य रहा और सोद्‌श्यता हमेशा मानवीय संवेदना और नवनिर्माण की परिकल्पना से प्रेरित रही ।'

नयी कविता का व्यंग्य प्रगतिशील कविता की मानवीय संवेदना से प्रेरित तो है, पर उसकी अपेक्षा अधिक मुक्त और व्यापक है । नयी कविता के व्यंग्य में अधिक पैनापन पाया जाता है । मिश्रजी ने अपनी 'कल्पवृक्ष' कविता में व्यंग्य के माध्यम से देश की राजधानी दिल्ली का असली चेहरा उजागर किया है -

'यह राजधानी है
यहाँ स्वर्ग जाने के लिए क्या नहीं है
कुर्सी है
कनाट प्लेस है
अंग्रेजी है
और यमुना का पानी है ।'

आजादी के बाद गाँव वालों के दुःख-दर्दों की गठरी का बोझ घटने के स्थान पर बढा है - यह एक कूट सच्चाई है जिस पर कवि ने व्यंग्य किया है -

'किन्तु यह क्या
राप्ती तो उसी तरह अपनी कुंडली में
पूरे जवार को लपेटे हुए पडी है
और उस गट्‌ठर को सिर पर उठाए
पसीना पोंछती हुई एक विराट भीड
शहर की ओर मुँह करके खडी है ।'

कवि मिश्रजी ने सामाजिक कुरीतियों, कुपरम्पराओं, रूढियों और अन्धविश्वासों पर अपनी कविताओं में व्यंग्य किया है । नारी-जीवन को विषाक्त बनाने वाली एक भयंकर कुप्रथा दहेज है, जिसके चलते स्त्रियों को निराश जीवन जीना पडता है या उन्हें अपने जीवन से हाथ धोना पडता है । 'लडकी' कविता में कवि ने दहेज जैसी कुप्रथा पर व्यंग्य किया है -

'लडकी ससुराल जा रही है
माँ-बाप आँसुओं के साथ ढरका रहे हैं
आशीष और मर्यादा-बोध की शिक्षा
इन्हें नहीं पता
कि अब ससुराल के लिए
लडकी को शिक्षा नहीं
तिजोरी चाहिए
वहाँ प्यार नहीं, पैसे हँसते है
वहाँ आदमी नहीं
सौदागर बसते हैं ।'[१०९]

धर्म के व्यावसायिक और स्वार्थपरक उपयोग से व्यक्ति-व्यक्ति के बीच कटुता बढी है । एक धर्म के लोग दूसरे धर्म के अनुयायियों के खून के प्यासे हो जाते है । यह धार्मिक कटुता सामान्य व्यक्तियों के मन में नहीं होती, बल्कि धर्म के ठेकेदारों द्वारा उत्पन्न की जाती है । धर्म का व्यवसाय करने वाले लोगों पर कवि व्यंग्य करते हुए कहता है -

'धर्म
तुम्हारे लिए
आदमी के खून से गाडी हो गयी है हवा
जो दैवी आदेश के नाम पर छटती रहती है
तुम्हारे धौंकनी जैसे बुजुर्ग सपाट जबडे से
वह जिधर बहती है
नगर के नगर उजाड देती है
धक्का देती है एक छोटी-सी चिनगारी को
दावानल की तरह
आदमी का खून उसमें चिटचिटा कर जलता है
और तुम एक क्रूर संतोष की हँसी
हँसते रहते हो ।'

'सांस्कृतिक एकता' कविता में कवि ने बडे ही व्यंग्यात्मक लहजे में महानगरीय आधुनिकता पर फबती कसता है -

'यहाँ भी थूक देने के लिए ही
लोग दूसरों की चीजों का स्वाद चखते हैं

यहाँ भी कुत्ता कुत्ते पर भूंकता है
और गदहा-गदहे पर रेंकता है ।'

रामदरश मिश्रजी ने आज के मनुष्य की असहाय स्थिति को तीखे शब्दों में व्यक्त किया है -

'उजाले की तलाश में भटकते हुए लोग
रह-रहकर सियारों की तरह हुआते हैं
और थककर चबाने लगते हैं चुपचाप
अंधेरे का एक टुकडा ।'

'कविता का आकाश विस्तृत हो गया है' कविता में कवि जगत और जीवन की सपाटता और स्वार्थपरता में निरन्तर खोती जा रही छोटी-छोटी संवेदनाओं को तलाशता है । कवि जीवन की धडकनों को पहचानने का हिमायती है -

'खरगोश का एक बच्चा
घबराकर झाडी में दुबक गया है
एक नन्हा-सा पंछी
गाना बंद कर
अपने घोंसले में से सिर निकाल कर सहमा-सा ताक रहा है
जंगल के रंग-बिरंगे पेड
धूल पहनकर एक हो गये हैं
और अपनी खोयी पहचान पर बात करने से डरते हैं ।
और हम कहते हैं कि
कविता का आकाश विस्तृत हो गया है ।'

'साक्षात्कार' कविता में कवि ने विदेशी वस्तुओं के प्रति आकर्षण पर व्यंग्य किया है -

'हमारी धूप को लकवा मार गया है
उसके लिए
विदेशों में बैसाखियाँ तैयार की जा रही हैं ।'

रामदरश मिश्र के समाज-बोध के पैनेपन का प्रमुख उपकरण व्यंग्य है । 'नगर छोडते समय' कविता में भेडियों की यह प्रार्थना समूचे शोषण तंत्र पर गहरा व्यंग्य है -

'प्रभु मेरे क्षमा करो
करूणा का जल दो
अभी-अभी जो मनुष्य खाया है

पचा सकें, बल दो ।'[११०]

आज के नेताओं के सारे क्रिया-कलाप स्वार्थ-साधन तक सीमित होकर रह गये है । नेता सत्ता तथा विलासिता का जीवन पाने के लिए चुनाव आने पर तरह-तरह के प्रलोभन देते है और जीत जाने पर पाँच साल तक दिखाई नहीं देते । इस कविता में कवि ने नेताओं के स्वार्थ पर गहरा व्यंग्य किया है -

'पक्की सडक देने के वायदे में
वे मेरे घर के सामने की कच्ची सडक
रौंद कर चले गये
सडक धूल का अंबार बनकर पडी है
मैं मना रहा हूँ कि हवा न बहे
हवा बहते ही
सडक घर और घर सडक बन जायेगा
और वे खोजने पर भी
दिखाई नहीं पडेंगे पाँच साल तक
हाय वे क्या कर गये
कि अब हवा से डरने लगा हूँ ।'

नेताओं की स्वार्थी प्रवृत्ति का एक दूसरा उदाहरण देखिए । सरकार गरीबों की सहायता के लिए अनेक योजनाएँ बनाती है, परन्तु नौकरशाही तंत्र के तहत उसका लाभ उन्हें नहीं मिल पाता है । यहाँ तक कि सूखों व बाढ के समय दी गयी राहत भी ऊपर ही ऊपर लोग हजम कर जाते है । कवि ने इस भ्रष्टाचार पर व्यंग्य किया है -

'हमेशा आकाश से झरती है एक नदी
और हमेशा ऊपर ही ऊपर कोई पी लेता है
धरती प्यासी की प्यासी रहती है
और कहने को आकाश से नदी बहती है ।'

'दर्पण : दो कविताएँ' में कवि ने व्यंग्य करते हुए कहा है कि राजनीतिक नेता भी अपने द्वारा किये गये कामों के बारे में दूसरों से राय लेते है, परन्तु वे चापलूसों से इस तरह घिरे होते है कि ये चापलूस उनकी कमियों को व्यक्त नहीं करते है । उनके द्वारा किय। गये कामों को बढा-चढाकर कहते है -

'नहीं ऐसा नहीं है कि वे अपना दर्पण नहीं देखते
देखते है

लेकिन उनके दर्पण
आम बाजारों से नहीं आते
अपने दर्पण वे खुद बनवाते है -
मीना बाजारों में
और उनसे सीखते नहीं
उन्हें सीखाते हैं
इसीलिए वे दर्पण
उनके काले चेहरे को गोरा
और छोटे कद को बडा दिखाते है ।'

आजादी के बाद भी गाँव वालों के दुःख-दर्दों की गठरी का बोझ घटने के स्थान पर बढा है - यह एक क्रूर सच्चाई है, जिस पर कवि ने गहरा व्यंग्य किया है -

'हमें आजाद हुए पच्चीस साल हो गये हैं
देश के लोग कितने खुशहाल हो गये है ।
मैं आज पच्चीस साल बाद
बडे गर्व से फिर गाँव लौट रहा हूँ
किन्तु यह क्या ?
राग्री तो उसी तरह अपनी कुंडली में
पूरे जवार को लपेटे हुए पडी है
और उस गठ्ठर को सिर पर उठाए
पसीना पोंछती हुई एक विराट भीड
शहर की ओर मुँह करके खडी है
और मेरी गठरी उछल कर मेरे सिर पर आ गयी है
उफ ! पच्चीस वर्षों में यह गठरी कितनी भारी हो गई है ।'[१११]

'सत्यबोध' कविता सामान्यजन के निजत्व और उसके परिवेश की गहरी पहचान कराती है । यह पहचान तीखे व्यंग्य और विद्रूप के साथ प्रभावी बन गयी है -

'यह है एक अंधा कुआँ
इसमें मत उतरो
इसमें भरा है जहरीला धुआँ
चीखता रहता है एक विद्रोही कवि
और रात में सीढियाँ लगाकर

स्वयं इसमें उतरता है
सुरंगों के रास्ते
कभी रूस, कभी अमरीका में उभरता है
और वहाँ कवि के नाम पर कर ही क्या सकता हैं
केवल हुआँ-हुआँ ।'

'कंधे पर सूरज' की कविताओं में व्यंग्य क्रमशः प्रत्यक्ष और धारदार होता गया है । खासतौर पर, छोटी कविताओं में व्यंग्य का इस्तेमाल विसंगत और विडम्बनापूर्ण जीवन-परिस्थितियों को पहचानने में हुआ है । 'सार्वभौमबोध', 'आनन्दबोध', 'मृत्युबोध', 'अस्तित्व-बोध' आदि कविताएँ इसी किस्म की है । 'सार्वभौमबोध' कविता से इन कविताओं के तेवर जाने जा सकते है -

'टर्र, टर्र, टर्र
मुझे नहीं किसी का डर
बडे मेंढक के डर से दरार में बैठा हुआ
कुएँ का एक छोटा मेंढक चिल्लाता है
सारी दुनिया है मेरा घर्र ।'

सहमी हुई मनःस्थिति में काव्यानुभूति और मूल्यानुभव के नैराश्यपूर्ण होने की संभावना होती है, लेकिन कवि की मानवीय मूल्यों में गहरी आस्था अँधेरे में आलोक की तरह कौंधती है । वह अपनी जनधर्मी और लोक-सापेक्ष संवेदना के चलते इस भयानक हकीकत के बीच कोमल संवेदनाओं और सकारात्मक मूल्यों को रेखांकित करने की कोशिश बराबर करता है । विसंगतियों पर चोट करने के लिए 'हाथ', 'मुट्ठियाँ', 'फूल', 'साथ-साथ', 'हम दोनों' आदि में 'कंट्रास्ट'का सहारा लिया गया है ।

'इस हाथ से मैंने
आगजनी पर कविता लिखी
दंगे पर कहानी
आरक्षण पर लेख लिखा
अयोध्या प्रसंग पर टिप्पणी
आतंकवाद के विरूध्ध हस्ताक्षर अभियान चलाया ।
और कनॉट प्लेस में मानव श्रृंखला बनाई
सम्प्रदायवाद के विरोध में
लेकिन तुम कहाँ छिपे रहे भगोडे
इस जलते समय में ?'

- 'बारीश में भीगते बच्चे' से

व्यंग्य

'हम दोनों गाँव से साथ ही चले थे
दोनों धूल-भरी पगदण्डियों से होते हुए
स्टेशन आए थे
और भीड में गिरते-पडते
महानगर में आ गिरे थें
हमारे पास एक झोला था
जिसमें कुछ प्रमाण-पत्र थे
कुछ चना-चबेना
और आँखों में एक टूटा-फूटा सपना था ।'

- 'बारिश में भीगते बच्चे' में से

'हम साथ-साथ खेले थे
साथ-साथ पढे थे
साथ-साथ मास्टरजी की मार खायी थी
साथ-साथ रोये थे
साथ-साथ हँसे थे
साथ-साथ वहाँ मिल में नौकरी की थी
अपनी माताओं को लिखे पत्रों में
हम साथ-साथ होते थे ।'[११२]

- 'बारिश में भीगते बच्चे' में से

दो युवक जीवन-स्थितियों और मूल्यानुभवों को आमने-सामने रखकर एक निर्णयात्मक संकेत देना मिश्रजी के काव्य-कौशल का जाना-पहचाना पक्ष है । वे एक लकीर के सामने दूसरी बडी लकीर खींचकर अपनी पक्षधरता और मूल्य-निर्णय को स्पष्ट कर देते है । 'हाथ' कविता का एक पक्ष बडबोलेपन के साथ अपने बडे-बडे कामों का बयान करता है । दूसरे पक्ष का एक ही मानवीय कार्य उसके सारे क्रिया-कलाप पर भारी पडता है -

'वह चुप रहा
और शायद मेरी चिकनी हथेलियाँ देखता रहा
और धीरे-धीरे अपने दोनों हाथ फैला दिए
वे झुलसे हुए थे
वह बोला

''मैंने जलते हुए मकान में से
एक बच्चे को बचाया था ।
फिर अस्पताल में पडा रहा ।''

बच्चे को बचाने का एक अर्थ भविष्य को बचाना भी है । लेकिन अपने सामान्य अर्थ में भी यह मानवीय कर्म आगजनी या दंगे पर रचना लिखने या हस्ताक्षर-अभियान चलाने जैसे कथित विरोधों-प्रतिवादों की तुलना में अधिक सार्थक और व्यावहारिक है । 'फूल' तो है ही, रूप, रंग, सौन्दर्य को बाजार की वस्तु बना देने की विसंगति को भी उघाडते है । इनके 'कंट्रास्ट' में वे वास्तविक फूल है, जो कच्ची जमीन की उर्वरता और फावडे की मेहनत का परिणाम होते हैं । 'मुट्ठियाँ' में एक स्थिति के दो अलग-अलग अर्थ कवि के वैचारिक 'स्टैण्ड' को रेखांकित करते है -

'आपकी मुट्ठी बँधी है
तमाम लोगों को इनमें कैद करने के लिए
और मेरी मुट्ठी बँधी है आपकी मुट्ठी खोलने के लिए
मैंने अनुभव किया कि
हम दोनों की मुट्ठियाँ अपनी-अपनी जगह
और कसती जा रही हैं ।'

'हम दोनों', 'साथ-साथ', 'कविता हमें मनुष्य बनाती है' आदि कविताएँ भी मूल्यों और अवमूल्यों को टकराहट और द्वन्द्वात्मक स्थितियों की उपज है । इनमें व्यंग्य का प्रत्यक्ष किन्तु शालीन संस्पर्श है, जो 'कथ्य' को दीप्त करने और रचना को संप्रेषित करने में सहयोग देता है । जय-जयकारों के रथ पर सवार हो जाने के बाद दोस्त का गाँव न जा पाना और महाकवि के आचरण से अनेक लोगों का मनुष्य बनते-बनते रह जाना, वस्तुनिष्ठ व्यंग्य के उदाहरण है । जहाँ 'व्यंग्य' का चरम उत्कर्ष 'करूणा' है, वहाँ कविता में संवेदन तंत्र को झकझोर देने की शक्ति है । बम्बई के गत दंगों पर कई बहुत तीखी और आक्रमक कविताएँ लिखी गयी हैं, लेकिन इस संग्रह की लघु कविता 'साथ-साथ' में हमारी गंगा-जमना संस्कृति, व्यवस्था का नाकारापन, हिंसा का विस्फोट और उसके चलते बहुत बिखर जाने की 'त्रासदी' जिस सादगी किन्तु मारक मुद्रा में व्यक्त हुई है, वह अद्वितीय है -

'आज मैं गाँव
पहली बार अकेला जा रहा हूँ
तुम्हारी माँ
तुम्हारा हाल पूछने मेरे पास आयेगी
तो मैं क्या बताऊँगा, मेरे दोस्त रहमान ?'

'फिर वही लोग' लम्बी कविता का महत्वाकांक्षी प्रयोग है । डॉ. प्रेमशंकर इसे सामयिक संदर्भो की दृश्य योजना बताते है । संकलना और संप्रेषण का प्रश्न यहाँ व्यंग्य के द्वारा हल हो गया है । मार्मिक व्यंग्य ने ही इस लम्बी कविता की दृश्य-योजना को काव्यात्मक स्निग्धता प्रदान की है, विचार को प्रचार के बडबोलेपन से बचा लिया है ।

'फिर वही लोग जा रहे हैं इस सडक से
जो कल गये थे ।'[११३]

इस सादे-सीधे कथन में व्यंग्य का अनुभव होता है । कवि ने पुनरावृत्त होती घटनाओं को एक साथ रख दिया - यह संयोजन ही इसकी समझदारी है । अन्याय का प्रतिकार करने के लिए विरोध होता है, जबकि यहाँ विरोध करना एक पेशा है । क्रान्ति का भ्रम फैलानेवाले धोखेबाजों को मनुष्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती -

'यह सडक देख रही है कबसे
कि उस पर से आदमी नहीं,
केवल जुलूस गुजरे है,
चेहरे नहीं
वरदियाँ और झण्डे गुजरे है ।'

मनुष्य के चेहरे को साइनबोर्ड बना देती राजनीति राष्ट्रीय बल्कि सांस्कृतिक संकट खडा कर रही है । माँ धरती बेटों द्वारा बँटती रही है । छली गई है, इन्द्र और चन्द्र के द्वारा अहल्या । हेतु में थोडा बहुत अन्तर अवश्य आया है । विषय और संयोगों में आकाश मुस्कराता है और ?

'चाँद नीचे उतर कर
किसी झण्डे की छाँह में
तिजोरियाँ सँभालने लगता है
चाँदनी के कुहासे में
सब कुछ ढक जाता है यहाँ से वहाँ तक .....'

चाँदनी यहाँ अपारदर्शी हो गई, इसका अर्थसंकेत नकारात्मक हो गया ! धरती का यौवन वसन्त भी किसी झण्डे से समझौता करने चल देता है राजधानी की ओर ।

'कंधे पर सूरज' कविता संग्रह की एक सशक्त कविता है 'गठरी' । कविता गाँवों की राजनैतिक उपेक्षा से हुए मोह भंग की कथा कहती है और आजादी के बाद गाँवों की यथास्थिति पर चिह्न लगाती है । आजादी के बाद भी गाँव वालों के दुःख-दर्दों की गठरी का बोझ घटने के स्थान पर बढा है ।

'सांस्कृतिक एकता' में कवि दिल्ली शहर के व्यक्तित्व का व्यंग्यात्मक उद्‌घाटन

करता है । महानगर होने पर भी यहाँ अंधविश्वास, पाखण्ड और विसंगतिपूर्ण जीवन जिया जा रहा है ।

'साक्षात्कार' कविता में चन्दन वन सामाजिक मूल्यवत्ता का प्रतीक है, जो कुछ व्यक्तियों द्वारा संगमरमरी भवनों में बन्द कर दिया गया है । व्यक्तिरूपी साँप चंदन वन की हर शाखा से लिपटे हुए है और चन्दन वन की सुगन्ध को फेफडों में बन्द कर परिवेश को जहर उगल विषाक्त बना रहे है ।

'चन्दन वनों को बन्द कर लिया गया है
संगमरमरी मकानों में
डाल-डाल पर लिपटे हुए हैं साँप
हवाओं को
अपने फेंफडों में कैद करते रहते है ।
और सुबह होते ही
उन्हें छोड देते है अपने जहर से दाग कर
सारे शहर पर
शहर से गाँव पर ।'[११४]

देश स्वतंत्र है, परंतु कवि लोगों की स्वतंत्रता के लिए छटपटाहट महसूस करता है । निर्धनता आवश्यक वस्तुओं की कमी, चारों ओर व्याप्त भ्रष्टाचार, भय, आतंक, षड्यंत्र आदि स्थिति की भयावहता को और गहराते है । कवि वर्तमान परिवेश के यथार्थ को अभिव्यक्त करता है ।

'दिन एक नदी बन गया' का वर्तमान राजनीति और व्यवस्था के साथ गहरा सम्बन्ध है । जनता की दयनीय स्थिति की ओर संकेत इस संग्रह की कई कविताओं में है । 'हम कहाँ हैं' कविता राजनीति, लोगों की दशा तथा समाज में व्याप्त विसंगति को उखाड कर सामने रखती है । वर्तमान व्यवस्था पर कुछ कविताओं में गहरा और तिलमिला देनेवाला व्यंग्य है ।

व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार पर कवि करारा व्यंग्य करता है । स्वच्छता के लिए, सडकों को चौडा करने के लिए, गंदी बस्तियों को हटाने के लिए मकान गिराये जा रहे हैं पर -

'गंदी जनता का क्या
वह तो जिंदा होकर भी मरी हुई है
देखिए न वह आपके शहर की होकर भी
आपके शहर के किसी पेड की छाँह में भी
डरी हुई है ।'

एक लम्बा समय महानगर में बिताने पर भी मिश्रजी गाँव की जमीन से जुडे हुए हैं । इसी कारण उनकी कविताओं में मिट्टी के रूप, उसकी गंध, रस और स्पर्श देखने को मिलता है । गाँव का वर्णन करते हुए वे आत्मसुख की अनुभूति करते है –

'बौरों से लदी अमराइयाँ
चहचहाते पक्षी.....
माँ की ममता-सी बहती निथरी नदियाँ
तट से रेत लेकर बिखेरती छोटी बहन की तरह
छोटी-छोटी हवाएँ ।'

'जुलूस कहाँ जा रहा है' की अधिकांश कविताएँ १९८४ के बाद की है । 'दिन एक नदी बन गया' कविता संग्रह १९८४ में प्रकाशित हुआ था । इन दोनों कविता संग्रह की कविताओं में कोई मौलिक अन्तर नहीं है । दमन, शोषण, विसंगति, राजनीति, व्यवस्था कुछ ऐसे विषय है, जिन पर मिश्रजी ने अपने प्रत्येक संग्रह में लिखा है । कवि को आगे बढने तथा पाठकों को कुछ नया देने के लिए अपने ही बनाए घेरे से बाहर निकलना चाहिए । घेरे को तोडने का प्रयास इस संग्रह की कविताओं में नजर नहीं आता ।

इस संग्रह में आज के व्यक्ति को लेकर मिश्रजी ने कुछ सशक्त कविताएँ दी है । 'काफिला' कविता में सभ्य व्यक्ति वह है, जो खेतों को रौंद गया है और जो 'रौंदे गये खेतों' को आँसुओं से सींच रहा है' वह सभ्य लोगों की नजरों में पागल है । 'चिडिया' कविता में अपने घोंसले को खोजती चिडिया –

'थक कर एक जली हुई डाल पर बैठ गई
और सोचने लगी –
आज जंगल में कोई आदमी आया था क्या ?'

'जुलूस' कविता में भी आदमी का ऐसा ही घिनौना रूप हमारे सामने उभरता है –

'जुलूस जा रहा है
रास्तों को रौंदता
फसलों को कुचलता
घरों को तोडता-फोडता
रथों पर बैठे हैं ऊँचे लोग
और लाखों फटेहाल लोग
रथ खींच रहे है ।'[११५]

'अभिनेता' कविता में झोपडियों में आग लगाने वाला और उन्हें आश्वासन देने वाला 'दोनों भूमिकाओं में एक ही कलाकार है ।' भ्रष्ट राजनीति और व्यवस्था पर भी मिश्रजी ने तीखा व्यंग्य किया है ।

मिश्रजी की कविताओं की विशेषता उनकी ईमानदारी है । उनकी कविताओं में कुछ भी आरोपित नहीं, वे सहज है । इसी कारण उनकी कविता सहज सम्प्रेषित हो जाती है । वे कुछ भी छिपाते नहीं, जो देखते है, अनुभव करते है उसे सीधी भाषा में अभिव्यक्त करते है । व्यंग्य उनकी कविताओं की मुख्य विशेषता है ।

'टूटे हुए फूल बह रहे हैं
और उनके ऊपर टंगी है नदियाँ
अपनी-अपनी जगह पर
शिशुओं को गाडकर
मुरदे बाहर आ गये हैं
धरती का संदेश देने
दरवाजे-दरवाजे न रहकर
कोई न कोई झंडा बन गए है ।'[११६]

कविता की भूमि सामयिकता से उपजी है, इसलिए उनकी मूल बनावट में व्यंग्य का भी हिस्सा होना लाजमी है । सच्चाई यह है कि इधर पिछले कुछ वर्षों में रचना ने अपने आक्रोश को व्यंग्य के माध्यम से ही व्यक्त करना चाहा है और रचना में लम्बी दूरी तय नहीं कर पाती । नकारात्मक को अपनी सीमाएँ है और सर्जन बिना सकारात्मक हुए आगे नहीं बढ पाता । जिस समय समाज से स्वना पूरी तरह संतुष्ट नहीं होती, उसे वह ललकारती है । पर ऐसा करने के, रचना के तरीके अलग-अलग होते हैं और यह बहुत कुछ रचना दृष्टि पर भी निर्भर करता है । रामदरशजी धीमे स्वर में सब कुछ कहना चाहते है - बिना आवाज को उठाये, गिराये, इसलिए कई बार उनका व्यंग्य हमारी पकड में भी नहीं आता । पर स्थिति यह है कि वह पूरी कविता में भीतर ही भीतर एक करेंट की तरह मौजूद है - उन आरंभिक पंक्तियों से लेकर अन्त तक, जो समाप्ति में दोहराई गई है । कहा जा सकता है कि कविता जिस सामाजिक यथार्थ से उपजी है उसे देखते हुए, उसकी मुद्रा काफी अनाक्रोशी है । पर हर रचना की अपनी एक मंशा होती है और जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ । रामदरश अपने पाठकों को चौंकाना या उत्तेजित करना नहीं चाहते, वे उनमें एक एहसास जगाना चाहते है ।

रचना में सामाजिक यथार्थ को लेकर बहस-मुबाहसे होते आये हैं, होते रहेंगे । पर इस सम्बन्ध में वह 'कोण' महत्वपूर्ण होता है, जहाँ से खडे होकर कोई रचना

जीवन द्रश्यों को देखती है और इसी के साथ उस 'दृष्टि' का भी सवाल है जिसके माध्यम से दुनिया से साक्षात्कार किया जाता है । हम स्वीकारते हैं कि व्यंग्य रामदरश का मूल माध्यम नहीं है और क्योंकि वे रोमानी अनुभव की दुनिया से सामयिक सन्दर्भों तक आये हैं, इसलिए उनकी लडाई भी कम आसान नहीं रही होगी । इसे मैं इस कविता के सन्दर्भ में ही नहीं, पर कवि की सर्जनशीलता के सन्दर्भ में रेखांकित करना चाहूँगी कि उसने संवेदनजगत को विस्तार दिया है । 'फिर वही लोग' स्थिति का जायजा अपने ढंग से लेना चाहती है ।

कहा जा सकता है कि सामयिक संदर्भों से लेकर शाकाहारी मुद्राओं से काम नहीं चल सकता और कवि को अधिक आक्रमक होना था । पर जैसा कि मैंने संकेत दिया कि यह कवि की मूल प्रवृत्ति ही नहीं है, यहाँ जो व्यंग्य है, वह शब्दों के आक्रोश पर इतना आधारित नहीं, जितना संवेदनों पर, इसलिए उसकी पहचान कठिन है । हम मानते है कि संदर्भ ऐसे हैं कि कवि के और जुझारू हो सकने की गुंजाइश थी । कविता हमें जिन टुकडों से गुजारती है, वे अलग-अलग होने के कारण, भटक भी सकते थे, पर सडक संवेदन और कटाक्ष की मिली-जुली अनुभूति में संसरित होती है । ऐसा क्यों होता है ? एक और कवि की यह चिंता कि कहीं कुछ गडबड है, ठीक सा नहीं लगता और दूसरी ओर उसमें उसकी वह शिकायत जो उसे द्रवित करती है । ऐसे में कविता एक पीडा का बोध कराती है -

''टूटे त्यौहारों के वन्दनवार
टांगे खडा है एक पूरा सांस्कृतिक नगर
उसके माथे पर टोली है
कलाई में राखी के धागे.....''[११७]

मेरी समझ में 'फिर वही लोग' कविता के अपने तेवर हैं और वह कई स्तरों पर चलती है - यहाँ लगभग एक मिला-जुला अनुभवसंसार है । कविता में जो तल्खी है, उसे ही हम व्यंग्य कहकर संबोधित कर सकते है । पर इसका स्वरूप निश्चित ही भिन्न प्रकार का है क्योंकि इसमें कवि का दर्द भी जुड गया है । व्यंग्य के लिए जिस निर्ममता की अपेक्षा होती है, वह यहाँ नहीं है । कई बार कविता अपनी बात कह सकने के लिए उलटबासियों जैसी भाषा का सहारा लेती है - 'खाइयों, गुफाओं में उजाला और मैदानों में अंधेरा धुप' । ऐसे ही क्षणों में कई बार व्यंग्य गहराता है और कविता सामयिक संदर्भों में उपजकर भी अधिक बडे फलक पर आना चाहती है -

''सभी गुजरते हैं -
पगदंडियों से
खेतों की मेडों से

कच्ची सडकों से
कस्बे की गलियों से
और राजधानी में जाकर खो जाते हैं
या साझेदार बनकर चुप हो जाते हैं.....''

कविता में व्यंग्य स्थिति की भयावहता की ओर इशारा करता है । पर कहा जा सकता है कि रचना परिवेश का संकेत तो करती ही है, पाठक को उस परिवेश का एहसास भी देती है । कवि अपना कोई निर्णय लादना नहीं चाहता, तो क्या उसके पास प्रश्न का उत्तर नहीं है ? या वह इस विषय में अपने पाठक को उसके विवेक पर छोड देना चाहता है ? जो रामदरशजी के रचनाजगत से परिचित है, वे जानते है कि उनमें निर्णयों को आरोपित करने की इच्छा नहीं है । प्रस्तुत कविता को इसी रूप में देखना चाहिए । 'फिर वही लोग' दृश्य उभारती है, सवाल उपजाती है, पर समाधान वह नहीं तलाशना चाहती - संभव है कवि का विचार हो कि समाधान फिलहाल है भी नहीं । पर कविता तनावों से गुजरती है और तब हम स्वयं किसी विकल्प की तलाश करना चाहते है । इस प्रकार प्रकारांतर से कविता का आशय पूरा होता दिखाई देता है, कम से कम परिवेश की अस्वीकृति का भाव तो उसमें मौजूद है ही ।

'फिर वही लोग' में व्यंग्य विद्रोह की भूमि पर स्थित न होकर, करूणा के अधिक समीप है और दर्द से उपजा है । कविता धीरे से हमारे समाज की उस अमानवीयता की ओर इशारा करती है, जहाँ सिर्फ जुलूस हैं, झंडे हैं । कवि इन दृश्यों में इस मायने में उपस्थित है कि यह मानवीय पीडा से परिचालित है । सडक देखती है कि बराबर वे ही लोग उस पर से गुजर रहे है, जो कल भी आये थे और आगे वाले दिनों में भी वे ही होंगे - पेशेवर लोग । ऐसों से भला क्या आशा की जा सकती है ? अधमरा शहर, बारूदी गंध, धूप की फाइल खोले, मुस्कराता आकाश का बच्चा सूर्य सब 'फिर वही लोग' कविता को इस अर्थ में एक गहरे दर्द से भरते हैं कि हम उस भयावहता को अपने सामने उपस्थित पाते है, जिसमें हम सब जी रहे है और जिसने हमारा अमानवीयकरण कर दिया है । टुकडों में व्यंग्य करती हुई भी कविता अपनी मूल बनावट में कारूणिक है - एक त्रासूदी का आभास देती है । यदि वह जुझारू नहीं हो पाती तो उसका कारण भी यही मानवीय संलग्नता से उपजी चिन्ता सहज है, जो करूण स्थिति से संत्रस्त है । अन्त तक पहुँचते-पहुँचते कविता एक अवसाद से भर जाती है -

''बसन्त खडा-खडा सोचता है -
शहर में तो वह अजनबी हो ही गया था
यहाँ भी कोई नहीं पहचानता

एक बार फिर
अपने स्तब्ध पुष्पकेतन को देखता है
और चुपचाप उसे मरोडकर
डाल देता है झोले में.....''[११८]

''मानवीय सरोकार से उपजी चिंता सामयिक परिवेश के प्रति असंतोष स्थितियों की भयावहता सबके मूल में कवि के संवेदन की सक्रियता है, जिससे पूरी कविता विवरणोंवृतांतों का सूची पत्र बनकर नहीं रह जाती, वरन् हम कवि की संलग्नता से भी परिचित होते है । पर जैसा कि मैंने कहा कविता के मूल में कवि की वह मानवीय पीडा है, जो अपने समय के खोखलेपन पर कई बार व्यंग्य भी करती है –

''लगता है –
आज फिर कुछ होगा
फिर किसी कुरसी के हिलते हुए पाये को
मजबूत करने के लिए
धूप का एक टुकडा वहाँ दफनाया जायेगा.....''

रामदरश मिश्र ने जिस मुहावरे में सामयिक संदर्भों को प्रस्तुत किया है, वह जाना-पहचाना है और इसलिए दृश्य अपरिचित नहीं लगते । कुछ अपवाद हो सकते है, जैसे – अहल्या का संदर्भ । पर कविता की जमीन की सही अभिव्यक्ति के लिए जो चीजें आवश्यक थीं, वे इसमें आ गई है, इसलिए वह विश्वसनीय बन सकी है । जाते-जाते कविता इशारा छोड जाती है –

''शहर का सारा अंधकार बैठे-बैठे झूमता है
और प्रकाश की छोटी-छोटी किरणें
गलियों के छोटे-छोटे कटघरों में जागती हुई
चुपचाप लडती है, देश के सन्नाटे से.....।''

रामदरश मिश्रजी की छोटी कविताओं का व्यंग्य-विपमार्ग बडा घातक है, जो स्थितियों को बेनकाब करता हुआ गहरे तक छील जाता है । इसके माध्यम से वे युग-जीवन की विकृतियों, विडम्बनाओं और असंगतियों को कुछ अधिक सघनता के साथ व्यंजित करते है । उनके व्यंग्य काफी तराशे हुए है । विसंगतियों की पहचान जितनी व्यंग्यपरकता से होती है, उतनी सामान्य कथन से नहीं । रामदरश मिश्र की रचना में समकालीन जीवन-जगत के प्रति अति संवेदनशीलता मिलती है – कोरी भावुक्ता नहीं बल्कि यथार्थ के धरातल को छूती हुई उससे गुजरती हुई बेखौफ और व्यंग्य की तेज धारा का प्रयोग करती है ।[११९]

शब्द योजना

''तुमने एक शब्द फेंका
अपने तेजाबी मस्तिष्क में से निकालकर
वह शब्द शान्त भीड में जाकर
आग बन गया
पहले तो लोग स्तब्ध रहे
फिर एक-दूसरे की ओर देखा
फिर एक हवा धीरे-धीरे रेंगने लगी.....।''

- 'आग कुछ नहीं बोलती' में से

''उसने तुम्हें शब्द दिये
तुम शब्दों को सजाते गये नुमाइश की तरह
और स्वयं शब्द बनते गये
वह मूक देखता रहा
तुम कब पहुँचते हो
उसके समुद्र-से मन
और बादल-सी आँखों तक
नदियों की तरह बहते दर्द
और हवाओं की तरह उडते
उसके सपने की पाँखों तक ।''

- 'बारिश में भीगते बच्चे' में से

मिश्रजी की भाषा में विभिन्न भाषाओं की शब्दावली का प्रयोग हुआ है । अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए जिस भाषा का जो भी शब्द अनुकूल और उचित लगा, मिश्रजी ने निस्संकोच उसका उपयोग किया है ।

मिश्रजी ने उर्दू तथा अरबी-फारसी शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है । इसके अतिरिक्त मिश्रजी सामान्य जन-जीवन से बहुत अधिक जुडे हुए है । सामान्य जनता की भाषा में उर्दू के प्रचलित शब्दों की बहुतायत है और मिश्रजी ने जनता की बात जनता की ही भाषा में बिना किसी लाग-लपेट के कहने का प्रयास किया है -

'हल थे वहाँ जोतते करते थे बेगारी
यहाँ खींचते रिक्शा ढोते पत्थर भारी
यहाँ रहें या वहाँ रहें हम तो जैसे चौपाये है ।'

अंग्रेजी के भी शब्दों का मिश्रजी ने प्रयोग किया है - बम्ब, फैक्टरियाँ, पोस्टर,

फायर बिग्रेड, माइक, कैक्टसों, पार्कों, स्टैंड, पैरम्बुलेटर, स्ट्रीट लाइट, सिगनल डाउन, थियेटर, फ्री-स्टाइल, डैडी, ऐंटी जर्म्स इंजेक्शन, मेनहोल, सेंट, लेटर, बाक्स, टी.बी. इत्यादि । यद्यपि भाषा में इस प्रकार अंग्रेजी शब्दों की भरमार प्रशंसनीय नहीं कही जा सकती, लेकिन मिश्रजी ने इन शब्दों का स्वाभाविक और रचनात्मक प्रयोग किया है । और कहीं-कहीं अंग्रेजी के ये शब्द इतने अधिक प्रभावशाली बन पडे है कि उनके स्थान पर हिन्दी के अन्य शब्द उतने प्रभावशाली नहीं हो पाते, यथा -

'आसपास की लडकियों के नकली बालों में
स्ट्रीट लाइटों के टूटे हुए बल्ब
औंधी खोपडी से लटके हैं
और सभी लोग अंधेरे में टकराते हुए भुनभुनाते है ।'

एक अन्य उदाहरण देखिए :

'ऑफिस से लौटते हुए
टेरेलिन पहने हुए जवान बाबू
तोहफे बख्श रहे हैं
एक-दूसरे की माँ-बहनों को
और आस-पास के पार्क में
स्कूल के शरीफ बच्चे
फ्री स्टाइल में गालियाँ उगलते हुए
जूझ रहे हैं
एक बच्चा धमकी दे रहा है
कि उसके धनी डैडी कल पूरा पार्क ही खरीद लेंगे ।'

वास्तव में मिश्रजी ने इन शब्दों का प्रयोग अर्थों के वजन पर ही किया है ।

मिश्रजी ने व्यक्ति की सचमुच झेली हुई जिन्दगी को शब्द दिए है और जिन्दगी को जैसा देखा है, वैसा ही शब्दों में रूप दिया है -

'कभी हँसती हो, कभी झल्लाती हो
हर आदमी की फरमाइशों के साथ
पूरे घर में भागती-फिरती हो
और घूम-फिर कर रसोईघर में
आ जाती हो
दाल का बदकना
चावल का खदकना

बरतन का खनखनाना
सब्जी का छनछनाना
यानी अन्नपूर्णा का एक सुगंधित साज
तुम्हारे हाथ से बजता रहता है ।'[१२०]

छनछनाना, बदकना, खदकना शब्द काव्य-भाषा के अनुरूप शब्द नहीं है, पर यथार्थ की अभिव्यक्ति इस शब्द से होती है, अतः मिश्रजी ने इस शब्द का प्रयोग किया है । यथार्थ की अभिव्यक्ति करने वाले ऐसे अनेक शब्दों का प्रयोग मिश्रजी की भाषा में मिलता है ।

इनकी कविता में कुछ भोजपुरी शब्दों का आ जाना भी अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता । बजबजाना, गोंजना, पिपिहिरियाँ, हबोट्टा, पैया, चिपचिपाए इत्यादि ।

मिश्रजी ने अपनी कुछ कविताओं में ऐसी शब्दावली का प्रयोग किया है, जो जटकती है, जैसे - हवा के साथ बजबजाती का प्रयोग । किन्तु नए प्रयोग वाकई कविता को सार्थक कर जाते है । जैसे किसी से मिलने के लिए अपना हाड-हाड फोडकर मिलना, एक नया अनूठा और सार्थक प्रयोग है -

'प्रिय
तुम आये तो
मैं अपना हाड-हाड फोडकर
तुम्हारे लिए फूट पडा
और मेरा सारा रक्त फूल बनकर दहकता रहा ।
जब इसमें मेरा क्या कसूर
कि मेरे सर्वस्व-समर्पण को भी
तुम अपनी गंध नहीं दे सके
और औरों का अधूरा समर्पण भी
तुम्हारी दी हुई सांस से महकता रहा ।'

मिश्रजी ने अपनी छोटी कविताओं में व्यंग्य और भाषा की आक्रमकता का प्रयोग किया है, जो कविता को काफी सार्थक बनाती है । उन्होंने कहीं-कहीं नाटकीयता के साथ समाज की विडम्बनामूलक स्थितियाँ दिखाकर कविता में इसका सार्थक इस्तेमाल किए है । 'इन्तजार' एक ऐसी छोटी-सी कविता है -

'हर चौराहे पर
दुर्घटनाग्रस्त होकर तडप रहा है एक देश
और हम
डाक्टर के बदले

पुलिस का इन्तजार कर रहे हैं ।'

मिश्रजी भावानुसार शब्दों की योजना करते है । मानवीय संवेदना और आत्मीयता की बात कहने के लिए कोमल-कोमल शब्दों का आयोजन करते है । शोषण और अत्याचार की बात पैने और कठोर शब्दों में करते है और व्यंग्य विद्रूप को व्यक्त करने के लिए तीक्ष्ण धारदार पथरीले शब्दों का प्रयोग करते है -

'तुमने जो पत्थर खींचकर उसे मारा
वह उसके कलेजे में घँस गया
और रक्त झरने लगा
उसने उस पत्थर पर
अपने रक्त से अपने कलेजे का दर्द लिख दिया
और तुम्हें वापस कर दिया ।'

शोषण और अत्याचार के लिए दूसरा उदाहरण द्रष्टव्य है -

'हिजडों के हाथों में
कामशास्त्र की पोथियाँ हैं
भेडियों के गले में टंगा है -
वैष्णव संगीत
बंदूकों पर पंचशील की मुहर है
इन दिनों बाजार में सेंट की खपत
बहुत बढ गयी है
मछलियाँ तब से बहुत डरी हुई हैं ।'

व्यंगय करने में मिश्रजी सिध्धहस्त है । उनके व्यंग्य की मार बडी तीक्ष्ण होती है -

'बहुरूपी संत
तब तुम राजाओं के दरबार में
ताम-झाम लगाते थे
रेशम की पगडी बाँधते थे - वजीरे आलम थे न !
आज नयी सत्ताओं के पुरोहित ही
शुध्ध श्वेत वस्त्र पहने हुए ।'[१२१]

वस्तुतः मिश्रजी की भाषा-क्षमता उपर्युक्त पंक्तियों की शब्द योजना से सहज ही जानी जा सकती है ।

मिश्रजी ने ध्वन्यात्मकता और वातावरण निर्माण में सहायक शब्दों का सुन्दर प्रयोग किया है । केवल एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा -

'फूट-फूट उमड चलीं रागों की घाटियाँ
बह उठीं भीगी-स्वर में बागों की घाटियाँ
उडी जा रही नभ में लहर-लहर मेघ की
डूब उठी छाँह में तडागों की घाटियाँ
हरियाली आँखों में भर लेना चाहती
भग जाते ऊपर शरमाए घन बादरा ।'

मिश्रजी की कविता में अन्य भाषाओं के शब्द भी सहजता से आ जाते है, खासकर मुक्त छंद की रचनाओं में आधुनिक युग जीवन की गद्यात्मकता उभारने के लिए अंग्रेजी शब्द अनायास आ जाते है । निम्नलिखित पंक्तियों में 'टैंक' शब्द का उपयोग देखिए -

'टैंक अपना जबडा खोले
खल-खल-खल-खल हँसते रहते हैं.....
और देखते-देखते अनेक देव आकृत्तियाँ
टैंकों के पीछे से उड-उडकर आकाश में छा जाती है ।'

हमने अन्यत्र देखा है कि रामदरश मिश्र बिना अनुभूति के नहीं लिखते । वे केवल कागज पर काम करनेवाले, यों ही शब्द जोडने वाले कवि भी नहीं है । वे सृजन की अनिवार्यता से प्रेरित होकर ही लिखते हैं । फलतः इनकी भाषा 'काव्याभास' भाषा नहीं है, काव्यभाषा है । नामवरसिंह ने कहा है -

'काव्य भाषा की कसौटी पर 'काव्यात्मक भाषा' और काव्याभास भाषा के बीच भेद करना संभव है, जिससे वास्तविक काव्य को काव्य से अलग करने में मदद मिलती है ।'

आज के मूल्यांकन के लिए भाषा ही अत्याधिक महत्व रखती है, इसी मत के पक्ष में रामस्वरूप चतुर्वेदी ने भी कहा है - **'आज की कविता को जांचने के लिए जो अब सचमुच 'प्रास के रजतपाश' से मुक्त हो चुकी है, अलंकारों की उपयोगिता अस्वीकार कर चुकी है, और छंदों की पायलें उतार चुकी है, काव्य भाषा का प्रतिमान शेष रह गया है, क्योंकि कविता के संघटन में भाषा-प्रयोग की मूल और केन्द्रीय स्थिति है ।'**

ऐसा तो नहीं कहा जा सकता कि मिश्रजी ने अ-काव्य लिखे ही नहीं । कविता लेखन एक ऐसा साहस है, जिसमें अनुभूति की सच्चाई के बावजूद अ-काव्य से बचना मुश्किल होता है । मिश्रजी की कई प्रगतिवादी रचनाएँ सपाट है, मुखर है, यहाँ वे अपने बोध को व्यंजित न करके सीधे ही कह देते है, परन्तु ऐसा कम हुआ है । वास्तव में वे सच्चे कवि है । उनकी कुछ प्रभावशाली कविताओं की भाषा देखिए -

'एक नीम मंजरी
मेरे आँगन झरी
काँप उठे लोहे के द्वार ।'
'मैं गमले का फूल तो नहीं
कि एक सुरक्षित कमरे से दूसरे में रख दिया जाऊँ ?'
'बार-बार द्रष्टियों से खींचता
एक असफल लकीर टूटते आसमान पर ।'
'गंध पर फैला हुआ है चाँदनी का फेन ।'

थरथराने से जगे कुछ पंख अपने तीड में
एक छाया छू मुझे उड खो गई इस भीड में
ताल फिर हिलने लगा फटने लगी फिर काइयाँ ।'

'खो गई यात्राएँ सब साथ की
रास्ता ही रास्ता अब रह गया ।'[१२२]

उपर्युक्त काव्य-पंक्तियों का विश्लेषण एवं मूल्यांकन अलग-अलग आधारों पर किया जा सकता है । कहीं विषयवस्तु, कहीं कथ्य, कहीं कथन रीति, कहीं बिम्ब, कहीं प्रतीक तो कहीं लय का महत्व विशेष रूप से दिखायी देता है । परन्तु सर्वत्र मिश्रजी की भाषा-शक्ति लक्षित होती है । भाषा इनके लिए कहीं सीमा नहीं बनाती, पुनरूक्ति दोष या प्रयोग दास्य से वे निहायत मुक्त है ।

मिश्रजी जानते है और मानते है कि कविता की भाषा का आधार बोलचाल की भाषा होनी चाहिए, वह केवल भाषागत स्वाभाविकता अथवा स्थूल प्रकृतिवादी प्रवृत्ति का ही सूचक नहीं, बल्कि उसके साथ कवि का एक गंभीर नैतिक साहस जुडा हुआ है, जिसके अनुसार अपने आसपास की दुनिया में हिस्सा लेते हुए ही कविता को इस दुनिया के अन्दर एक-दूसरी दुनिया की रचना करना आवश्यक हो जाता है ।

इस प्रकार मिश्रजी भाषा के द्वारा, भाषा के रूप में कविता करते है और बोलचाल की भाषा का सृजनात्मक विनियोग है, परन्तु हमें भूलना नहीं है कि वे मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र से प्रभावित है, अतः सपाट बयानी के रूप में एक सादगी का सौन्दर्य उनकी कविता में लक्षित होता है ।

मिश्रजी की काव्य यात्रा को देखते हुए हम कह सकते है कि प्रथम संग्रह 'पथ के गीत' छायावाद से प्रभावित था और बाद में संग्रह 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ', 'पक गई है धूप' और 'कंधे पर सूरज' में 'नई कविता' है । जाहिर है कि भाषा समय और विषय से प्रभावित होती है । छायावादी काव्य की आरोपित लय, यथार्थ पर

आरोपित सत्य की ही भाषा को अनुशासित करती रही, इससे उसका काम चल गया, लेकिन आज के काव्य-शिल्प में व्यवहार में आती हुई भाषा की अन्तर्मुक्त लय को यथार्थ में अंतः संचरित सत्य से जोडना ही मुख्य उदेश्य है ।

'पल-छिन', 'गलबाँही', 'परछाइयाँ' आदि शब्दप्रयोगों के साथ गीतों में 'बिरहिन बन बन कजली बन बन', 'बौर-बौर सूने में जैसे टेर रहा' जैसी पंक्तियाँ लोकभाषा और लोक-चेतना की पारस्परिक अनिवार्यता सिद्ध करती है ।

फटी-फटी आँखों में लादे भूख डरानी,
बैठे होंगे खाली घर के सभी परानी !

चिडिया घोंसला बनाती जाती है और काव्यनायक उसे उजाडता जाता है । एक संकल्पना के निष्कर्ष का तरल सरल भाषारूप देखिए -

मुझे अपने कमरे की बाँझ सफाई की चिन्ता है,
और उसे आनेवाले अपने बच्चों की ।

यह स्पर्धा निष्ठुर प्रकृति और निर्दोष बच्चों के बीच भी चलती रहती है । वहाँ भी कवि को इसी प्रकार की भाषिक संरचना सुलभ होती है । किनारे पर बच्चों की रचनाएँ पानी के प्रचंड बहाव में नष्ट हो गई, लेकिन यह अंत नहीं है -

इस बीच न जाने बच्चे कब जुट आये है
और फिर मिट्टी और तिनके बटोरने लगे है ।

जहाँ कथ्य गद्यात्मक मनःस्थिति के अनुरूप है वहाँ शब्द भी सहमे-से चलते है ! पाठक को अभिजात भावुकता से बचाने वाली भाषा देखिए -

सरकंडे की कलम
खूबसूरत नहीं, सही लिखती है ।

यांत्रिक भावविश्व की एक छवि देखिए : 'उडती हुई आवाजें कुहरे-सी टंग जाती है छतों के बीच' तो इसके विरूध्ध नैसर्गिक ऋजुता की अभिव्यक्ति देखिए -

रेती में खेल रहीं
हरी हरी दूबें ।[१२३]

बोलचाल की भाषा के स्त्रोत खोजने में तत्समवृत्ति नहीं चलेगी । जो अधिकार भोजपुरी बोली को है, वह उर्दू को क्यों नहीं ? सतही निगाह से बटोरते जाइए उर्दू शब्दों की कमी महसूस नहीं होगी - दर्द, लावारिस, अजनबी, खामोशी, महज, बदतमीज, लाश, इन्तजार, दस्तक, वर्दियाँ, जुलूस, शामिल, फर्श, पैबन्द, खूशबू, सैलाब, तलाश, कोशिश, खतरा, बेतहाशा, गमला, फिजा, खिलाफ, खूंखार, मुहब्बत - सूची बढती जाएगी । सहजता के दावे के साथ कुछ अंग्रेजी शब्द भी बेपर्दा प्रवेश करेंगे - सिगरेट के खाली 'केस', सीमेण्ट, माइक, साइनबोर्ड, पोस्टर, पेटीकोट, स्कर्ट,

ऑपरेशन-टेबल, स्कूल, फैक्टरियाँ, एक्सप्रेस, इन्जन की सीटियाँ, फुटपाथ..... कोई रोक नहीं, यदि कथ्य की मानसिकता भाषिक चेतना धारण कर सके । मिश्रजी के यहाँ यह संभव हुआ है क्योंकि यह भी उस काव्ययात्री के निराडंबर व्यक्तित्व का ही एक लक्षण है । यह काव्ययात्री लोकधर्मी है, धूल और उसमें खेलती हरी दूबों का चहेता है परन्तु जाने-अनजाने उसे रहस्यात्मक परम तत्व से भी प्रेरित होता है, जो इसके पैरों में राहें पिन्हाकर दीठियों पार मुस्कराता है ।

कवि की कविताओं में इनके प्रवेश से विसंगत यथार्थ की विरूपता अपने पूरे गाढेपन में व्यक्त हो जाती है । प्रकृति से इस गहरी निकटता के कारण कई बार कवि छायावाद द्वारा कमाये गये शब्दों को दुहराता है जैसे तिमिर, ज्योति धारा, तम, तम-छायाएँ, सुरभि, दूर्वा, ज्योतिपट, ज्वार, अम्बर आदि । मगर इन भव्य शब्दों के निकट जीवित यथार्थ के खुरदुरे बेलाग शब्दों को स्थान देकर वह अपनी अभिव्यक्ति को छायावादी अवरूद्धताओं से अलग अच्छा सर्जनात्मक रंग देता है । इस प्रकार का शिल्प अधिक निर्भय और बेलाग शिल्प है, क्योंकि स्वाभाविक रूप से शब्दों में अपने निकट के शब्दों के प्रति एक साहचर्यात्मक मांग हुआ करती है, किन्तु कवि ऐसी किसी मांग के प्रति सदय नहीं है, वह लिख लेता है -

'यह वही जंगला -
जहाँ से बार-बार वसन्त झर-कर
उधर कोने में पडे
खाली कनस्तर में गया है डूब ।'

वस्तुतः कवि की द्रष्टि में समकालीन वस्तु सत्य है न कि शब्दों के चमकीलेपन के प्रति किसी प्रकार की मुग्धता ।

''साहित्य में सौन्दर्य सृष्टि और उससे यथार्थ के द्वन्द्व को रामदरश मिश्र की कविता के सन्दर्भ में विश्लेषित करना है । क्योंकि एक रचनाकार के भीतरी संसार का पूरा या अधिकाधिक विश्लेषण उसकी सौन्दर्य-भावना, बोध को समझे बिना नहीं हो सकता । और यह भी कि यथार्थ को जब रचनाकार देखता है और जब अनुभव करता है और जब रचता है तब उसकी सृष्टि में आया आरोह-अवरोह कैसे उसके शब्द-शब्द के अर्थ को तरंगित करता है और यह तरंग कहीं न कहीं से शुरू होकर कहीं दूसरे छोर पर टकराती है । इस टकराहट में ही उसकी गति जीवन और उसके होने की सार्थकता विद्यमान होती है ।[१२३]

जब मिश्रजी 'शब्दों पर शब्दों के चेहरे' और 'अर्थों पर अर्थों के चेहरे' की बात करते है तब ये गीत की इस जटिल रचना-धर्मिता की ओर संकेत करते है । मूल आग्रह 'मैं' को व्याख्यायित करने, अपने भीतर की लिपि को पढने का है । लेकिन ये सवाल निःसंग प्रकार की दार्शनिक चिन्ता से जुडे हुए सवाल नहीं है, ये जिन्दगी

के ऊबड-खाबड और दुर्गम रास्तों में काँटों और पत्थरों की तरह बिछे है, जो कदम-कदम पर चेतना को क्षत-विक्षत और लहू लुहान किए रहते है । यह श्यामपट आज के मानवीय परिवेश के उसी 'काले, अँधेरे स्याह' का पर्याय है, जो मुक्तिबोध की कविता में बार-बार उभरता है और सचमुच उस श्यामपट पर अंकित किए बिना अपने आपको पढने की न कोई सार्थकता है और न कोई अनिवार्यता हीं । 'शब्दों पर शब्दों के चेहरे' में उन स्थितियों की ओर संकेत किया गया है जिनमें अनेक लोगों की जीवंत उपस्थिति मानवीय परिवेश को जटिल और पेचीदा बनाती है । एक अर्थ का दूसरे को काटना, उस पर पहरेदारी करना, उस द्वन्द्व और संघर्ष की ओर संकेत करते है, जो परस्पर विरोधी हितों की टकराहट से पैदा होते है । घ्यान देने की बात है कि यह परिस्थिति स्वयं कवि ने निर्मित नहीं की है, उसने तो अपने चारों ओर फैली इस जटिलता और संश्लिष्टता को पहचानने का काम किया है । उसे अनेक प्रकार की इबारतों के बीच कुछ इस प्रकार से लिख दिया गया है वह अपने आप को पढ नहीं पाता । कवि को यह स्थिति काम्य नहीं है । वह तो चाहता है कि -

'खडी फसल के पात-पात पर
अपने को लिख जाऊँ
लहर-लहर पर गिर-गिर नाचूँ
दिशा-दिशा उड जाऊँ ।'[१२४]

वह चाहे यथार्थ हो या स्वप्न मिश्रजी के गीतों में हर नई स्थिति अपनी आन्तरिक जरूरत के अनुसार शब्द और शिल्प का संधान कर लेती है । 'शब्दों पर शब्दों के चेहरे' में स्वरों और व्यंजनों का विन्यास रचना की अन्तर्वस्तु की अनिवार्यता के अनुरूप हुआ है । इस पूरी की पूरी कविता में आनेवाले स्वर जैसे अपने आप में सिमट कर रह गए है । उनको विस्तार दीजिए तो कविता की लय टूट जाएगी । गीत की संरचना का यह स्वरूप उसमें व्यक्त होनेवाली भाव-स्थितियों के अनुरूप है । लेकिन खडी फसल के पात-पात पर अपने को लिख जाऊँ, मैं कवि की एक भिन्न मनः स्थिति प्रकट हुई है । परिणामतः यहाँ स्वर प्रलंबित हो गए है, जैसे वे हृदय के भाव-संवेदन को विस्तार देते हों । शब्द और अर्थ की लय के बीच का संतुलन और सामंजस्य मिश्रजी के सामान्य से गीतों में भी मिल जाएगा । उनके गीतों की सरलता की वजह से प्रायः हम उनके इस रचनात्मक कौशल की ओर घ्यान नहीं देते । कहना न होगा कि शब्द-विन्यास का उनका यह कौशल, उनके गहन जीवन और कला-विवेक से उद्भूत है ।

प्रेम और प्रकृति संबंधी गीतों में व्यक्ति-मन की कामना, प्यास और ललक की व्यंजना भी वे जिन बिंबों, प्रतीकों में करते है, शब्दों का जो अप्रत्याशित संयोजन और

लय-ध्वनि का जो चतुर विन्यास रचते है, वह उनके निजत्व में एक व्यापक सांस्कृतिक बोध की अनुगूँज पैदा कर देता है । हमारे सामने होता है उनके भावों का गंभीर प्रवाह - एक दम स्वच्छ, निर्मल और पारदर्शी, लेकिन लगता है कि कुछ ऐसा भी है, जो एक लंबी यात्रा के दौरान अनायास ही इसमें अन्तर्मुक्त हो गया है । जैसे नदी की कलकल ध्वनि में वनों, पर्वतों, घाटियों, खेतों, मैदानों और वस्तियों की स्मृतियाँ भी समाहित हो गई है । इसका मुख्य कारण यह है कि मिश्रजी शब्द को उसके अनुभव की जडों से विछिन्न करके अपने गीतों में प्रयुक्त नहीं करते, वे उसके ऐतिहासिक सांस्कृतिक अर्थ-संदर्भ का कुछ इस ढंग से उपयोग कर लेते है कि वह उनकी संवेदना की वर्तमान ताक्तालिकता को कुछ और भी गहरा बना देता है, जैसे -

- **बिखरे बिखरे सपने चुन चुन**
सूनी रैन सजाऊँ
भोरे-भोरे नदी तीर
बालू के महल बनाऊँ
कौन उडा ले जाय समनवाँ
कौन महलिया ढाए ।

- **गंधाकुल आकाश नशीला**
पीकर पत्थर भी है गीला
भीग रहे उजले-उजले पथ
बरबस मन का बंधन ढीला ।[१२५]

पहले उदाहरण में आनेवाले दो शब्द 'समना' और 'महल' गीत की अंतिम पंक्तियों तक पहुँचते-पहुँचते 'समनवाँ' और 'महलियाँ में रूपान्तरित हो गए है । मोटे तौर पर शब्दों के दोनों रूपों का अर्थ एक ही है, लेकिन उनकी व्यंजना में एक सूक्ष्म अंतर आ गया है । 'सपना' और 'महल' एक आभिजात्य संस्कार लिए हुए दिखाई देते है । भले ही सपने बिखर चुके हों, लेकिन उनको संयोजित करके सेज तो सजा ही ली जाती है, इसी प्रकार क्यों न बालू का ही सही, आखिर महल तो बन हो जाता है । कुछ सार्थक रचना बनाने का आत्म-सुख है इसके अन्दर । लेकिन यह भाव अधिक देर तक टिका नहीं रह पाता । कामना और प्रतीक्षा का अन्त घोर निराशा में होता है । सपना टूटकर जैसे हवा में उड जाता है और महल ढह जाता है । लेकिन 'सपने' का 'सपनवाँ' और 'महल' का 'महलियात्त बनते ही भाव-बोध के स्तर में गुणात्मक परिवर्तन आ जाता है । वैयक्तिक निराशा और वैकल्य में जैसे लोक पीडा का अर्थ घुलने-मिलने लगता है । अपने स्वर और संवेदन को लोक जीवन की अन्तर्लय और पीडा के साथ जोडकर कवि अपने भाव को कुछ और भी अधिक

प्रगाढ बना देता है । 'सपना' की अपेक्षा 'सपनवाँ' के साथ कुछ अधिक घरेलूपन जुड जाता है, इसलिए उसका टूटना बिखरना मर्म को कुछ अधिक गहरे स्तरों पर जाकर छूता है । 'महल' का 'महलिया' बनते ही जैसे हम किसी गरीब की झोंपडी के उजडने के साक्षी बन जाते हैं । शब्दों की मामूली तराश, उनको सही जगह और सही संदर्भ में रख देने की समझ और सावधानी, न केवल रचना के कलात्मक संयोजन और सामंजस्य को निखारती है, बल्कि अनुभव के एक ही बिन्दु पर जीवन के अनेक स्तरों के मर्म को खींच लाती है ।

दूसरे उदाहरण में वसंत का एक भाव चित्र है । यहाँ भीग रहे उजले-उजले पथ की व्यंजना हमें विशेष रूप से आकर्षित करती है । प्रेम की निजता और एकांतिकता को सामाजिक बोध और संवेदना के साथ जोड देना मिश्रजी का अपना एक रचनात्मक वैशिष्ट्य है ।

''एक मान्यता यह भी है कि गीत की आंतरिक संरचना इस बात की छूट नहीं देती कि उसे जीवन के जटिल प्रश्नों के दबाव के नीचे ले आया जाय । वह अपनी प्रकृति से ही संवेदनात्मक-भावात्मक होता है, विचार या बोध का उसके स्वरूप के साथ सामंजस्य नहीं बैठता । भावों के मर्म में ही उसकी सार्थकता है । यानी वह हमारे संवेदना तंत्र में एक हलकी-सी झंकृति भर जगा दे और ऐसा करने में वह शब्द की अन्तर्निहित संगीतात्मकता से जितना काम लेता है, उतना उसकी अर्थ-व्यंजना से नहीं । स्वरों का उतार-चढाव, 'छन्दों का बंध', शब्दों की लय-ध्वनि, भाव-व्यंजना में कुछ नया जोडती है ।''[१२६]

छन्द-योजना

काव्य और छन्द का सम्बन्ध चोली-दामन का सम्बन्ध है । वस्तुतः बिना छन्द के कविता की रचना हो ही नहीं सकती । छन्द शब्द का अर्थ है आल्हादन - 'छन्दयति-आल्हादयति-इति छन्दः' अर्थात् जो मनुष्यों को प्रसन्न करता है, आनन्द देता है - वह छन्द है । काव्य में छन्द की लय और ताल से ही मुग्धता का संचार होता है । काव्य में जो संगीतात्मकता है, वह छन्द के कारण ही है । आचार्य शुक्लजी ने स्पष्ट कहा है कि ''कविता का पूरा सौन्दर्य छन्द को लय के साथ जोर से पढे जाने में ही खिंचता है । शब्दों की चलती लय में कुछ विशेष माधुर्य है ।'' अन्य विद्वनों ने भी स्वीकार किया है कि ''छन्द के बन्धन के सर्वथा त्याग में हमें तो अनुभूत नारी-सौन्दर्य की प्रेषणीयता का प्रत्यक्ष ह्रास दिखाई पडता है ।''

अतः कविता छन्द को कभी छोड नहीं सकती । कविता का जब जन्म हुआ था तो भी उस समय वाणी अनुष्टुप छन्द में बंधकर ही प्रवाहित हुई थी । तदुपरान्त तो हर काव्य में कविता छन्द के रथ पर बैठकर चली जो आज भी जन मानस के हृदय

का हार बनी हुई है ।

उर्दू के सुप्रसिद्ध गजलकार गालिब ने अपने एक शेर में कहा था –

''बकद्रे शौक नहीं जर्फेतंगनाए गजल,
कुछ और चाहिए वुस्अत मेरे बयां के लिए ।''[१२७]

परन्तु हिन्दी साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर रामदरश मिश्र ने कहानी, उपन्यास, आलोचना गीत इत्यादि विधाओं के साथ उर्दू विधा गजल को अपनी अभिव्यक्ति का सचोट माध्यम बनाया है । मिश्रजी गजल विधा की खूबियों के प्रति काफी सजग रहे हैं । इनकी गजलों में भाषा की रवानी, कथ्य की संप्रेषणीयता – हृदय की टीस, सांकेतिकता विशेष रूप से पायी जाती है । हिन्दी भाषा में दुष्यन्त कुमार के पश्चात् अन्य गीतकारों ने भी गजल को संवारा है, उसके कथ्य को नये आयाम दिये है । यूँ तो मिश्रजी ने दुष्यन्त से पूर्व भी गजलें कही है, जो उनके काव्य संग्रह ''बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ'' में संकलित है ।

किन्तु 'बाजार को निकले हैं लोग' संग्रह की गजलों में आपने दुष्यन्त कुमार की तरह युगीन विसंगतियों एवं अवाम की तकलीफों को व्यक्त किया है, साथ ही आज के मनुष्य के एकाकीपन की पीडा, स्वार्थी शहरी संस्कृति में व्याप्त घुटन तो दूसरी तरफ गाँव की स्निग्ध पुकार उनकी गजलों में सुनाई पडती है । गजल के परम्परागत वर्ण्य-विषय सौन्दर्य एवं प्रेम की सोंधी-सोंधी महक भी उनकी गजलों में है, तो दूसरी तरफ प्रतीक्षारत वियोगी हृदय की छटपटाहट भी ।

उपर्युक्त तमाम विशेषताओं के पश्चात् भी अपनी गजलों के बारे में मिश्रजी का ये निवेदन 'ये गजलें' उन रचनाकारों के लिए द्रष्टव्य है, जो एक या दो अच्छे मिसरे कहने के पश्चात ही स्वयं को गजल खाँ घोषित करते है – देखिए –

''गजल मेरी मुख्य काव्य शैली न थी, न है, न रहेगी । मैं इस शैली पर अपना कोई अधिकार भी नहीं समझता । मैंने इन गजलों को बार-बार गजल की दृष्टि से देखने और निखारने का प्रयत्न किया है फिर भी ठेठ गजल प्रेमियों को इनसे तकलीफ पहुँचे तो क्षमा करेंगे । उनसे निवेदन है कि यदि गजलों मे उन्हें कविता दिखाई दे तो यही समझकर संतोष कर लें ''घी का लड्डू टेढा भला'' और यह मान लें कि ये गजलें नहीं गजलनुमा कविताएँ हैं ।''

मिश्रजी का यहाँ ठेठ प्रेमियों से संकेत उर्दू छन्दों के शास्त्रीय ज्ञाताओं से है । यह सच है कि हिन्दी भाषा में गजल का शिल्पगत विकास भली भाँति नहीं हो सका है । यह सर्वविदित है कि गजल फारसी काव्य विधा है ।

उसमें अरबी-फारसी बहरों का प्रयोग किया जाता है । हिन्दी की छन्द व्यवस्था एवं अरबी-फारसी उरूज में पर्याप्त भेद है । कुछ हिन्दी-उर्दू छन्द लगभग एक से

हैं । इन छन्दों का हिन्दी गजलकारों ने सहजता से निर्वाह किया है, किन्तु जहाँ भी उन्होंने कौशल-प्रदर्शन की सोची वहीं मात खा गये है । आश्चर्य तो इस बात का है कि वे एक ही गजल के शेर की दोनों पंक्तियों में भिन्न-भिन्न वजन की बहरों का प्रयोग कर देते हैं । उनकी दृष्टि में ये नया प्रयोग भी हो सकता है, किन्तु ऐसे नूतन प्रयोग किसी भी उर्दू गजल में नहीं मिलते । हिन्दी में इनकी भरमार है -

मिश्रजी के एक शेर से यह बात उजागर होती है । जैसे -

अपनी बुझी निगाह से कोसो न वक्त को,
कुछ भी न सही हाथ में परचम तो दिये है ।

यहाँ शेर की प्रथम पंक्ति का वजन इस प्रकार है -

मफ ऊल	**फायिलात**	**मफाओील**	**फायिलुन**
ड ड ।	**ड । ड ।**	**। ड ड ।**	**ड । ड**
गा गा ल	**गा ल गा ल**	**ल गा गा ल**	**गा ल गा**
अपनी बु	**झी निगाह**	**से कोसों न**	**वक्त को**
मफ ऊल	**फायिलात**	**मफाओील**	**फायिलुन**
ड ड ।	**। ड ड ।**	**। ड ड ।**	**। ड ड**
गा गा ल	**ल गा गा ल**	**ल गा गा ल**	**ल गा गा**
कुछ भी न	**सही हाथ**	**में परचम तो**	**दिये हैं** [१४१]

उर्दू छन्द शास्त्र की दृष्टि से ये दोनों अलग बहरे है । किन्तु इसी संग्रह में मिश्रजी ने अन्य सरल एवं कठिन बहरों का बडी सावधानी से प्रयोग किया है । उर्दू की प्रसिद्ध बहर कामिल का एक उदाहरण दृष्टव्य है -

''एक कारवां चलता रहा, तेरे पास ही तेरे पास ही ।
तूने राह सारी गुजार दी किसी हम सफर की तलाश में ।।''

कहने का तात्पर्य है कि संग्रह के सभी लड्डू टेढे नहीं - उनका अपना विशिष्ट आकार है । मिश्रजी सफल गीतकार हैं । मात्राओं की जगह आप लय पर विशेष घ्यान देते है । आपने अपने गजल संग्रह में कई उर्दू बहरों का सफलता से निर्वाह किया है, फिर भी उनका 'निवेदन' वास्तव में विनम्रता और स्पष्ट वादिता का परिचायक है ।

हम पहले ही कह चुके है कि रामदरश मिश्र की गजलों में प्रभावोत्पादकता, संप्रेषणीयता विशिष्ट पायी जाती है । हमारे देश की वर्तमान स्थिति का एक द्रश्य है

घर के मौसम को हुआ क्या आज है,
बन गयी आँगन की चिडिया बाज है ।

उधर पूरब की हवा बेचैन है,
उधर पश्चिम की हवा नाराज है ।

इसी गजल में मिश्रजी के मिश्र ज बहर-ए रमल मुसद्धस महजूफ का प्रयोग किया है ।

देश में होने वाले हत्याकांडों-फसादों को मिश्रजी प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करते हुए कहते है -

भोर रंगों में नहीं खूँ में सनी है ।
बाग में बैठी हुई ऋतु अनमनी है ।।
पूछते हैं पेड पेडों से सहमकर ।
क्यों हवा में आज फैली सनसनी है ।।

भाईचारे और मुहब्बत का पैगाम देते हुए आप इसी गजल के आखिरी शेर में कहते है -

रंग सबके प्यार का तो एक ही है ।
क्या हुआ मैं राम तू अब्दुल गनी है ।।

मिश्रजी ने अपनी गजलों में लोगों की वेदना को बडे प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है । आज हर शख्श बेघर है - घायल है । आप कहते है -

खत्म फुटपाथ का सफर होता ।
मेरा अपना भी कोई घर होता ।।

फिर भी वे एक दूसरे के हाल अवश्य पूछते है -

आता हूँ और आता रहूँगा ये मेरा हक ।
मेरे नसीब में यों लिखी वापसी तो है ।।
जख्मों से भरे लोग हैं रोते हुए मिलते ।
आपस में पूछते है कि राजी खुशी तो है ।।

स्वातंत्र्योत्तर स्थितियाँ पहले से भी अधिक खराब हो रही है, चारों ओर बहशी दरिन्दों का बोलबाला है । कहने को तो देश में प्रजातन्त्र है, किन्तु सत्ता अभी भी आतताइयों के पास है । मिश्रजी कहते है -

उदास धूप है बस्ती मरी-मरी सी है ।
सुबह-सुबह सी नहीं मौन थर-थरी सी है ।।
सहम-सहम के बह रहा है नदी का पानी ।
हवा बहार की कैसी डरी-डरी सी है ।
उलट गया है घडे कौन यहाँ लोगों के ।

हरेक आँख देखिए भरी-भरी सी है ।।

शहरी-सभ्यता के खोखले सम्बन्धों एवं प्रवंचनाओं का पर्दाफाश करते हुए आप कहते है -

जंगल से हम शहर को निकले शहर में जंगल उग आये ।
वह जंगल जंगल था यारों यह जंगल तो ज्ञानी है ।।
खामोशी की भाषा में तब मन की कितनी हलचल थी ।
भाषा की हलचल में कितनी खामोशी वीरानी है ।।

आज चारों तरफ हिंसा, आतिशजनी, फसाद जैसी घटनाएँ नित प्रत हो रही है, मनुष्य मनुष्य के रक्त का प्यासा बना हुआ है, ये कहीं आदिम युग की अविकसित स्थितियों का पुनरावर्तन तो नहीं, इसी ओर संकेत करते है । रामदशर मिश्र कहते है -

हम जहाँ से थे चले क्या फिर वहीं आना हुआ ।
यह अजनबी दृश्य कुछ लगता है पहचाना हुआ ।।

आर्थिक विषमताएँ मनुष्य का जीना दूभर किये हुए है । उसे दो वक्त की रोटी के लाले पडे हुए है, फिर भी वह मायूस नहीं । आप कहते है -

चूल्हों में है बुझी हुई जलती है जिगर में ।
कैसी अजीब आग मिली जिन्दगी भर को ।[१२८]

मिश्रजी की गजलों में वेदना ही नहीं आस्था और संघर्ष के स्वर भी मुखरित हुए है । जिस तरह लोहा लोहे को काटता है, उसी तरह दुःख की मारक शक्ति दुःखों में ही निहित है । देखिए -

एक ताजा चोट यों बरसी कि पहली धुल गयी ।
इस तरह से गम गलत गम से किये जाते हैं हम ।।

हमें खुशनुमा जिंदगी जीने के लिए संकुचित मानसिकता के घेरे से बाहर निकलना होगा, पूर्वग्रहों को त्यागना होगा, तभी जीवन का सही आनन्द प्राप्त हो सकेगा । रामदरश मिश्र कहते हैं -

तोड तो शीशा कहीं आये हवाएँ ।
बन्द कमरे में घुटन छाने लगी है ।।
याद भर रह जायेगी जी लो घडी भर ।
देख लो ऋतु बाग से जाने लगी है ।।

मिश्रजी ने प्रेम रंग भी अपनी गजलों में भरा है । संयोग-वियोग दोनों ही दशाओं के बडे मार्मिक दृश्य आपने प्रस्तुत किए हैं -

यों तो पहले भी कई तनहाइयाँ गुजरी मगर ।
आज पहली बार लगता है कि मैं तन्हा हुआ ।।

उर्दू गजलकारों ने भी इसी स्थिति का बडा मार्मिक वर्णन किया है –

जिन्दगी में दो ही लमहें मुझपे गुजरे है कठिन ।
एक तेरे आने से पहले एक तेरे जाने के बाद ।।

वियोगी हृदय अपने प्रिय के संदेश की बडी बेसब्री से बाट निहारता है किन्तु –

कोई आया न, कोई खत न तार ही आया ।
लौट आखिर को मेरा इन्तजार ही आया ।।

बरसों की जुदाई के बाद अचानक उसका मिलना और फिर से पूछना –

तुमने क्या अपना हाल किया है दिनों के बाद ?
किसने ये फिर सवाल किया है दिनों के बाद ।।
पलभर में सारी खिडकियाँ बेपर्दा हो गई ।
मौसम ने फिर कमाल किया है दिनों के बाद ।।

इस प्रकार रामदरश मिश्र की गजलों का हिन्दी गजल विधा में महत्वपूर्ण स्थान है । वर्तमान स्थितियों से जुडकर आपने गजलें कहीं हैं । छन्दों की यान्त्रिकता की जगह कथ्य की संप्रेषणीयता को आपने विशेष महत्व दिया है । यही उनकी गजल में निजी पहचान बन गई है ।

मिश्रजी की काव्य-भाषा का मात्रिक छन्दों एवं गीत-लयों से सहज सम्बन्ध है । लय-सिध्धि इनकी नैसर्गिक शक्ति का एक अंश है, तो दूसरी ओर केवल गद्य-सी दिखाई देने वाली मुक्त छंद की रचनाएँ भी उल्लेखनीय है । इन रचनाओं में लय अर्थानुसारी होती है, एक मैदान का चित्र देने के लिए मुक्त छंद में प्रयुक्त भाषा तथा इसकी सरल, मधुर गद्य छवि सराहनीय है –

'सामने बिछा हुआ एक लम्बा मैदान
अपरिचित
कुछ अजनबी शक्लें उभरती हैं
और एक-दूसरे की परछाइयाँ काटती हुई
धीरे-धीरे पिघल जाती है ।'[१२९]

आज की बुध्धि-परस्त कविता के मुख्य प्रवाह में मिश्रजी की कविता रागात्मकता के स्त्रोत का गौरव करती है । मुक्त छंद की कविता में गद्यात्मक शुष्कता से बचना मुश्किल होता है । मिश्रजी के यहाँ रागात्मकता की निराली पूँजी है, जो हमें शैशव

के उजाले में ले जाती है, अंधश्रध्धा की अनवस्था में नहीं । मनुष्य को भटकाने वाली अनवस्थाओं से मिश्रजी आतंकित है । जिसे हमने व्यवस्था मान रखा था । वह तो पहरेवालों की छाया भर है । वे युगचित्त के सन्नाटे को द्विगुणित करते रहे है –

निष्कर्ष

मिश्रजी की कविताओं के अभिव्यक्ति पक्ष का मूल्यांकन करते हुए निष्कर्षतः कह सकते हैं कि वह बहुआयामी है । कभी-कभी जहाँ अनुभूति पर अधिक जोर दिया गया है, वहाँ थोडी-सी सपाट बयानी आ गयी है, अन्यथा अभिव्यक्ति सुगठित, संग्रथित और प्रभावोत्पादक है । भाषा भावानुकुल संदर्भित एवं यथार्थपरक है । काव्य शैली समग्र रूप में वस्तुनोमुखी, तर्कनिष्ठ, चुस्त एवं अनुभूति व्यंजक है । कविता की शब्दावली भाव-व्यंजक, सघन और सार्द्र है ।

अध्याय - ४
संदर्भ सूची

१) अनन्त मिश्र : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता, पृ : ६२

२) डॉ. अनन्त मिश्र : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता : पृ : २६२

३) डॉ. अनन्त मिश्र : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता : पृ : २६९

४) डॉ. अनन्त मिश्र : उद्धृत, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता : पृ : ३०८

५) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीरसिंह चौहान पृ. १

६) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीरसिंह चौहान पृ. १०

७) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीरसिंह चौहान पृ. १०२

८) कवि रामदरश मिश्र : सं. डॉ. नवनीत गोस्वामी पृ. १२

९) कवि रामदरश मिश्र : सं. डॉ. नवनीत गोस्वामी पृ. १७८

१०) वही, पृ. १७९

११) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीरसिंह चौहान पृ. १११

१२) वही, पृ. १११

१३) वही, पृ. ११४

१४) वही, पृ. १२५-१२६

१५) वही, पृ. १२८

१६) वही, पृ. १२९

१७) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीरसिंह चौहान पृ. ४९

१८) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीरसिंह चौहान पृ. ८४

१९) वही, पृ. ८६

२०) वही, पृ. ८७

२१) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीरसिंह चौहान पृ. ११५

२२) वही, पृ. ११५

२३) वही, पृ. ११८

२४) वही, पृ. ११९

२५) कितने बजे है : 'फागुन', पृ. ७७

२६) कंधे पर सूरज : 'गठरी', पृ. २७

२७) कंधे पर सूरज : 'एक जंगल है', पृ. ३६

२८) कंधे पर सूरज : 'बाहर है बसंत आ गया', पृ. ९५

२९) कंधे पर सूरज : 'दवा की तलाश', पृ. १२

३०) कंधे पर सूरज : 'गठरी', पृ. २४

३१) वही, 'कल्पवृक्ष', पृ. ३७

३२) वही, 'बिल्ली रानी', पृ. ३५

३३) कंधे पर सूरज : 'कविता का आकाश विस्तृत हो गया', पृ. १९-२०

३४) कंधे पर सूरज : 'गठरी', पृ. २७

३५) कंधे पर सूरज : 'सत्यबोध', पृ. ३७

३६) कंधे पर सूरज : 'खो गई सब यात्राएँ साथ की', पृ. ३३

३७) डॉ. कुमार विमल : उद्धृत, सं. वसन्त कुमार परिहर, 'आकार' वर्ष - १, अंक - २, अप्रैल १९८०, पृ. २२

३८) गजानन माधव मुक्तिबोध : नयी कविता : आत्म संघर्ष, पृ. ११९

३९) जयशंकर प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ. १२०

४०) जनक शर्मा, गजानन माघव मुक्तिबोध : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. २५३

४१) जयशंकर प्रसाद : जीवन, दर्शन, कला और कृतित्व, पृ. २९३

४२) वही, पृ. २९३

४३) वही, पृ. २९३

४४) जुलूस कहाँ जा रहा है : 'हम पूरब से आये है', पृ. ७२

४५) पथ के गीत : पृ. १२०

४६) पक गई है धूप : 'महानगर में बसंत', पृ. १४

४७) पक गई है धूप : 'जंगल', पृ. ७५

४८) पक गई है धूप : 'समय देगता', पृ. ९२

४९) डॉ. प्रेमप्रकाश गौतम : लेख 'प्रतीक और बिम्ब का मनो-विश्लेषण' : साहित्य सन्देश, जुलाई-अगस्त १९६७, पृ. ७१

५०) बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ : टंकित प्रति से, पृ. २४

५१) डॉ. भगीरथ मिश्र : काव्यशास्त्र, सप्तम संस्करण, पृ. २६३

५२) महादेवी वर्मा : 'संधिनी' बारहवाँ संस्करण, पृ. २३

५३) मेरे प्रिय गीत : 'आए घन बादरा', पृ. २३

५४) डॉ. मोहन अवस्थी : आधुनिक हिन्दी काव्य शिल्प, पृ. २९६

५५) डॉ. मोहन अवस्थी : आधुनिक काव्य शिल्प, पृ. ११

५६) रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति, सं. डॉ. जगनसिंह, पृ. ११४
५७) रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति, सं. डॉ. जगनसिंह, पृ. ११३
५८) वही, पृ. ११३
५०) रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति, सं. डॉ. जगनसिंह, पृ. १२१
६०) वही, पृ. १२२
६१) वही, पृ. १२४
६२) राम स्वरूप चतुर्वेदी : उद्धृत, डॉ. रामदरश मिश्र : हिन्दी समीक्षा : स्वरूप और संदर्भ, पृ. ३५२
६३) रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति, सं. डॉ. जगनसिंह, पृ. १३६
६४) रामदरश मिश्र : रचना समय : डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ, पृ. १०१-१०२
६५) डॉ. रामदरश मिश्र : हिन्दी कविता : आधुनिक आयाम, पृ. १४८
६६) वही, पृ. १४८
६७) डॉ. रामदरश मिश्र : मेरे प्रिय गीत, पृ. २८
६८) डॉ. रामदरश मिश्र : मेरे प्रिय गीत : 'उनकी आँखों', पृ. १६
६९) वही : 'अंधेरी घाटियों का गीत', पृ. ३४
७०) डॉ. रामदरश मिश्र : मेरे प्रिय गीत : 'घर मेरे एक किरन', पृ. ५७-५८
७१) वही : 'आती-आती-सी शाम', पृ. ६१
७२) वही : 'धूप', पृ. ४२
७३) डॉ. रामदरश मिश्र : मेरे प्रिय गीत : 'भरी-भरी गगरी छलक जाये रे', पृ. ५१-५२
७४) वही : 'गाढे गये दिन बीत', पृ. ५०
७५) वही : 'फागुनी शाम : एक नीली झील', पृ. ६०
७६) डॉ. रामदरश मिश्र : मेरे प्रिय गीत : 'मुझमें दोपहरी', पृ. ६८
७७) वही : 'फिर हवाएँ', पृ. ७१
७८) डॉ. रामदरश मिश्र : मेरे प्रिय गीत : भूमिका, पृ. ७
७९) डॉ. रमाशंकर मिश्र : आलोचना, जून १९६५ 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य विशेषांक', भा-१, पृ. ८३
८०) डॉ. रामदरश मिश्र : आधुनिक हिन्दी कविता : सर्जनात्मक संदर्भ, पृ. १३६
८१) डॉ. रामदरश मिश्र : हिन्दी कविता आधुनिक आयाम, पृ. ८६-८७
८२) डॉ. रामदरश मिश्र : साहित्य संदर्भ और मूल्य, पृ. ७६
८३) डॉ. रामदरश मिश्र : पक गई है धूप : 'सडक', पृ. ३१

८४) डॉ. रामदरश मिश्र : 'पक गई है धूप' : 'सुखी लोग', पृ. ४३
८५) डॉ. रामदरश मिश्र : 'पक गई है धूप' : 'मेरा आकाश', पृ. ८२
८६) डॉ. रामदरश मिश्र : कंधे पर सूरज : 'दो किनारे', पृ. ७६
८७) डॉ. रामदरश मिश्र : कंधे पर सूरज : 'अपने में अपने से अलग', पृ. ८१
८८) डॉ. रामदरश मिश्र : पक गई है धूप : 'ताल', पृ. ७६
८९) डॉ. रामदरश मिश्र : जुसूल कहाँ जा रहा है : 'चिट्ठियाँ', पृ. २५
९०) डॉ. रामदरश मिश्र : दिन एक नदी बन गया : 'पिकनिक', पृ. ५४
९१) डॉ. रामदरश मिश्र : कंधे पर सूरज : 'गठरी', पृ. २४
९२) डॉ. रामदरश मिश्र : वही, पृ. २४
९३) डॉ. रामदरश मिश्र : कंधे पर सूरज : 'गठरी', पृ. २६-२७
९४) वही : पृ. २७
९५) डॉ. रामदरश मिश्र : कंधे पर सूरज : 'लौट आया हूँ मेरे देश', पृ. ३२
९६) डॉ. रामदरश मिश्र : पक गई है धूप : 'फिर वही लोग', पृ. १२७
९७) वही : पृ. १२४
९८) डॉ. रामदरश मिश्र : बाजार को निकले है लोग : भूमिका, पृ. ५
९९) वही : पृ. ५
१००) डॉ. रोहितश्व अस्थाना : हिन्दी गजल : उद्भव और विकास, पृ. १७-१८
१०१) डॉ. रामदरश मिश्र : बाजार को निकले है लोग : भूमिका, पृ. ६
१०२) डॉ. रामदरश मिश्र : बाजार को निकले है, पृ. ७
१०३) वही : पृ. २८
१०४) वही : पृ. ९
१०५) वही : पृ. ३५
१०६) वही, पृ. ७९
१०७) वही : पृ. ३०
१०८) डॉ. रामदरश मिश्र : बाजार को निकले है लोग, पृ. ६०
१०९) डॉ. रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति : सं. डॉ. जगनसिंह, पृ. ११६
११०) वही : पृ. ११७
१११) डॉ. रामदरश मिश्र : बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ, पृ. ४५
११२) डॉ. रामदरश मिश्र : मेरे प्रिय गीत : हरसिंगार की डाली तूने झकझोर दी, पृ. ३८
११३) डॉ. रामदरश मिश्र : बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ, पृ. ९१

११४) डॉ. रामदरश मिश्र : कंधे पर सूरज : 'वसंत की सुबह', पृ. २२
११५) डॉ. रामदरश मिश्र : पक गई है धूप, पृ. १९
११६) डॉ. रामदरश मिश्र : कंधे पर सूरज : 'साक्षात्कार', पृ. ८७
११७) डॉ. रामदरश मिश्र : पथ के गीत, पृ. ८१
११८) डॉ. रामदरश मिश्र : कंधे पर सूरज : 'अलविदा', पृ. ७९
११९) वही : 'वसंत की सुबह', पृ. २१-२२
१२०) डॉ. रामदरश मिश्र : मेरे प्रिय गीत : 'फागुन आया', पृ. २३-२४
१२१) डॉ. रामदरश मिश्र : पक गई है धूप, 'गलियाँ और सडकें', पृ. १७
१२२) डॉ. रामदरश मिश्र : साहित्य संदर्भ और मूल्य, पृ. २४
१२३) वही, पृ. २४
१२४) डॉ. रामदरश मिश्र : छायावाद का रचनालोक, पृ. ६५
१२५) डॉ. रामदरश मिश्र : बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ, पृ. ४१
१२६) वही, पृ. १२३
१२७) डॉ. रामदरश मिश्र : साहित्य संदर्भ और मूल्य, पृ. ७६
१२८) डॉ. रामदरश मिश्र : कंधे पर सूरज : 'गठरी', पृ. २७
१२९) वही, पृ. १०२
१३०) वही, पृ. १३२

अध्याय - 5

रामदरश मिश्र की काव्यगत विशेषताएँ

अध्याय - ५

१. रामदरश मिश्र की काव्यगत विशेषताएँ :

- प्रस्तावना :

२. सामयिक सन्दर्भो की दृश्य-योजना

३. वर्गहीन समाज की स्थापना

४. शोषितों के प्रति सहानुभूति

५. नारी-मुक्ति की भावना

६. शोषण का विरोध

७. बदलाव की चेतना

८. 'संबंध' और 'सही' का पक्षधर काव्य-विवेक

९. निष्कर्ष

अध्याय - ५

(१) रामदरश मिश्र की काव्य-गत विशेषताएँ :

- प्रस्तावना :

कवि रामदरश मिश्र ने एक लम्बी कविता-यात्रा की है और इस यात्रा में कवि सम-सामयिक प्रमुख काव्य-प्रवृतियों से प्रभावित हुए है । 'पथ के गीत' से 'जुलूस कहाँ जा रहा है' के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे छायावादी वैयक्तिकता काल्पनिक सौन्दर्य और प्रेम-विरह तथा प्रकृति-मोह से सतत मुक्त हुए है । डॉ. वेदप्रकाश अमिताभने लिखा है - 'रामदरश मिश्र की काव्य यात्रा प्रकृति राग से समाज सम्बध्धता की और उन्मुख है ।[१] कविने स्वीकार भी किया है कि 'मेरे अनुभवों के यात्रा अत्यन्त अंतरंग 'स्व' से लेकर बृहत्तर सामाजिक यथार्थ तक है, मन की एकान्त सौन्दर्य - प्रतीतियों से लेकर सामाजिक विघटन, मूल्य-मूढता और मानव-यातना की उद्विग्नताओं तक है, धूप की तरह एक फूल से लेकर आकाश के आन्दोलित विस्तार तक है ।'[२] इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि कवि विभिन्न काव्य प्रवृतियो को आत्मसात करके काव्य-रचना में प्रवृत हुआ है, किन्तु समाज सम्बध्धता का स्वर उसके काव्य में आरंभ से अन्त तक गुंजरित होता रहा है । अतः तुलनात्मक मूल्यांकन के लिए भिन्न-भिन्न काव्य-प्रवृतियों को आधार स्वरूप स्वीकार करना सर्वथा उपयुक्त जान पडता है । इस सन्दर्भ में किसी एक काव्य प्रवृति के आधार पर तुलनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत करना एकांगी दृष्टि का परिचायक होगा ।[३]

(२) सामयिक सन्दर्भो की दृश्य-योजना :

लम्बी कविताओं के विषय में काफी अरसे तक यह धारणा बनी रही कि उनका कथा आग्रही होना आवश्यक है और घटना, वृतान्त के बिना वे अग्रसर नहीं हो सकतीं । एक प्रकार से लम्बी कविताएँ 'नेरेटिव वर्स' की स्थानापन्न मानी जाने लगी । रोमानी कवियों ने कथा के आग्रह को कम किया और सपाटबयानी के स्थान पर भावनामयता को स्वीकारा । पर जब वे अमूर्तीकरण में उलझ गए तब नये कवियों को लम्बी कविताअदों के प्रयोग करते हुए, बिम्बों का अधिक सहारा लेना पडा । एक और वे सामाजिक यथार्थ को गहरे स्तर पर व्यंजित करना चाहते है, दूसरी ओर कोरे वक्तव्य उन्हे संतोष नहीं देते। नई कविता को, लम्बी कविताओं की रचना करते हुए कई स्तरों पर लडना झगडना पडा । सामाजिक यथार्थ की स्वीकृति, पर कथा आग्रहो से मुक्ति, अमूर्तीकरण से बचाव, पर जीवन से पाए गए बिम्बों का विधान, मनुष्य को उसकी समग्रता में पकडने की कोशिश, पर सामाजिक परिवेश की पृष्ठभूमि की स्वीकृति ।[४]

मुक्तिबोध ने इस भ्रांति को तोडा कि लम्बी कविताएँ या तो कथा परक हो सकती है या फिर आत्मालापी । गहराई में जाकर इतिहास की जमीन की पडताल, सामाजिक जटिलताओं की सही पहचान और यथार्थ को सार्थक बिम्बों में उभार सकने की क्षमता में मुक्तिबोध ने बहुतों को रास्ता दिखाया । रोमानी प्रवृतियों के विरोध में खडी नई कविता के लिए लम्बी कविता एक चुनौती भरा माध्यम है, क्योंकि यहाँ किस्सागोई के ढंग से अपनी बात कह सकने की सहुलियत नहीं है । एसे में जब रामदरश मिश्र की कविता 'फिर वही लोग' से गुजरता हूँ तो पहली बार में वह पूर तरह पकड में नहीं आती । इतना पता चलता है कि सामयिक जिन्दगी के कुछ टुकडे है, जो कवि की चेतना को उकसाते है और वह उन्हे दृश्यों में बांधना चाहता है ।

'लगता है -
आज फिर कुछ होगा
फिर किसी कुरसी के हिलते हुए पाये को
मजबुत करने के लिए
धूप का एक टुकडा वहाँ दफनाया जायेगा
फिर एक तिजोरी
अजगर की तरह मूँह फाड कर,
अँधेरे में लटकेगी....।'(५)

'फिर वही लोग' कविता में सडक जिन्दगी के टुकडो का साक्ष्य है । जिन्दगी में डूबते-उतराते एकमात्र चरित्र की तरह वह न जाने कब से देख रही है कि उस पर से आदमी नहीं, केवल जुलूस गुजरे है और यह सडक जीवित हो उठती है, क्योंकि अपनी जागृत दृष्टि और संवेदन के सहारे वह सब कुछ देखती है, सुनती है ! वह देखती है कि कुछ पेशेवर लोग बार-बार जुलूस में गुजरते है और इस जुलूस का मंशा है खुद को स्थापित करना जबकि बाकी स्थितियाँ अपनी जगह पर बदस्तूर कायम रह सकती है।

'यह सडक देख रही है कब से
कि उस पर से आदमी नहीं,
केवल जुलूस गुजरे है
चेहरे नहीं,
वरदियों और झण्डे गुजरे है
उसे पाँवों के दबाव में
कोई फर्क मससूस नहीं हुआ है
वह हैरत से देखती रही है

कि जनता की सेवा के लिए
वरदियाँ और झण्डे क्यों बदले जा रहे है....।'

जुलूस इस कविता में व्याप्ति के साथ इस्तेमाल हुआ है और वह राजनीतिक आशय तक सीमित नहीं है । किसी सामाजिक सदाशयता से प्रेरित न होकर ये तरह-तरह के जुलूस मुखौटो पर चलते है और नेतागीरी का शौक किसी भी क्षेत्र में हो सकता है, केवल राजनीति में नहीं । जुलूस को परिभाषित करने में कविता इस बात पर जोर देती नजर आती है कि भीड एक असंगठित समाज है, जिसका गलत इस्तेमाल इतिहास में कई बार हुआ है ।[६]

रामदरश मिश्र की कविता 'फिर वही लोग' अपने सामयिक संदर्भो से सीधा साक्षात्कार करना चाहती है और बहुतेरी बातें एक साथ कह देना चाहती है - संकेत से ही सही । कविता का आरंभ काफी मध्धिम है, जैसे :- नेपथ्य से आती हुई आवाज पर वह धीरे-धीरे गति पकडती है । सा।क इतिहास की गवाह जैसी है और उसने सामयिक संदर्भो को कई स्तर पर पहुँचाना चाहा है : कुछ जीवन दृश्य लोगों की प्रतिक्रियाएँ और सामयिक माहौल ! मसलनः लोगों का साझीदार बनकर चुप हो जाना, लायक बेटों द्वारा कितने ही अर्थो में बँटी धरती माँ, चुसे हुए शब्दों की एक विराट-सी झील आदि । सडक, जुलूस बराबर कवि की दृष्टि में है और उसी से जुडी हुई दीगर चीजें, जैसे : तरह-तरह के झंडे । पर इससे स्थिति की भयावहता कम नहीं हो जाती :-

''दिन, दहाडे उल्लू बोलते है, आदमी चुप है
खाइयों और गुफाओं में उजाला है
मैंदानों में अंधेरा धुप है -
बडे खेत छोटे खेतों को खा रहे है बीन-बीन
शरीर पर लुट रहे है देश
आत्मा बिक रही है वैसे की तीन.....।''[७]

कविता टुकडों में बोलती है और यहाँ जीवन की समग्रता को पकडने का उसकी मंशा भी नहीं है, पर कवि जिस एहसास को हम तक प्रक्षेपित करना चाहता है, उसकी इमानदारी से इनकार नहीं किया जा सकता । एक स्थिति है, जिसमें मानव-व्यक्तित्व जैसे अंतर्धान हो गया है, और वह एक अनियंत्रित भीड में भागा-दौडा चला जा रहा है, कई बार अनचाहे ही । इन जुलूसों को जुटाने वाले पेशेवर ठेकेदार जैसे अपने अपने झंडो का विरूदगान करते हुए सडक बुदबुदांकर रह जाती है, जुलूस के दबाव को न जाने कब से सहती आई है । यहीं यह सवाल उठता है कि क्या सडक तटस्थ दृष्टा भर है ? अपने संवेदन के सहारे वह चीजों को महसूस करती है, प्रतिक्रिया भी करती है, पर कहा जा सकता है कि वह बगावत नहीं कर पाती । पर यथार्थ

को उसकी दयनीयता में प्रस्तुत करके भी कई बार कवि एक ऐसा एहसास अपने पाठक में उपजाना चाहते है कि फिर फतवा देने की जरूरत न पडे । इसीलिए 'फिर वही लोग' शीर्षक जिन पेशेवर लोगों की ओर संकेत करता है, उनका जिन्दगी के दर्द से कोई गहरा नाता-रिश्ता नहीं है, जबकि सडक कही अधिक संवेदनशील है, बगावत वह न करे, यह बात दीगर है ।

सामयिक संदर्भो की टकराहट से उपजी रामदरश मिश्र की यह कविता केवल एक खाका प्रस्तुत करके खत्म नहीं हो जाना चाहती, वह हमसे एक एहसास भी करना चाहती है । कई बार वक्तव्य और उक्तियाँ प्रभावी मालूम पड सकती है, पर वे ऊपर-ऊपर छूकर निकल जाती है और एक प्रकार का छद्म उनमें देखा जा सकता है । जाहिर है कि ऐसी रचनाएँ किसी गहरे सरोकार से नहीं उपजतीं, बहिक ओढी हुई है ।[८]

रामदरश मिश्र दृश्य बनाकर जैसे तस्वीरों के जरिए अपनी बात कहना चाहते है, जिन्हें उन्होंने जीवन साक्षात्कार से पाया है । जनता की सेवा के लिए बेचैन लोग, भिखारी के कपडे-सा किसी के इन्तजार में बिछा एक पूरा का पूरा देश, साइनबोर्ड बन जानेवाले चेहरे, टुकडों में बंटी धरती, वीर रस की कविताएँ भूकते किराए के कवि जाज की धुन पर लडखडाता नंगा-प्यासा जंगल और टिवस्ट की धुन पर थिरकता भरतनाट्यम, अखबारों में छपा घायल सीमांत आदि एक पूरे दृश्य को बांधा गया है :-

'ऊँची-नीची पगडंडियाँ, कच्ची सडकें
(जो जुलूसो के खुरो से
और भी ऊबड-खाबड हो गई है)
ढोती है -
बीमार गाँव के कस्बे तक
लेकिन अपने में ही गिर-गिर पडती है
पक्की सडकें होती है -
शहर को शहर तक
और चौराहों पर जुलूस के कारण
घण्टों खडी रहती है
और काफी देर बाद
अस्पताल में लाकर पटक देती है
अधमर' शहर को
जहाँ ओपरेशन टेबल पर
पहले से ही कोई झण्डा लेटा होता है.....।'

और इसी कम में खिडकी से उदास झांकता हर कमरा बाहर निकलना चाहता है, सारा अस्पताल एक टेबिल के पास सिमट आता है और ऊँघते-ऊँघते 'जो कभी-कभी हडबडाकर जाग जाता है, मौत की एक चीख से ।' यहाँ कविता अपने इरादे में सफल होती है - भयावहता का एहसास जगाकर ![९]

कविता कुछ तस्वीरों, जीवनबिम्बों से निर्मित है और वास्तव में यही उसकी ताकत है । मुक्तिबोध की 'ब्रह्मराक्षस' कविता में 'परित्वक्त सूनी बावडी' के बिना दृश्य पूरा नहीं हो सकता, क्योंकि वह रचना का महत्व पूर्ण हिस्सा है । इसी प्रकार 'फिर वही लोग' में रामदरश बार-बार सडक, जुलूस, झंडे आदि की बात करते हैं क्योंकि इन्हीं के माध्यम से वे कविता को जीवन दृश्यों में बिंबित कर रहे है, सच्चाई यह है कि सामाजिक यथार्थ का विरोध करनेवालों ने जिस बिंबवाद को बीसवीं शती के संधिस्थल पर विकसित किया, वे मनोविश्लेषण में उलझ गए थे । इसीलिए उनकी रचनाएँ कई बार खुद से बातचीत करके खत्म हो गई और कविता में अधिक व्यापक जीवन का प्रवेश कराने का आग्रह करने वाली प्रतिभाओ ने बिंबो को सीधे जीवन से प्राप्त किया, यहाँ तक कि प्रचलित प्रतीकों को भी नया जीवन संदर्भ दिया ।

'फिर वही लोग' कविता बिंबो के टुकडों के सहारे चलती है और उसमें वे वक्तव्य भी खपा दिए गए है, जो किसी विवशता में लाये गए है । पर कुल मिलाकर कविता टुकडो में होकर भी, सामयिक भयावहता का संकेत करने में सफल हो जाती है - इन्हीं दृश्यों के सहारे उदास सडकें, बारूदी गंध, बुदबुदाती सडक, टूटे वंदनवार घायल आवाजे, संगमरमरी कमरे, प्लास्टिक के फूल, बीमार गाँव सब सामयिक संदर्भो की ओर इशारा करते है । इन तमाम टुकडों को जोडने के लिए कवि ने सडक के साक्ष्य और गुजरते हुए जुलूस को चुना है । दृश्यों के तेवर महीन वार करते है और यदि तेजी में भागने की भूल की जाए तो आशय हमारी पकड में नहीं आ सकेगा :-

''टूटे हुए पुल बह रहे है
और उनके ऊपर टुगी है नदियाँ
अपनी-अपनी जगह पर
शिशुओं को गाडकर
मुरदे बाहर आ गये है
धरती का संदेश देना
दरवाजे-दरवाजे न रहकर
कोई न कोई झंडा बन गए है ।''[१०]

अनुभूतियों के चयन की इस चर्चा के बाद कवि के काव्योपयुक्त मूर्तन के विषय में कुछ कहना चाहे, तो कविजनोचित संवेदनशीलता की पर्याप्त मात्रा डॉ. रामदरश मिश्र को मिली है । अनुभूति की सच्चाई को आग्रह रखने के कारण कुछ श्रेष्ठ कवियों

की भाँति वे भी काव्योपयुक्त चित्रात्मकता बराबर बनाये रहे है । विषयानुरूप कोमल, मधुर, विराट-विस्मयकारी और विद्रुप बीभत्स चित्रों का इस संग्रह में अभाव नहीं है । उदाहरणार्थ केवल तीन प्रतिनिधि चित्र देखे -

(क) भर रही अनगिनत रेखाएँ महकतीं

थकी वायु नहा रही है

(ख) भूमण्डल, खमण्डल

लट्टु की तरह नाचते है तुम्हारी हथेलियों पर

(ग) क्रोस पर टंगी है

सत्य, अहिंसा और न्याय की ऋचाएँ

''पहले चित्र में वायु के जल-विहार का सूक्ष्म सांकेतिक दृश्य प्रस्तुत किया गया है । खिती नहीं तो क्या हुआ महकती जल-रेखाएँ बता रही है कि कोई आवारा लडकी छिप कर नहा रही है, थकान मिटाने के लिए । कैसी होगी वह जिसके स्पर्श से लहरें महक उडी है । क्या ऐसे महकते चित्र मैले हो सकते है? जमाना कालिदास का हो या केशव का, पंत का हो या मिश्र का इन्हें तो 'ज्यों-ज्यों निहारिए नेरे है नैननि त्यों-त्यों खरी निकसे सी किाई ।'[११]

दूसरे चित्र में पृथ्वी और तारों का समय देवता की हथेलियों पर नाचना बडा व्यंजक है । समय देवता विराट ही नहीं मायावी भी है । तभी तो वह किसी नटखट की तरह एक नहीं, मायावी की तरह अनेक लट्टु एक साथ घुमा सकता है । मनुष्य ने तो उत्साह के अतिरेक में सिर्फ गर्वोक्ति की थी -

दो हथेली है कि

पृथ्वी गोल कर दें ?

इस कम्बख्त के लिए पृथ्वी ही नहीं, खमण्डल तक को गोल कर देना बायें हाथ का खेल है । कैसा विराट है यह समय देवता ?

''तीसरे चित्र में क्रुसिफिकेशन की ऐतिहासिक घटना का सहारा लेकर नैतिक मानों की सामूहिक हत्या व्यंजित की गई है । सामूहिक वध का यह प्रत्यक्ष दृश्य भी जुगुप्सा के स्थल पर सात्विक दर्द की अनुभूति करवाता है । बीभत्स का दंश क्रास और क्रासस्थों की पवित्रता से समाप्त हो गया है । 'ऋचाएँ' के प्रयोग से सत्य, अहिंसा और न्याय जैसे पवित्र मूल्यों को वैदिक प्रमाणिकता भी मिल गई है । 'सत्यमेव जयते नानृतम्' जैसी ऋचाओं के क्रुसिफिकेशन का यह यथार्थ चित्र जहाँ बलिदान को माहिमान्वित करता है वहाँ समन्वय का कोई सूक्ष्म संकेत भी शायद दे रहा है ।''[१२]

अस्तित्व के लिए चलने वाले संघर्ष में अनेक स्थितियाँ ऐसी भी होती है, जो मनुष्य को उसके परिवेश की जडता से बांध देती है । जीवन का दृश्य-पटल जितना

सीमित हो जाता है, उतनी ही सीमित बन जाती है हमारी अपनी दृष्टि । ऐसे में तथ्यों की अंतर्निहित संभावनाओं की पहचान मिट जाती है । कविता इस घेरेबंदी को तोडती है, वह जीवन के विराट अमूर्तन को बिंबो में ढालती है, अपनी सर्जनात्मक कल्पना के सहारे सच्चाईयों के अनपहचाने पहलूओं से नयी पहचान कराती है, यथार्थ का जो रूप हमार दृष्टि के बाहर था, उसे अनुभूतिगम्य बनाती है ।

सचमुच कवि एक ऐसे पडाव पर आ गया है, जहाँ पहुँचकर वह एक असमंजस में पड जाता है। एक अजीब प्रकार का संग्राम उसकी चेतना को आक्रांत किये रहता है । अपनी इस स्थिति और इस स्थिति के बारे में अपने अज्ञान पर अपनी स्वीकृति की मुहर लगाते हुए मिश्रजी कहते है –

यह कौन-सा रास्ता है ?
पता नहीं
हम कहाँ जा रहे है ?
पता नहीं
चलते-चलते किससे टकरा रहे है ?
पता नहीं
रो रहे है कि गा रहे है ?
पता नहीं ।[१३]

वस्तुतः मिश्रजी की यही मानवीय प्रतिबध्धता उन्हें आम आदमी की पीडा से जोडती है – खास तौर से उस आदमी की पीडा से जो स्वयं अपनी पीडा और उसके मूल स्त्रोतो से बेखकर है । ऐसे लोग मिलों, फैक्टरियों और खेतों-खदानों में ही काम करते हों, यह बात नहीं, वे हमारे बहुत करीब के लोग भी हो सकते है । लेकिन उनके संघर्ष, श्रम और आत्मत्याग से अक्सर हम बेखबर रहते है । उनमें से एक है वह और जो अपने घर-गृहस्थी के कार्यो में अकुंठ भाव से अपने आपको खपा देती है । मिश्रजी की कविता 'औरत' इस संग्रह की एक अत्यधिक महत्वपूर्ण कविता है । केवल इसलिए नहीं कि इसमें नारी के आत्मोत्सर्ग का सहानुभूतिपूर्ण अंकन है, बल्कि इसलिए कि कविता अपनी रचनात्मक उपलब्धियों में भी बेजोड है । पूर कविता जैसे अनेक वाद्ययंत्रो की अलग-अलग ध्वनियों को एक सामंजस्यपूर्ण लय में विन्यस्त कर देनेवाली 'सिफनी' है । कविता में कार्यरत नारी की अविश्रांत क्रियाशीलता के बीच या उसके समानांतर एक करूण अवसाद की ध्वनि भी सतत सुनायी देती है । उत्साहप्रेरक संघर्षपूर्ण दृश्य-चित्रों के बीच करूणा का यह औदास्य भाव नारी-जीवन का एक संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत करता है –

हर आदमी की फरमाइशों के साथ

पूरे घर में भागती फिरती हो
और फिर घूम फिरकर रसोई मे
आ जाती हो
दाल का बदकना
चावल का खदकना
बरतनों का खनखनाना
सब्जी का छनछनाना
यानी अन्नपूर्णा का एक सुगंधित साज
तुम्हारे हाथ से बजता रहता है ।

कवि जिस जीवन-संगीत की बात करता है, उसमें केवल वैविध्यपूर्ण लय-ध्वनियों का सामंजस्य ही नहीं है, जीवन की क्रियाशीलता और उसके बीच औरत की जीवन्त उपस्थिति का भी संकेत है ।[१४]

(३) वर्गहीन समाज की स्थापना :

आर्थिक आधार पर समाज तीन वर्गो में बंटा हुआ है - निम्न वर्ग, मध्य वर्ग और उच्च वर्ग । इन्हीं तीन वर्गो में समाज के सदस्यों को रखना कठिन हो जाता है, इसलिए दो वर्गो के मध्य स्थित व्यक्ति के लिए अलग वर्ग का निर्माण किया जाता है । साधन-सम्पन्न उच्चवर्ग शोषण प्रक्रिया के द्वारा विलासिता का जीवन जीता है और निम्न वर्ग जीवनावश्यक वस्तुओं के अभाव में अभिशप्त जीवन जीने के लिए विवश होता है । अमीर और गरीब की आर्थिक विषमता के कारण समाज की सामूहिक प्रगति अवरूध्ध हो जाती है । प्रगतिवादी दृष्टि के अनुसार सामुहिक प्रगति के बिना समाज की आंशिक प्रगति ही होती है । व्यापक प्रगति के उदेश्य से प्रगतिवाद पूंजीपतियों की व्यक्तिवादिता का विरोध करता है ।

प्रगतिवाद समाज की प्रगति के लिए वर्गविहीन समाज की संकल्पना करता है । प्रगतिशील चेतना के कवि का हृदय निम्नवर्ग की दयनीयता देखकर बेचैन हो उठता है । शोषितों की दयनीयता प्रायः सभी साहित्यकारों को प्रभावित करती है, लेकिन उन सभी को प्रगतिवादी साहित्यकार नहीं कहा जा सकता । प्रगतिवादी साहित्यकार मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित होता है । मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित साहित्यकार को ही प्रगतिवादी साहित्यकार की संज्ञा दी जा सकती है । ऐसा साहित्यकार सामाजिक विषमता के उन्मुलन के लिए मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के प्रति सहमति रखता है । प्रगतिवादी साहित्यकार की यह निश्चित मान्यता होती है कि वर्गहीन सुखी समाज की स्थापना वर्ग-संघर्ष के माध्यम से ही हो सकती है । इनके लिए निम्न वर्ग को संगठन के लिए प्रेरित करता है ।

आधुनिक युग में संगठित निम्न वर्ग समाज की एक प्रमुख शक्ति है । अपने अधिकारों के लिए वह आवाज उठाता है, यदि सरलता से वह अपना अधिकार प्राप्त नहीं कर पाता तो संघर्ष के लिए उध्धत होता है । प्रगतिवादी कवि उसकी इसी शक्ति ज्ञान को अपनी कविता के द्वारा व्यक्त करता है । अपने साहित्य में उनकी दयनीयता का बार-बार चित्रण करके उससे मुक्त होने के लिए उन्हें प्रेरित करता है । संक्षेप में हम कह सकते है - 'अर्थ का असमान वितरण ही समस्त सामाजिक व्षिमताओं का प्रमुख कारण है ।' अतएव उसके समान वितरण पर नियंत्रण रखना ही इनका राजनीतिक नारा है । यह दर्शन पूंजीवाद का विरोधी है । पूंजीवाद में जीवनावश्यक वस्तुओं के उत्पादन पर कुछ पूंजीपतियों का अधिकार स्थापित हो जाता है । इसी अर्थ-वैषम्य ने समाज को दो भागों में विभाजित कर दिया - शोषक और शोषित ।

वर्ग-वैषम्य की चरमावस्था में वर्गीय चेतना प्रादुर्भूत होती है । वर्ग-विहीन समाज की स्थापना समाजवाद का लक्ष्य है और यह लक्ष्य क्रांति के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है । क्रांति के लिए वर्ग-संघर्ष की तीव्रता पर उसने बल दिया है और साथ ही वर्ग संघर्ष की तीव्रता के लिए वर्ग-चेतना के जागरण पर भी । मार्क्स के अनुसार सर्वहारा वर्ग के लिए क्रांति करना आवश्यक है । मार्क्स का कथन है-'संसार के श्रमिकों, एक हो जाओ, क्योंकि तुम्हें अपनी गुलामी को छोडकर और कुछ नहीं खोना है।'

मिश्रजी की काव्य-रचनाओं में उपर्युक्त मार्क्सवादी दृष्टि सहज ही लक्षित की जा सकती है । वर्गहीन समाज की स्थापना के लिए कवि मिश्र उनकी दयनीयता का उल्लेख करते है, तो कहीं पर उनकी दयनीयता के लिए जिम्मेदार उच्च पूंजीपति वर्ग पर व्यंग्य करते है । डॉ. राजकुमार वर्मा के शब्दों में, 'रामदरश मिश्र के पिछले पच्चीस वर्षीय लेखन का एक विशिष्ट चरित्र कहा है । पूर्ण प्रतिबध्धता उनके लेखक में भले ही कमी न रही हो, लेकिन संघर्षरत तबक्कों के प्रति हार्दिक सहानुभूति का भाव हनकी प्रत्येक कृति में दिखलायी पडता है । मानवीय मूल्यों के प्रति भावात्मक प्रतिश्रुति ने रामदरश मिश्र की रचना-दृष्टि को हर जगह उस मानवीय विवेकशीलता से जोडा है और सामाजिक यथार्थ की द्वंद्वात्मक स्थितियों में बिना किसी अतिरिक्त आयास के शोषित वर्ग के प्रति अपनी सहानुभूति निर्धारित और व्यक्त करती चलती है ।'[१५]

पूंजीपतियों की शक्ति और साधन के सम्मुख निम्न वर्ग अपने को असफल पाता है । वह अपनी दयनीय स्थिति के कारण अपने अधिकार के लिए भी आवाज नहीं उठा पाता । यदि उठाता भी है तो उसे कुचल दिया जाता है । किन्तु कवि की धारणा है कि बार-बार पराजित होने पर भी उसे निराश नहीं होना चाहिए । यदि निराश होकर वह संघर्ष करना बन्द कर देगा तो शोषण, विषमता और मजदूरों का

और बढेगा । इसलिए हारकर भी उसे संधर्ष अधिकार प्राक्ति का रास्ता नहीं त्यागना चाहिए । यह विचार 'हस्ताक्षर' कविता में लक्षित किया जा सकता है –

'आओ
इस तट पर फिर हस्ताक्षर कर दें
मालूम है कि
इन्हें लहरें फिर बहा ले जाएँगी
लेकिन हम फिर करेंगे हस्ताक्षर
और एक दिन देखेंगे कि
लहरों में बेचैनी छायी है
उनका पेट फाड कर
उनके माथे पर
हमारे हस्ताक्षरों की जलती पंक्ति उग आयी है ।'[१६]

प्रगतिवाद समाज का वर्गीकरण जाति और धर्म के आधार पर नहीं करता । वर्गीकरण का उसके पास एक ही सुद्रढ आधार – अर्थ है । वह आर्थिक आधार पर उच्च–निम्न, अमीर–गरीब, पूंजी–मजदूर में बांट देता है –

'इस माँ को तो देखो
जो तुम्हें अन्न दे रही है, पानी दे रही है
अब तुम्हे लगेगा कि
तुम न हिन्दू हो, ना मुसलमान हो
न सिख हो, न ईसाई हो,
तुम सब एक ही दर्द जीते हुए
सगे भाई हो ।'[१७]

मार्क्स की अवधारणा है कि सामाजिक–आर्थिक विषमता ही अशांति के मूल में होती है । पूंजीपति वर्ग समाज पर एकाधिकार चाहता है । गरीब वर्ग को अपमानित जीवन के लिए विवश करता है । कवि मिश्रजी की दृष्टि इस ओर भी गई है – 'डर' कविता में उन्होंने स्पष्ट किया है कि गरीब अधिक समय तक अपमानित जीवन के प्रति विद्रोह कर देता है । उसके विद्रोह में बडी शक्ति होती है । इस शक्ति के आगे पूंजीपति वर्ग की एक भी नहीं चलती । इस डर से वह भी भयभीत रहता है । कविता की कुछ पंक्तियाँ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की जा रही है –

'आज एकाएक वह चौंक गया
एक नंगे आदमी की तनी हुई आँखें

उसे देखकर मुस्करा रही थीं
और कोई नुकीली चीज
उसके भीतर धँसती जा रही थी
उसने मुस्कराने की बहुत कोशिश की
लेकिन मुस्करा नहीं सका
आज उसे पहली बार डर लगा था ।'[१८]

इसी प्रकार पत्थर कविता में 'पत्थर' सर्वहारा वर्ग का ही प्रतीक है । अपनी शोषित जिन्दगी के प्रति सर्वहारा वर्ग का आक्रोश इस कविता में पत्थर के माध्यम से व्यक्त हुआ है । पक्की चिकनी सडके और उस पर सरसराती हुई मोटरें और उसमें बैठे हुए उच्चवर्गीय लोगों के लिए पत्थर को अपना बलिदान देना पडता है । वह अपनी दयनीय स्थिति को लेकर चिंतित है । उसकी चिन्ता का कारण सामाजिक वर्ग ही है –

'आखिर क्या हम कुटने के लिए ही बने है ?
कोई तो हमें प्यार से निहारता
और हमें फेंक कर
तहखानों के बडे-बडे तालों पर मारता
कोई तो हमें तनी हुई संगीतों से टकराता
और हमारी ताकत को आजमाता
कोई तो हमारे सिरों से बीच की दीवारें तोडता
और हमें हमारे अर्थ से जोडता
कोई तो..... आखिर हमें कब तक इन्तजार करना पडेगा ?'[१९]

वर्तमान व्यवस्था में बाहरी शक्ति का वातावरण दीखता है, लेकिन समाज की भीतरी जिन्दगी में घुटन-छटपटाहट और पीडा का माहौल है । शांति का झूठा नारा अर्थहीन लगता है । मीठे सपने झुठे साबित हो रहे है । यह भाव 'खाली हूँ मन भरा-भरा सा' में देख सकते है –

खाली हूँ मन भरा-भरा-सा
फूला फूला सा यह मौसम, किन्तु हवाएँ टूट गयी है
जाने किस पडाव पर फूलों की आवाजें छूट गयी है
दिशा-दिशा से हाथ मिलाती
लेकिन भीतर डरा-डरा-सा ।
शबनम को छूते डर लगता, फूट न पडे कहीं अंगारे
सपनों सें आँखें डरती है, सपनों के ही पंख पसारे ।

यह क्या हुआ समय को ?
भीतर सुखा, ऊपर हरा-हरा-सा ।[२०]

(४) शोषितों के प्रति सहानुभूति :

मानवीय मूल्यों के प्रति भावात्मक प्रतिश्रुति ने रामदरशजी की रचनादृष्टि को हर जगह उस मानवीय विवेकशीलता से जोडा है, जो सामाजिक यथार्थ की द्वंद्वात्मक स्थितियों में बिना किसी अतिरिक्त आयास के शोषित वर्ग के प्रति अपनी सहानुभूति निर्धारित और व्यक्त करती चलती है ।[२१]

देश की भूखी और नंगी जनता को उम्मीद है कि उसकी सरकार उसके लिए कुछ करेगी । वह बार-बार राजधानी की ओर मुंह उठाकर देखती है कि क्या उसके भले के लिए भी कुछ योजनाएँ तैयार हो रही है ? परन्तु उसे कुछ सुनाई नहीं देता । कवि ने 'लोग' कविता में गरीबों के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्ति करते हुए केन्द्र व राज्य सरकार के बेमेल संबंध की ओर संकेत किया -

'चीथडे लपटे भूखे नंगे लोग
हथेली की ओट देकर
कभी दिल्ली की ओर देखते है
कभी अपने शहर की ओर
और आपस में पूछते है
भाईयों,
इनकी आपसी बात-चीत में हमारा नाम क्यों सुनाई नहीं देता
बार-बार ।[२२]

आज का गरीब पेट की आग से त्रस्त है । उसे किसी भी प्रकार की सुविधा उपलब्ध नहीं है । पानी के लिए उसे मिलों से निकलने वाले गंदे पानी का सहारा लेना पडता है । सर ढंकने के लिए उसे आसमान के सिवा कुछ नहीं है । सरकार के झूठे और गरम वायदों को हवाओं के बीच आज की जनता झुलस रही है । यह भाव-बोध हम 'पंचभूत' कविता में देख सकते है -

'जी हुजूर
आपके राज्य मे
हमें जीने के लिए सब कुछ मिल गया है
पेट की आग है
मिलों के पिछवाडे से आता हुआ पानी है
आपके चौडे मुख की धोंकनी से फूटती
वायदों की गरम-गरम हवा है

और आकाश ?
अरे, सिर के ऊपर तो आकाश ही आकाश है
अब सिर्फ
पाँव टिकाने के लिए
एक गज जमीन की तलाश है ।'[२३]

कवि रामदरश मिश्र ने नागरिक जीवन के विभिन्न रूपों, विद्रुपताओं और असंगतियों को विस्तृत अभिव्यक्ति दी है । जिस प्रकार ग्राम जीवन की धुरी किसान है, उसी प्रकार मजदूर नागरिक जीवन का आधार है । आधुनिक नगरों का सारा ढांचा वास्तव में मजदूर की हड्डियों पर खडा है –

'जलती रही प्यास नित भू पर
पीता रहा कौन जल ऊपर
चहल-पहल से लदी-फदी जो
आयी थी बरात गयी
मिहनत के संग गाते रोते
हम तो रहे नरक में सोते
काला सुख बटोर कर ऊपर
एक सफेद जमात गयी ।'[२४]

लेकिन आधुनिक सभ्यता का मूलाधार यह मजदूर कैसी जिन्दगी बसर कर रहा है –

'हवाएँ साँस रोककर रास्तों में खडी है
समय रिस-रिस कर चू रहा है
बर्फ की विशाल चट्टान की तरह
पूरी बस्ती
जैसे सीलन भर दीवारों का एक बदबूदार लम्बा सिलसिला
प्लास्टर झड रहे है
और शरीर पर चींटियों की कतारें उतर आयी है
जगह-जगह कूडे सड रहे है
कुते उन पर लड रहे है ।'[२५]

अपने को समाज का रहनुमा घोषित करने वाले लोग सचमुच में आम जनता के दुःख-दर्द में सम्मिलित नहीं है, बल्कि जनता को दुःखी देखकर पर-पीडा सुख का अनुभव करते है । वास्तव में ये आम व्यक्ति के दुःख-दर्द की दुनिया को विस्तार देते है । कवि अपनी व्यंग्यपूर्ण अभिव्यक्ति में यही विचार व्यक्त करता है –

'हमारे लिए
समय नाम हो गया है एक खूंखार दहशत का
और तुम हमारे रक्षक आका
दुःख सुख जीवन मृत्यु
सबसे पर होकर
यह सब कुछ देखते हो
और मन ही मन कुछ हिसाब लगाते हो
लपटों और चीखों के साथ
अपने रिश्तों का
और हँस पडते हो एक अबूझ हँसी
इसी हँसी से हम और भी डर जाते है ।'

आज की व्यवस्था ऐसी है कि गरीब जनता को अपने परिश्र का फल भोगने का अवसर नहीं मिलता । उसके कठोर परिश्रम पर ऐश करने वाले दूसरे लोग ही होते है । यही भाव इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है -

'अलविदा दोस्तों,
उदास मत हो
हमारे हँसने की यही सजा है
हँसने के बाद हम अपने नहीं होते
हम होते केता - विक्रेता के
अब चिन्ता है तो केवल इतनी
कि हम आदमी के गले में पडते है
कि नेता के ।'[२७]

कवि मिश्र को मजदूरों के रहन-सहन का बडे निकट से अनुभव है । 'मकान' कविता में इस वर्ग की पीडा का यथार्थ चित्र है -

'हाँ, यह मेरा मकान है
सीमेंट, ईंट और रंग-रोगान से सजा हुआ
फर्श की जमीन की खुरदरी मिट्टी
चिकनी संगमरमर हँसी बन गयी है
दीवारों पर अब कोई लिपि नहीं ठहरती
हाँ, यह मेरा मकान है
जहाँ मैं यंत्रो के साथ

जागता हूँ, सोता हूँ
केवल अपने सुख से हँसता हूँ
अपने दुःख से रोता हूँ
मकान के पिछले आँगन मे
जमीन का एक छोटा-सा टुकडा छूट गया है -'
'गंदी जनता का क्या
वह तो जिन्दा होकर भी मरी हुई है
देखिए न
वह आपके शहर की होकर भी
आप के शहर के किसी पेड की छाँह में
डरी हुई है ।[२८]

कवि इस निष्कर्ष पर पहँच गया है कि जब तक देश में पूंजीपति और व्यापारी मौजूद है तब तक भारत माता के मंदिर में न्याय नहीं हो सकता क्योंकि नेतृत्व करनेवाले स्वयं भी अपने आदर्शो से फिसल रहे है । समाज की सेवा का नाटक करनेवाले नेताओं पर भी कवि की दृष्टि गयी है और उन पर उसने तीखा प्रहार किया है -

'बहुरूपी संत
तब तुम राजाओं के दरबार में
ताम झाम लगाते थे
रेशम की पगडी बाँधते थे-वजीरे आलम थे न
आज नई सत्ताओं के पुरोहित हो
शुत श्वेत वस्त्र पहने हुए ।[२९]

चलन की अधिकांश कविताओं की तरह समय और भूगोल के कटाव-बिंदु पर प्राप्त आज की विपन्न जिन्दगी की जटिलताओं में अपने को नंगे पाँव उतारने या उनकी दुखती रगों का साक्षी होने से ये कविताएँ भी कतरा सकती थी या किसी चमचमाते सरलीकरण की छल-छाया द्वारा स्थितियों को शब्दों के कुहरे से ढंक सकती थीं । बशर्ते कि इनका कवि भी अपनी 'घडी में पश्चिम का समय देखकर देश के समय का एलान' करने का फैशन अपना लेता किन्तु उसे भारतीय वक्त के तकाजे मालूम है और मानवीयता का निस्संकोच पक्षघर होने के कारण मालूम है हर हथेली पर सौंपी गयी लाचार जिंन्दगी की तीखी सच्चाईयों और उनके प्रति एक सजग कलाकार की वैयक्तिक सामाजिक-जिम्मेदारियाँ भी । यही कारण है कि संग्रह की 'होने, न होने के बीच', 'समय-जल-सा' तथा 'मेरा आकाश' जैसे तीन खंडों के बँटी इन कविताओं

की साँस और संवेदना में न सिर्फ महानगरीय जिन्दगी की 'सफरिंग्स' को झेलनेवाले इंसानो की साँस और तडप है, बल्कि उस समूची भारतीय जिन्दगी की मार्मिकता है, जो खेतों में फावडों के निकट है और कारखानों में कर्म-व्यस्त, सडकों पर बेरोजगार घूम रही है और मेज पर अपनी कलम के साथ किसी दुर्निवार भय को समर्पित ।

'मैं हूँ -
वह नहीं जो हूँ
वह, जो मुझे पहना दिया गया है
कीलें ठोंक-ठोंक कर
और यह पहनाया गया मैं भी
किसी दूसरे के शरीर का है
कहीं से ढीला
कहीं से अंगो को कसता हुआ
स्वयं दरकता हुआ'

.....

'पक गई है धूप
नभ का बन्द स्वर छितरा गया है,
चुग रहे दाने पखेरू
राह पर भटका बटोही गा गया है,
सोचती है खेत में फसलें खडी-सी
हाय, कटने का समय अब आ गया है'

.....

'अब सहा जाता नहीं है कहीं भी ठहराव
समय जल-सा
जहाँ से पकडो वहीं से टूट जाता है
हाथ में आया न आया
रेशमी रूमाल-सा पल छूट जाता है
भटकती फिरती हवा में
छूट तट से नाव ।'

.....

'हरे-भरे मौसम
कुछ देर पेडों पर ठहरते है
फिर कैलेण्डर की फाडी गयी तारीखों की तरह

सडकों पर लुढकते फिरते है
नीचे मेनहोल में
एक बच्चे की लाश सडती रहती है
कविता की पंक्तियाँ गुनगुनाती हुई
एक आवारा ऋतु घूमती है
और आफिसों से लौटती फाइलें
आपस में देख-देख मुस्कराती है
कारे, स्कूटरे, बसें निकल जाती है
उसकी ध्वनियाँ कुचलती हुई ।'

'कहा जाय कि ऐसी तमाम स्थितियों की अन्तर्यात्रा पर एक ओर यदि समाज के व्यापक छोरों से कवि की आत्मीयता और लगाव का परिचय देती है, वहीं दूसरी ओर आंतरिक स्तर पर 'कानों के पास मक्खी की तरह भिनभिनाती लोगों की उदासीनता', 'घडी का स्पंदन भोगती आँखों में चमकते रेडियम की जलन', 'जड चेहरों पर रेखाएँ न उभार पानेवाला बच्चों का लौटता उदास मुँह', 'खाँसते फूटपाथों को अपने में लपेटते चले जाते हुए अंधे पहिए' तथा 'पूरा का पूरा जलता हुआ जंगल', 'मुझमें से गुजरने लगता है' आदि का करूण अहसास - इन कविताओं को 'संवेदनातमक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदना' - से जोडकर समाज में मानवीय जडों को टटोलकर अपनी सृजनशीलता को संयुक्त करने का साहस प्रदान करता है ।[३०]

(५) नारी-मुक्ति की भावना :

'इसलिए मैं ज्योंति का वरदान देता सा धरा को
बाँह में तूफान की दिन रात जलता जा रहा हूँ
उठ रही हैं आँधियाँ, वीरान हैं पथ की जवानी
जल रही है धूल केवल, खो गई पद की निशानी
अग्नि-क्षण में मैं अकेला साँस जलती, प्राण हारे,
देखता हूँ बन्द होना चाहती गति की कहानी
'सोचता हूँ -
तुमने क्या किया जिन्दगी भर
गृहस्थी के जुए में जुतने के सिवाय
पति कागज कलम लेकर
बडे-बडे संवेदनों और मूल्यों की
रचना करते रहे
और खुद बडा बनते रहे

बच्चे खिलते - महकते रहे
नये-नये क्षितिजों की ओर
उनके चरण बढते रहे
और तुम
चरखे की तरह घर के भीतर चलती रही...'

नारी की परवशता तथा दुर्दशा पर भी प्रायः सभी प्रगतिवादी कवियों की दृष्टि गई है और उन्होंने उसकी मुक्त के गान गाये है ।

नारी की स्थिति भारतीय समाज में अत्यन्त दयनीय रही है । प्रगतिवादी कवि मिश्रजी इसकी दयनीयता के प्रति चिंतित दीखते है । इनकी दृष्टि में प्रत्येक तरह के शोषण का विरोध होना चाहिए । 'कब तक' कविता में उन्होंने नारि को शोषण से मुक्त होने के लिए उनकी दयनीयता का चित्रण किया है ।

'तुम्हारी एक आँख में पत्थर है, एक में पानी
एक हाथ में लुकाठी है एक में फूलदानी
एक ओर बहू है, एक ओर बेटी
एक ओर से छीनती हो
दूसरी ओर सरका देती हो दहेज की पेटी
एक ओर ना हो, एक ओर हाँ
एक ओर सास हो, एक ओर माँ
एक दिन रूलाती हो
एक दिन रोती हो
एक दिन छीनती हो
एक दिन खोती हो'

कवि ने नारी का जो वर्णन किया है, उससे स्पष्ट है कि वह नारी को आगे लाना चाहता है । उसे पर्दे की रानी बनाकर नहीं रखना चाहता, बल्कि समाज का एक सक्रिय अंग बनाना उसका घ्येय रहा है । मिश्रजी की नारी आदर्श गृहिणी है, आदर्श माँ है, आदर्श आदर्श समाज-सेविका है । वात्सल्य और क्रांति का अभूतपूर्व मिश्रण ही उसका चरित्र है ।

(६) शोषण का विरोध :

रामदरशजी स्वभाव से मृदु होने के कारण विरोध की मृदुता से पीडित है, अन्याय को अन्याय कहने में भी नहीं हिचकिचाते, लेकिन विरोध को शालीन बनाये रखने के लिए संस्कारवश अभिशप्त है । उनकी कविता की यही शालीन संस्कारशीलता उनकी

निजता है, जो उन्हें दोनों खेमों से उखाड फेकती है ।[३१] उनकी कलम को यह मंजूर नहीं है कि शालीनता अपनी भद्रता में प्रशस्तिपत्र लिखने लग जाए, इसलिए सरकण्डे की कलम से लिखना मंजूर करते हैं, जो विरोधपत्र लिखती है और यह भी मंजूर नहीं कि विरोध बदतमीज और बहतहजीव हो जाए –

'हमारे हाथ में सोने की नहीं
सरकण्डे की कलम है ।
सरकंडे की कलम
खूबसूरत नहीं, सही लिखती है ।
प्रशस्तिपत्र नहीं लिखती है
हर कठघरे में खडे है, खडे रहेंगे
और कठघरे में खडे हर उठे हुए हाथ को
अपने हाथ में ले लेंगे
राजा कौरव हों या पांडव –
हम तो सदा बनवास ही झेलेंगे ।'[३२]

कनैयालाल नन्दन की धारणा पूर्णतया सत्य नहीं है । मिश्रजी की अनेक कविताएँ आलोचक के इस विचार को झूठा सिद्ध करती है । 'आग' कविता में कवि वर्गीय विषमता का तीव्र विरोध करते हुए सरकारी व्यवस्था पर तीखा प्रहार करता है । भिन्न वर्ग की बस्तियाँ जल रही है । सरकारी व्यवस्था झूठी संवेदना व्यक्त करने के लिए जलती औरतों की नंगी तस्वीरें खींचता है और शीघ्र ही सहायता करने का आश्वासन देता है । जलती बस्ती को देखकर जाने के बाद सरकारी व्यवस्था निष्क्रिय ही रहती है । कवि उन पर व्यंग्य करते हुए लिखते है –

'कहाँ हो तुम ?
तुम तो हमारी आग पर
अपनी ठंडी हथेली सेंककर चले गये
और हम जलकर
धीरे-धीरे ठंडी राख बनते जा रह हैं
सुना है तुम
इलाज ढूँढने से पहले
आग लगाने वाले ढूँढ रहे हो
पता नहीं
सजा देने के लिए
या

मुबारकबाद देने के लिए ।'[३३]

'व्यवस्था विसंगति, मानवीय विपत्ति से जुडे हुए जो मुद्दें मिश्रजी की कविता में बार-बार उठते हैं, उनमें वर्ग-शोषम्य, युद्धजनित हिंसा, अपनी जमीन से कटकर आयातित बोध की ओर झुकाव, अंग्रेजियत और राजनीतिक गिरावट मुख्य है । मिश्रजी ने इन अन्तर्विरोधों और गलत मूल्यों का जबर्दस्त विरोध किया है ।'[३४]

स्वतंत्र होकर स्वतंत्र होने की छटपटाहट में हमारी विसंगतियों की ओर कवि का गहरा संकेत है । हमारे समाज का नक्शा यह बन गया है कि यहाँ दूध तो क्या, पानी भी मिलना मुश्किल हो गया है । पानी के लिए घंटों नल पर लाइन लगानी पडती है । कवि ने इन विसंगतियों पर अपना गहरा विरोध प्रकट किया है -

'सुबह होते-होते
गायों के थन सूख जाते हैं
कोई नहीं जानता
कि रातों-रात दूध कहाँ चला जाता है
नलों पर खाली घडे
लाइन में घंटों ऊँघते है
कोई नहीं जानता
कि पानी कहाँ रूक जाता है ।'[३५]

निस्संदेह देश की सामाजिक अवस्थाओं का ज्यों-का-त्यों प्रतिबिम्ब मिश्रजी की कविताओं से मिलता है । सचमुच में आज सत्य और अहिंसा बदल गयी है । निहत्थे युवकों का खून बहाया जा रहा है । तरूण शक्ति का यह ह्रास और निम्नवर्ग की तबाही देख कवि अति वेदना से भर उठा है, कानून आज मृत हो गया है । उसकी आत्मा पर नहीं, उसके निर्जीव शव पर प्रजातंत्र का आधार टिका हुआ है -

'तुम्हारे सांप्रदायिक दंगों में
मारे गये हैं राह चलते वे अजनबी
सुबह को जाना और शाम को लौटना
जिनके लिए एक विकल मजदूरी थी
अपराधी तो मज्जा पाती कीडों की तरह
मांस का एक हबोट्टा मारकर
अंधी गलियों में बंद हो जाते रहे हैं
जलती आँखों से घूरते हुए
और अट्टहास करते रहे हैं ।'[३६]

आज के नेता वास्तव में अभिनेता हैं । उनकी कार्यशैली आग लगाकर फिर

बुझाने जैसी है । वे आम जनता को गुमराह करते हैं । वे जनता को झूठे आश्वासनों का रस घूंट पिलाकर शांत करना चाहते है । उनका छद्मवेशीय रूप बहुत दर्दनाक और घृणा योग्य है –

'वह भागता हुआ आया
और जलते झोंपडों की ओर देखते लगा
लगा जैसे सारी लपटें
अपने चेहरे में खींच रहा है
देखते-देखते
उसकी आँखें पिघला हुआ आसमान बन गई
उसे घेर कर जले हुए लोग चिल्ला रहे थे
और उसके हाथ
आश्वासन की मुद्रा में उठे थे..... ।'[३७]

मानव और मानवता के विरोधी चरित्र से कवि का विरोध प्रकट होता है । जीवन के लिए लडी गयी कोई भी लडाई मृत्यु और विनाश का कारण नहीं बनती । लेकिन जीवन को कुचलने के प्रयास के खिलाफ अस्मिता का संघर्ष तो उठेगा –

'कोई जितनी ही तेजी से कुचलता है
वह उतना ही ऊँचे उठती है
और दूर तक पीछा करती है मधुमक्खियों की तरह
हमसे तो अच्छी यह धूल ही है न
जो हर दमन का प्रतिरोध करती है ।'[३८]

(७) बदलाव की चेतना :

मार्क्स के अनुसार क्रांति तभी संभव होती है, जब निम्नवर्ग अपने अधिकार प्राप्ति के लिए संघटित होता है । मार्क्स की धारणा है कि क्रांति निम्नवर्ग के द्वारा ही हो सकती है और इसके लिए उसे मध्यवर्ग की सहायता की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए । 'गलियाँ और सडकें' कविता में गलियाँ सर्वहारा वर्ग का ही प्रतीक है । वे अभिशप्त जीवन जीने के लिए विवश है । उनका अस्तित्व खतरे में है, किन्तु विडम्बना यह है कि उनका अस्तित्व बहुत दिनों से है और रहेगा, जिससे कि सडकें, ऊँचे मकानों अर्थात् उच्चवर्ग को रास्ता मिलता रहे । कवि ने इन बिखरी हुई गलियों के माध्यम से सर्वहारा वर्ग को संगठित होने का आह्वान किया है –

'चिकनी सडक
साँप-सी फिसलती चली जाती है
सब के बीच से, सब से असम्पृक्त

और छोटी-छोटी अने सडकें बन
बडे-बडे चमकते दरवाजों में समा जाती हैं
एक गली..... दो गली.....
गलियाँ ही गलियाँ.....
जब-जब इन्हें देखता हूँ
मैं अपने को बेहद दुखने लगता हूँ
और मेरी एक आवाज
(जो किसी तक पहुँचे बिना ही
गुब्बारे-सी फट जाती है)
पूछती है :
कब तक ये गलियाँ
अलग-अलग बँटी हुई
ऐसे ही सहती रहेंगी
होने की पीडा ।'[३९]

यह भी दिन बीत गया
पता नहीं जीवन का यह घडा
एक बूँद भरा या कि एक बूँद रीत गया

उठा कहीं, गिरा कहीं, पाया, कुछ खो दिया
बँधा कहीं, खुला कहीं, हँसा कहीं, रो दिया
पता नहीं इन घडियों का हिया
आँसू बन ढलका या कल का बन गीत गया ।'

इसी प्रकार 'पता नहीं' कविता में कवि ने स्पष्ट लिखा है कि उच्चवर्गीय व्यवहार से सर्वहारा पीडित और त्रस्त रहता है । वह आक्रोश से घुटता रहता है । उसके मन में विध्वंसकारी प्रतिक्रियाएँ जन्म लेती है, लेकिन संगठन और शक्ति के अभाव में वे निष्क्रिय सिद्ध होती है । कवि ने उनके मन के आक्रोश के संदर्भ में संगठित क्रांति की ओर संकेत किया है -

'दोस्तो, बहुत अँधेरा है
ऐसे कब तक चलते रहेंगे ?
धुआँ फेकते हुए
अलग-अलग कब तक जलते रहेंगे ?
आओ अपनी-अपनी आँच को जोडकर

एक बडी-सी मशाल तो जला लें
हाँ, बहुत अँधेरा हैं दोस्तों ।'[४०]

कवि ने प्रगतिवादियों के खोखले क्रांतिकारों के विचारों पर उपहास ही किया है । उसे लगता है कि उन्होंने प्रगतिचेतना को एक सुविधा पूर्वक दिया गया । निष्क्रिय उद्‌बोधन समझ लिया है -

'हथेलियों पर सूर्य लिये
मैं दिनकर रोशनी का सैलाब काँटता रहा
शहरों के चौराहों पर
शब्दों के तूफान से
सन्नाटे का जंगल काटता रहा
मैं अपनी साँस-साँस से
कंगूरों को तोड देने वाली
आँधियाँ उगलता रहा
मेरी आँखों में समय का समुद्र
और मुट्ठियों में ज्वालामुखी पलता रहा ।'[४१]

'उन्होंने समझाया
तुम्हें मशाल जलानी है
जब मशालों में एकता का तेल
ऊर्जा की आग
और संकल्प की बाती होती है
तो वे कभी नहीं बुझती
घर हो या बाहर
मशाल जलती रहनी चाहिए
मशाल अंधकार के खिलाफ एक लडाई है
और लडाई चलती रहनी चाहिए ।'[४२]

(८) 'संबंध' और 'सही' का पक्षघर काव्य-विवेक :

'मुझे तो यह सूरज सोने नहीं देता
कितनी बार चाहा कि
कन्धे पर से पटक दूँ इस सूरज को
लेकिन हर बार लगा कि यह सूरज ऊपर से
बैठा नहीं है

कन्धे पर उगा है मेरे भीतर से
और मैं इसे नहीं कहीं अपने को ही
लगातार ढो रहा हूँ ।'

रामदरश मिश्र के अनुभव की यह एक खास पहचान है, जो उनके कृतित्व में आरंभ से अब तक लगातार किसी-न-किसी रूप में उपस्थित है । यह सम्बन्ध-चेतना, प्रबल मानवीय वस्तु है, जो उनके काव्य-विवेक का निर्माण करती है । इस चेतना की जडें बहुत गहरी होती हैं, जो जीवन और व्यक्तित्व के स्थानान्तरण की सुविधा नहीं देती । यह एक खास देश और काल में होने की विवशता है, जो कई तरह के प्रलोभनों से कवि को बचाती है । आज के चालीस-पचास साल पहले के कवियों के लिए सार्वभौमिक और सर्वकालिक होने का प्रलोभन काफी आकर्षित करता रहा है, जिसके चलते ये दार्शनिक ऊँचाइयों में प्रवेश करते चले गये । आज के कवियों को यह प्रलोभन तो नहीं आकृष्ट करता, लेकिन उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय होने की आकांक्षा जरूर बहुत सताती है । इसमें उन्हें दो तात्कालिक लाभ होते है । एक तो बडी सुविधा से मानव-यातना की बडी और गंभीर वस्तु उन्हें मिल जाती है । दूसरे वे अन्तर्राष्ट्रीय बौद्धिक दौड में शामिल हो जाते हैं । मिश्रजी की कविता में अक्सर इस अन्तर्राष्ट्रीय वस्तु और बौद्धिकता के प्रति असमंजस मिलता है । यह असमंजस उनकी आन्तरिक सर्जनात्मक विवशता है, जिसके लिए पिछडे होने और कम गंभीर होने के आरोप और उपेक्षा भी उन्होंने कम नहीं सही है ।

'मैं गमले का फूल तो नहीं
कि एक सुरक्षित कमरे से दूसरे कमरे में रख दिया जाऊँ
मैं तो एक पेड हूँ एक खास जमीन में उगा हुआ
आँधियाँ आती हैं
लूएँ चलती हैं
ओले गिरते हैं
पेड हहराता है, काँपता है
डालियाँ और फल-फूल टूटते हैं
लेकिन वह हर बार अपने में लौट आता है ।'[४३]

यह 'हर बार अपने में लौट आना' और 'कन्धे पर सूरज को ढोना' क्या उस तरह है, जैसे कोयल गाती है, फूल खिलते हैं यानी सहज प्रकृति जैसी मानवीय क्रिया है या कोई ऐतिहासिक जरूरत और जिम्मेदारी के बोध से होने वाली चेतन घटना ? अगर वह सहज प्रकृति जैसी क्रिया है तो कवि छद्म अन्तर्राष्ट्रीयता से बचकर भी एक दूसरे छद्म का शिकार हो सकता है - जिजीविषा के अनवरत संघर्ष के प्रति

अगाध श्रद्धा और विश्वास के रोमानी रूझान का । लेकिन इससे बचने का भी प्रमाण मिश्रजी की कविता में मिलता है –

'कोयल से मैंने कहा – गाओ,
कुछ सन्नाटा कटे
वह चुप रही
मैंने कहा – मेरे पास आओ
कुछ सन्नाटा कटे
वह डाल पर बैठी रही
मैंने कहा – अच्छा सुनो मैं ही गाता हूँ
उसने सहमी निगाहों से चारों ओर देखा –
और एकाएक उड गयी..... ।'[४४]

इस कविता का शीर्षक 'वसन्त' है । वसन्त में कोयल का गाना सहज है । लेकिन कुछ प्रबल सन्दर्भ ऐसे भी होते हैं, जो जीवज की सहज क्रिया और स्वभाव को अपदस्थ कर सकते है । कोयल का सहमी निगाहों से चारों ओर देखना परिवेशगत स्थितियों का जायजा लेना है, जो गाने की उसकी सहज क्रिया को अवरूद्ध कर देता है । यह सहज चेतना नहीं, परिवेश से उभरने वाली एक अतिरिक्त चेतना है, जो विशेष परिस्थिति में सहज ही आतंकप्रद और त्रासद भूमिका की पहचान कराती है । ऐसी आतंकप्रद और त्रासद स्थिति में भी अगर 'कन्धे पर सूरज को ढोना' और 'हर बार अपने में लौट आना' कवि को अनिवार्य लगता है, तो वह परिवेशगत स्थिति के प्रति सचेत होते हुए उसके खतरे उठाने का जिम्मेदार और बौद्धिक निर्णय होगा । तब 'सूरज को ढोना' और 'हर बार अपने में लौट आना' सहज चेतन क्रिया नहीं, इतिहास–चेतन क्रिया होगी । यहाँ एक विवादास्पद प्रश्न उठाया जा सकता है कि मानवीय वस्तु मनुष्य की सहज चेतन क्रियाओं में निहित है या इतिहास–चेतन क्रियाओं में ?[४५]

आस्था और विश्वास अपने–आप में मानवीय वस्तु के विरोधी नहीं हैं । उनकी अव्याख्येयता और परिस्थिति निरपेक्षता उन्हें विरोध में खडा कर देती है । ऐतिहासिक चेतना से निष्पन्न और प्रमाणित आस्था और विश्वास व्याख्येय और परिस्थिति सापेक्ष होते है । उस आस्था और विश्वास में परिवेश यानी ऐतिहासिक स्थिति और ऐतिहासिक चेतना का द्वन्द्व बराबर बना रहता है । इस द्वन्द्व में ही मानवीय वस्तु की उद्‌भावना, पहचान और रक्षा होती है । ऊपर वर्तमान साहित्य में मानवीय वस्तु के ह्रास को परिलक्षित किया जा रहा है, तो उसका कारण यह नहीं कि विज्ञान और प्रविधि तथा विकसित भौतिक स्थितियों ने आदमियत छीन ली है । उसने हमारी पुरानी सम्बन्ध धारणा को अयोग्य जरूर कर दिया है और उसे योग्य बनाना उनका काम

नहीं है । यह तो ऐतिहासिक चेतना का काम है कि वह परिस्थिति के अनुरूप नयी सम्बन्ध व्यवस्था कायम करे । इसलिए आज जीवन साहित्य में मानवीय वस्तु के ह्रास का बडा और मुख्य कारण ऐतिहासिक चेतना का अभाव है ।[४६]

तो क्या, मिश्रजी की कविता में मानवीय वस्तु का निर्माण परिस्थिति और ऐतिहासिक चेतना के द्वन्द्व से हुआ है ? एकदम 'हाँ' कहना तो निश्चय ही अतिवादी वक्तव्य होगा । लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उनकी कविताओं में इस संभावना के पर्याप्त प्रमाण है । यह भी कि ये प्रमाण हमारे बहुत कम कवियों में मिलते हैं । खास कर निषेधवादी और आज की विकृत स्थितियों के प्रति तीव्र आवेगात्मक, शहीदाना रूख अख्तियार करने वाले कवियों तथा मानवीय यातना को नियति मानकर उसका दार्शनिकीकरण करने वाले कवियों जिनकी जमात काफी बडी है, में तो बिल्कुल नहीं मिलते : वे स्थिति तक ही सीमित हैं या अगर स्थिति का अतिक्रमण करते हैं तो व्यक्तिगत स्तर का विद्रोह या आयातित निगतिशील दर्शन के चक्कर में अधिक गंभीर बन जाते हैं और दोनों ही हालतों में ठोस ऐतिहासिक सन्दर्भ और संघर्ष की वास्तविक समस्या उनके हाथ से छूट जाती है । मिश्रजी इन दोनों तरह के कवियों की वास्तविकता पहचानते हैं । 'यही होना था एक दिन' कविता में –

''भीड से ऊब कर
अपने में डूब कर
वह नदी के एकान्त किनारे पर जा बैठा
और ऊब मिटाने के लिए पानी में ढेले फेंकने लगा
उसे एकाएक लगा कि उसने पानी से विद्रोह कर दिया है
वह अपनी सूझ पर चमत्कृत हो उठा
विद्रोह..... विद्रोह..... विद्रोह..... उसके भीतर बजने लगा ।''

और फिर वह कमरे में बन्द होकर विद्रोही कविता लिखता है । उसी में वियतनाम का मुक्तियुद्ध लडता है । वह समझने लगता है उसकी बर्राहट से किसान-मजदूर सपने गढने लगे हैं, उसके सिगरेट के धुएँ से शासकों की कुर्सियाँ हिलने लगी है और अन्ततः उसकी और उस जैसे लोगों की मंशा हर व्यवस्था पहचान लेती है –

''दस्ते ने मुस्कारा कर इन्हें देखा था
पहचान लिया था
कि इनकी तनी हुई मुट्ठियों में संधि-पत्र बन्द है
और आग और झाग के नीचे शराब बह रही है ।''

एक अन्तर्राष्ट्रीयतावादी चिन्तक जी का हाल है –

''काफी हाउस में तीन घंटे तक झाडते रहे
मृत्यु-बोध का अरूमानी विदेशी फलसफा प्यारेलाल
चौराहा पार करने लगे तो
आँखों में घँस गया एक रंगीन देशी माल
चीखती हुई बस आ कर रूकी तो जागे
ड्राइवर की एक बूट-सी गाली खा कर भागे
रात भर ईश्वर को धन्यवाद देते रहे
कि आज वे बच गये बाल-बाल ।''[४७]

यह अन्तर्राष्ट्रीयता क्या हमारी बौद्धिक संस्कृति के लिए घातक और उपहासास्पद स्थिति नहीं पैदा करती ? दूसरी ओर देशी सांस्कृतिक एकता के नाम पर –

'यह दिल्ली है ।
यहाँ भी रास्ता काट जाती एक बिल्ली है ।
यहाँ भी पत्रा देखकर जनवादी घोषणाओं की शुरूआत होती है ।
यहाँ भी बडे-बडे सरकारी चौपाल हैं, जहाँ
दिनभर केवल बात होती हैं ।
यहाँ भी खादी के नीचे कोकशास्त्र ।
और टेरेलिन के नीचे हनुमान चालीसा होती है ।
ओ मेरे महान देश ।
शहर से गाँव तक, सिर से पाँव तक ।
तुम्हारी कितनी बडी सांस्कृतिक एकता है ।''[४८]

आधुनिकता और देशी परम्परा का यह कितना सुंदर सांस्कृतिक समन्वय है । ग्रह-दशा के विचार के बाद चुनाव के निर्णय और लग्न शोधकर प्रधानमंत्री पद की शपथ लेने वाले हमारे देश में आधुनिकता और परम्परा का क्या द्वन्द्व चल सकता है ? इसमें वैज्ञानिक ऐतिहासिक चेतना के विकास की कौन-सी संभावना है ? एक क्षण आधुनिक और दूसरे क्षण पुरातन पन्थी होने वाला, घोषणाओं में आधुनिक और आचरण संस्कारबद्ध जकडा हुआ हमारे देश का शासक और भद्र वर्ग कैसे जान सकता है कि आधुनिकता और संस्कार की लडाई कितनी कठोर और यंत्रणाप्रद होती है ? ऐसे लोगों के स्वीकार और अस्वीकार का विवेक कुंठित हो जाता है । बल्कि ऐसे सवाल और उन सवालों के पूछने वालों को खतरनाक और देशद्रोही घोषित कर दिया जाता । ये सारे समाज और संस्कृति को अन्तर्विरोधों का लुंज-पुंज गट्ठर बना देते है । मिश्रजी का कवि अपने कवि कर्म के बीच ही सबसे पहले इस अन्तर्विरोध का

साक्षात्कार करता है –

'मैंने क्यों नहीं स्वीकार किया कि
कोई मेरे लिए कपडा बुनता है
कोई छाँहें चुनता है
कोई अन्न उपजाता है
कोई कागज और कलम गढता है
कोई समुद्र में उतरता है
कोई पहाड पर चढता है
और मैं ?
सिर्फ कागज गोंजता हूँ और अस्वीकार करता हूँ
और जब-जब मैं अपने से प्रश्न करता हूँ
तब-तब लौट आता हूँ तुम्हारे पास मेरे देश
आज फिर लौट आया हूँ ।''[४९]

हमारी बौद्धिक क्रिया क्यों बांझ और निषेधकारक है ? क्योंकि हम ठोस स्थितियों और संदर्भों में जीने के स्थान पर हर तरह के अमूर्तनों में जीने लगे है, जो सब कुछ को नाम-रूपहीन बनाकर सम्बन्धों को खा जाते हैं । हम विविधता की धारणा खो देते है, जो तथ्यों और परिणामों के पीछे के जटिल सन्दर्भों में वास्तविकता को खोजती है । वास्तविकता तथ्य और परिणाम निर्भर नहीं, सन्दर्भ निर्भर है । समान तथ्य और समान परिणाम होते हुए भी सन्दर्भ-भेद से वास्तविकता के स्वरूप में भेद होता है । उद्धृत कविता इन सन्दर्भों को पकडती है । जिनमें जीवन को मूर्त रूप देने की संभावना है, जिससे जीवित और निर्जीव, अपना और पराया, वास्तविक और पाखंड का विवेक पैदा होता है, जो कवि के पक्ष और विपक्ष की भूमिका तय करता है । इसी से निर्ममता और सहानुभूति के सृजनशील उपयोग की योग्यता मिलती है । रामदरश मिश्र की कविताओं में तथाकथित अन्तर्राष्ट्रीयवादी फिलसफाना अन्दाज, अमूर्त और व्यक्तिगत विद्रोह के प्रति क्यों निर्मम व्यंग्य और उपहास मिलता है ? और क्यों नदी, पेड-पहाड, खेत-खलिहान, बुनकर, किसान के प्रति स्पष्ट सहानुभूति और ममता मिलती है ? 'कुछ भी फर्क नहीं पडता' वाली मुद्राओं की कविता क्यों इस संकलन में नहीं है ? इसीलिए कि सही सन्दर्भ और संघर्ष के सही पक्ष के प्रति सम्पृक्ति और सक्रियता में फर्क पडता है, परिवर्तन की संभावना चरितार्थ होती है और ठोस मानवीय वस्तु की उद्भावना होती है । मेरा ख्याल है कि परिस्थितियों और ऐतिहासिक चेतना के द्वन्द्व के बिना इन बातों की संभावना नहीं उभरती । इसी कारण –

'देखता हूँ खाली कन्धों को

अपनी ही धुरी पर उछलते-कूदते
हँसते खिलखिलाते
दिनके साथ सौदा करते रात के साथ सो जाते -
कितने सुखी हैं ये कन्धे !''[५०]

इस सुविधाजनक बांझ सुख के प्रति कवि के मन में कोई ललक नहीं । वह निर्ममतापूर्वक इस सुख को अस्वीकार करता है और जो सूरज उसे सोने नहीं देता, बेचैन बनाता है, जलाता है, यंत्रणाप्रद है, किन्तु बांझ नहीं, मानवीय वस्तु के प्रति संभावना गर्भ है उसे बडी सहानुभूति और आन्तरिक ममता से स्वीकार करता है ।

इसी स्वीकार के कारण सही और खूबसूरत को फिर से पहचानने की जरूरत पडती है -

'हमारे हाथ में
सोने की नहीं
सडकण्डे की कलम है
सरकंडे की कलम
खूबसूरत नहीं, सही लिखती है ।
प्रशस्तिपत्र नहीं लिखती है
हर कठघरे में खडे है, खडे रहेंगे
और कठघरे में खडे हर उठे हुए हाथ को
अपने हाथ में ले लेंगे
राजा कौरव हों या पांडव -
हम तो सदा बनवास ही झेलेंगे ।'[३२]

कविता में जब खूबसूरत और सही के बीच काफी दूरी पैदा हो गई हो तभी किसी कवि को ऐसा कहने की जरूरत महसूस हो सकती है । कविता के पिछले इतिहास में कई दौर ऐसे देखे जा सकते हैं, जब खूबसूरत और सही के बीच काफी फासला पैदा हुआ और सही ने खूबसूरती की धारणा का निषेध तो नहीं किया, लेकिन उसे बदल जरूर दिया । आज तक ऐसा देखा-सुना नहीं गया कि खूबसूरत ने सही को बदल दिया हो । खूबसूरती सही को ढँक-तो सकती है, बहका सकती है या सही को अधिक बदलने की ताकत उसमें नहीं है । खूबसूरती अपने बने रहने के लिए सही पर निर्भर है लेकिन सही अपेक्षाकृत स्वावलंबी है । इसीलिए कला-रचनाओं के लिए जीवन की सच्चाइयों का मुखापेक्षी होना अनिवार्य है जबकि जीवन के लिए उसकी ही अनिवार्यता कभी नहीं रही ।

यह पहचानना कि कविता में खूबसूरत और सही के बीच में काफी फाँसला हो

गया है, कवि कई मुश्किलों में डाल देता है । उसे ऐसी आवाजें सुनाई पडने लगती हैं, ऐसे दृश्य और ऐसे लोग दिखाई पडने लगते हैं, जो कविता लिखना दूभर कर देते है और उसे अगर कविता लिखना है तो इन सभी के सन्दर्भ में अपने मनुष्य होने को नये सिरे से परिभाषित करना पडेगा । उसे कवि होने के लिए सही मनुष्य को पहचानना और उसका साथ देना अनिवार्य शर्त होगी । जाहिर है इतने से वह कवि नहीं हो जायेगा, यह तो उसके कवि होने की शर्त और वस्तु है, गुण नहीं । गुण वस्तु में होता है । गुण से वस्तु और वस्तु से गुण को पहचाना जाता है । लेकिन जब यह पारस्परिकता लुप्त हो जाती है, तब कविता में सुन्दर और सही की दूरी बहुत बढ जाती है । इस प्रकार जब रामदरशजी यह लिखते हैं कि –

'सरकण्डे की कलम ।
खूबसूरत नहीं सही लिखती है ।'[५२]

तब ये वस्तु और गुण के बीच की पारस्परिक्ता के लुप्त होने को रेखांकित करते हैं । साथ ही वे उस कलम की भी जाँच करते हैं, जो इस सच को लिख सकती है । सोने की कलम सजावटी है और वह कवि को मुश्किल के समय धोखा दे सकती है । केदारनाथ सिंह की एक कविता है 'शब्द' जिसमें उन्होंने लिखा है कि संकट में पडे लहू-लुहान हुए उनके कवि को अक्सर कुरूप और गंवई शब्दों ने ऐन मौके पर बचाया है, थाम कर खडा किया है ।

तो पहली बात तो यह है कि तमाम स्थितियों और वस्तुओं में आज का कवि घिरा हुआ है, उनमें उन स्थितियों और वस्तुओं का चुनाव करना है, जो काव्यवस्तु के रूप में अधिक संभावनार्मित है । मिश्रजी की कविताओं में यह चुनाव बहुत स्पष्ट और पक्षधर हैं –

'चीथडे लपेटे भूखे नंगे लोग
हथेली की ओट देकर
कभी दिल्ली की ओर देखते हैं
कभी अपने शहर की ओर
और आपस में पूछते हैं
भाइयों,
इनकी आपसी बात-चीत में
हमारा नाम क्यों सुनाई दे रहा है
बार-बार''[५३]

भूखे-नंगे लोगों के इस सवाल को दिल्ली और उनके शहर के लोग नहीं सुनते । वे सिर्फ उनका नाम लेते हैं, उनके सवाल नहीं सुनते । उनके पास सिर्फ जबान है

और ताकत है, आँख कान नहीं । ये सिर्फ लोग हैं बिना जबान और ताकत के । ऐसे लोगों के इस भोले सवाल को कवि सुनता है । उसका कवि होना इस बात पर निर्भर करता है कि इस सवाल के साथ आज के आदमी का सही होना जुडा है या नहीं ? जो कवि और रचनाकार अपनी रचनात्मकता की परिभाषा इस प्रकार की स्थितियों और सवालों से करता है, उसके विषय में अक्सर विचक्षण कवि और आलोचक एक विशेष बात कहते हैं । यहाँ मैं श्री विजयदेव नारायण साही को उद्धृत करना चाहती हूँ, जिन्होंने प्रेमचन्द पर लिखते हुए कहा है कि प्रेमचन्द लोगों की समस्याएँ (People's Problem) उठाते हैं । आदमी की समस्या (Man's Problem) नहीं । क्या आदमी की समस्या लोगों की समस्याओं से बिल्कुल अलग करके हल की जा सकती है ? उनके कहने का तात्पर्य यह है कि आदमी की सत्ता मौलिक और आधारभूत होती है और जिन ऐतिहासिक सामाजिक शक्तियों के बीच वह रहता है, केवल उनसे टकराते रहने से आदमी की मौलिक समस्याओं का सामना नहीं किया जा सकता । यहाँ तो मैं सिर्फ इतना कहना चाहती हूँ कि रामदरश मिश्र की कविताओं का आदमी मौलिक नहीं है, वह ऐतिहासिक-सामाजिक परिस्थितियों से निर्मित और उन्हें बदलते हुए विकसित होने वाला है । मौलिक मनुष्य का तो साक्षात्कार होता है, उसमें बदलाव और विकास नहीं होता । मौलिक मनुष्य की समस्याएँ स्व विषयान्वेषी हैं, जबकि ऐतिहासिक-सामाजिक मनुष्य प्रसंगों, सम्बन्धों-अन्तर्सम्बन्धों की समस्याओं का संघात होता है । सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक परिस्थितियों और शक्तियों से घिरे हुए आदमी के इतने चित्र मिश्रजी की कविताओं में हैं कि उन्हें उद्धृत करके प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं ।[५४]

अपरिचित, डर, दहशत और आतंक इधर की जिन्दगी का कटु यथार्थ है । मिश्रजी ने 'दिन एक नदी बन गया' में इस यथार्थ की बडी गहरी अनुभूति को कई कविताओं में चित्रित किया है । कवि को क्या यह तय नहीं करना है कि इन स्थितियों का सामना करने वाले लोगों के बीच उसे होना है या उन्हें पैदा करने वाले लोगों और शक्तियों के साथ । डर, दहशत और आतंक एक ही चीज से पैदा होते है और वह है अपरिचय । परिचय और अपरिचय का स्पष्ट प्रसंग 'सडक' शीर्षक कविता में है ।

''कब से
सडक पडी रही निरीह-सी
कीचड से लथपथ.....
उसे रौंदती हुई कारें
निकल जाती रहीं
कीचड उछालती दूसरों पर''[५५]

अपने गाँव के दायरे से बाहर एक आदमी को सडक ले जाती है । देशभर में

धुमाती है । उसे लगता है कि उसका गाँव ही उसके भीतर फैलकर देश हो गया है । लेकिन अन्त में जब सडक ने उसे एक जगमगाते कोलाहल के सामने ले जाकर खडा कर दिया तो वह भौंचक हो गया । महानगर और उसके गाँव या गाँव वाले उसके देश में इतना ज्यादा फर्क है कि अपरिचय के अतिरिक्त और कुछ का सामना करना जल्दी संभव ही नहीं । वह सडक अन्त में एक बहुत बडी इमारत में समा गयी । वह इमारत विशाल और आतंककारी है । वह आदमी थककर उस सडक के इन्तजार में डरा हुआ बैठा है । 'राजधानी एक्सप्रेस' में राजधानी एक्सप्रेस –

'उन तमाम स्टेशनों को निर्ममता से कुचलती हुई ।
जहाँ छोटी-छोटी देहाती गठरियाँ
अपने अनन्त सुख-दुःख बाँधे हुए
किसी देशी गाडी के इन्तजार में पडी होती है ।'[५६]

उन्हें लाँघते उनके बीच दहशत बोती हुई अपने में बन्द देश की फिजा में नहीं रही है । 'वह इमारत और राजधानी एक्सप्रेस, दोनों एक ही चीज है । दोनों विकास और वैभव की वस्तु है । पिछडेपन और विकास तथा गरीबी और अमीरी में इतना अधिक अन्तर है कि दोनों के बीच कोई अनुपात ही नहीं है । दोनों तरफ की दुनियाएँ एक-दूसरे से एकदम अलग-अलग हो गयी हैं । इस अलगाव में ही अपरिचय, डर और आतंक पैदा हुए है ।' अक्सर रामदरश मिश्र की कविताओं पर इस बात का आरोप लगाया जाता है कि वे गाँव का नास्टेल्जिया के स्तर तक पकडे हुए हैं । लेकिन इसमें तो ऐसा लगता है कि मिश्रजी गाँव और शहर के पिछडेपन और विकास को भारतीय जीवन के एक भयंकर अन्तर्विरोध के रूप में चित्रित करते है । गाँव एकदम देशी होकर रह गये हैं और शहर कास्मोपोलिटन हो गये हैं । मसलन दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, लंदन, टोकियो, न्यूयार्क से बहुत मिलते-जुलते है और अपने ही देश के गाँवों और लोगों से कट गये हैं । यहाँ मिश्रजी गाँव को कास्मोपालिटनिज्म के विरोध में खडा करते है । केवल इतना ही कहा जा रहा है कि यदि विकास कार्य और महानगरों का विस्तार, वैभव और सुविधा सम्पन्नता हिन्दुस्तान की राष्ट्रीयता और सामाजिक परिप्रेक्ष्य को भुलाकर केवल अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में चलाये और बनाये जायेंगे तो अपरिचय और आतंक ही फैलेगा । मिश्रजी को गाँव पर बल देना इसलिए जरूरी नहीं लगता कि वहाँ के लोग अच्छे-भले होते हैं, बल्कि इसलिए कि राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य की प्रस्तावना करने की योग्यता अभी तक गाँवों में ही है ।[५७]

राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य को भुलाकर अन्तर्राष्ट्रीय बिरादरी में शामिल होने वाला आदमी नकली आदमी होता है । लोहिया ने ऐसे आदमियों के बारे में लिखा था कि वे बिना विद्रोही हुए उदार और बिना समानता के एक जैसा होना चाहते हैं । ऐसे आदमियों के ही खिलाफ गाँव और गाँव के आदमी को मिश्रजी भी खडा करते हैं –

''दृष्टियाँ असीम होने के लिए
क्षितिजों के महासागर पर भटकती रही
भटकती रहीं.....
और एक दिन खुद ही अपने से पूछने लगीं.....
कहाँ है महासागर
यहाँ तो महज एक धुन्ध है खालीपन का ।
आज कितने समय बाद
उन्होंने अपने को अपने आसपास झुकाया
तो देखा
दर्द की नीली गहराइयों वाले
आँखों के अनन्त छोटे-छोटे सरोवर चमक रहे हैं
इनमें से किसी में डूबी
तो डूबती ही चली गयी
सरोवर से सरोवर तक
और उन्हें लगा कि
पूरी दुनिया एक माला बन गयी है सरोवरों की
और वे भीतर-ही-भीतर
महासागर बनती जा रही हैं ।''५८

इस कविता में कास्मोपालिटन और सार्वभौम का स्पष्ट विवेक निहित है । मिश्रजी की कविता का मनुष्य सार्वभौम तो है, लेकिन कास्मोपालिटन का विरोधी है । सार्वभौम सम्बन्धों और अन्तर्सम्बन्धों से निर्मित तथा विकसित एक ठोस धारणा है, वह कास्मोपालिटन के एक जैसे पन की तरह अमूर्त, भीतर से खाली और सतही नहीं है । ऐसे अमूर्त आदमी के कई रूप हैं - वह समाज से लडे बिना सुरक्षित रूप से विद्रोही हो सकता हैं, मानव जीवन में आर्थिक शक्तियों की भूमिका को नकारकर अरबपति होता है और जनता की ओर से संघर्ष करने की लम्बी प्रक्रिया में से गुजरे बिना नेता ही नहीं, बडा नेता बन सकता है । इस अमूर्त आदमी का रास्ता बडा चिकना और हरा-भरा है । लेकिन रामदरशजी की कविता का आदमी इस रास्ते को इन्कार करता है -

''यह रास्ता चिकना था, हरा-भरा था
लेकिन अपना नहीं था
इसलिए जब-जब इस पर पाँव रखा
फिसल कर गिर पडा ।

अपना रास्ता बीहड है, सुनसान है
तपाता है, हैरान करता है
लेकिन वह गिराता नहीं
खडा करता है
बाहर-बाहर घिसता है
भीतर-भीतर बडा करता है ।''[५९]

इस रास्ते पर चलने वाला आदमी हमेशा उस अकेलेपन की खोज में होता है, जहाँ खडे होकर वह सम्बन्धों में होने को महसूस कर सकता है । उसका अकेलापन सम्बन्धों में होने के लिए है, सम्बन्धों का निषेध करने के लिए नहीं -

''मैं ऊँची इमारतों के इस शहर में
एक छोटा-सा मकान खोज रहा हूँ
भीड से बचकर अकेले में
अपने को देखने की एक अतृप्त इच्छा
कब से ढो रहा हूँ ।''

''मेरे सामने की सडक पर
रेत डाल गया है रेत व्यापारी
मैं गेट पर खडा इस चिन्ता में मरा जा रहा हूँ कि
कल आँधी आएगी
तो यह रेत मेरे घर में समा जाएगी
सहसा देखता हूँ
मेरे बच्चे खुश होकर रेत पर खेल रहे हैं
और उसमें घर बना रहे हें ।''

''मुझे एक मकान चाहिए
जिसकी छोटी-सी क्यारी में
एक नन्हा-सा बिरवा रोप सकूँ
जो केवल अपना हो
जिसकी छत के नीचे लेटूँ
तो सदियों से जगी मेरी आँखों में भी
एक निजी सपना हो
मैं एक छोटा-सा मकान खोज रहा हूँ
ऊँची इमारतों वाले इस शहर में ।''[६०]

ऊँची इमारतों के शहर में एक छोटा-सा मकान खोजने वाला आदमी असल में अपना घर खोजना चाहता है । अगर उसे अकेले में अपने अकेलेपन को खोजना हो तो मकान की क्या जरूरत, वह पाँच सितारा होटल में किराये के कमरे में अधिक अच्छी तरह अपने अकेलेपन में गर्क हो सकता है । असल में रामदरश मिश्र की जो आदमी की धारणा है, वह व्यक्ति और समाज की समाकलित धारणा है, जो घर में ही अपने को पा सकता है । उनका आदमी, निजी व्यक्तिता और सार्वजनिकता का समीकरण नहीं है । होटल के कमरे में रहने वाला आदमी अपनी इच्छानुसार निजी व्यक्तिता और सार्वजनिक व्यापारों में अलग-अलग जी सकता है । लेकिन घर में रहने वाला आदमी नितान्त निजी व्यक्तिता और सार्वजनिकता के दो अलग क्षेत्रों में रह ही नहीं सकता है । निजी व्यक्तिता और सार्वजनिकता की सीमाएँ कानून और राज्य से परिभाषित होती हैं, लेकिन व्यक्ति और समाज की सीमाएँ कभी पूरी तरह कानून और राज्य से परिभाषित नहीं होतीं । वे एक-दूसरे को प्रभावित, परिवर्तित और विकसित करते रहने के कारण कानून और राज्य को ही परिभाषित और परिवर्तित करने की संभावना लिये होती है । इस तरह का आदमी अक्सर खतरनाक सपने देखता है । वे सपने उसकी अन्तर्वर्ती चित्तधारा को समृद्ध करते हैं । वे सपने चाहे उसे कितना भी बाहर कर दें या मौत ही क्यों न दे दें, उन्हें कानूनन सामाजिक अपराध ही क्यों न घोषित कर दिया जाय, वह उन्हें देखेगा -

''हाय, लोकराम बे मौत मर गया
कमबख्त
तुझे किस ने कहा था कि
फुटपाथ पर सोकर एक बडा-सा सपना देख
जानता नहीं था कि
यह एक सामाजिक अपराध है ।''

लोकराम का सपना उसके मरने के बाद लोगों के बीच फैलकर लोहे की शक्ल में ढलने लगा । कहने की जरूरत नहीं कि यह आदमी विद्रोही होने के साथ ही अपनी पहचान पा सकता है ।[६१]

(९) निष्कर्ष :

समग्रतः कहा जा सकता है कि मिश्रजी का अपना विशिष्ट काव्य-व्यक्तित्व है । कवि चाहे निजी राग-बोध को व्यक्त करते हो, चाहे सामाजिक जीवन चेतना को, चाहे नागरिक जीवन की यांत्रिक यातना और अकेलेपन को स्वर दे रहा हो, चाहे लोकजीवन की सामूहिक गति को - सर्वत्र संवेदना की प्रधानता रहती है । अनुभवों की सूक्ष्म-छायाओं और विराट गतियों - दोनों की सही अभिव्यक्ति की आकुलता से

जुडे रहने के कारण इनके प्रयोग सर्वत्र अपनी रचनात्मक सार्थकता बनाये रखते हैं साथ ही जीवन की विराटता की रचना कवि के सजग समय बोध से संचालित होती है और उसके अनुभव-व्यक्तित्व से भी प्रेरित होती है ।[६२]

अध्याय - ५
संदर्भ सूची

१) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीरसिंह चौहान पृ. १२१
२) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीरसिंह चौहान पृ. ७०
३) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीरसिंह चौहान पृ. ७२
४) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीरसिंह चौहान पृ. ७३
५) वही, पृ. ७३
६) वही, पृ. ७४
७) कवि रामदरश मिश्र : सं. डॉ. नवनीत गोस्वामी पृ. ७५
८) कवि रामदरश मिश्र : सं. डॉ. नवनीत गोस्वामी पृ. ७७
९) वही, पृ. ७८
१०) कवि रामदरश मिश्र : डॉ. महावीरसिंह चौहान पृ. ७९
११) वही, पृ. ८०
१२) वही, पृ. ८१
१३) कन्हैया लाल नन्दन : दिनमान, २१-२७ अक्तूबर १९८४ पृ. ४५
१४) कंधे पर सूरज : 'पत्थर', पृ. ७०
१५) कंधे पर सूरज : 'साक्षात्कार', पृ. १५
१६) जुलूस कहाँ जा रहा है : 'हस्ताक्षर', पृ. ६७
१७) जुलूस कहाँ जा रहा है : 'माँ के वास्ते', पृ. ५८
१८) जुलूस कहाँ जा रहा है : 'माँ के वास्ते', पृ. ५९
१९) जुलूस कहाँ जा रहा है, पृ. २७
२०) जुलूस कहाँ जा रहा है : 'बरसात गयी', पृ. ३७
२१) जुलूस कहाँ जा रहा है : 'बादल', पृ. ६५
२२) जुलूस कहाँ जा रहा है : 'हँसी से हम और भी डर जाते है', पृ. २९
२३) जुलूस कहाँ जा रहा है : 'पुल : पाँच कविताएँ', पृ. ३०
२४) जुलूस कहाँ जा रहा है : 'अभिनेता', पृ. २८
२५) जुलूस कहाँ जा रहा है : 'पता नहीं', पृ. ३६
२६) जुलूस कहाँ जा रहा है : 'रोशनी', पृ. २६
२७) जुलूस कहाँ जा रहा है : 'मशाल', पृ. ५०
२८) दिन एक नदी बन गया : 'लोग', पृ. ३४
२९) दिन एक नदी बन गया : 'पंचभूत', पृ. ३५

३०) दिन एक नदी बन गया : पृ. १३
३१) दिन एक नदी बन गया : 'आग', पृ. २२
३२) दिन एक नदी बन गया : 'धूल', पृ. २३
३३) दिन एक नदी बन गया : 'सडक', पृ. ४६३
३४) दिन एक नदी बन गया : 'राजधानी एक्सप्रेस', पृ. ५२७
३५) दिन एक नदी बन गया : 'मकान : चार कविताएँ', पृ. ४६६
३६) वही, पृ. ४८३
३७) पथ के गीत, पृ. १२१
३८) पथ के गीत, पृ. ८७
३९) पक गई है धूप, पृ. ९२
४०) पक गई है धूप, पृ. ९३
४१) पक गई है धूप : 'समय देवता', पृ. ८९
४२) पक गई है धूप : 'गलियाँ और सडकें', पृ. १८
४३) बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ, पृ. १३२
४४) वही, पृ. १३२
४५) वही, पृ. १२६
४६) वही, पृ. १३६
४७) बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ, पृ. १२४
४८) वही, पृ. २१
४९) बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ, पृ. १११
५०) वही, पृ. १२३
५१) रामदरश मिश्र : पक गई है धूप, भूमिका, पृ. २५
५२) रामदरश मिश्र : दिन एक नदी बन गया, पृ. २
५३) रामदरश मिश्र : रचनावली : 'कंधे पर सूरज', पृ. ३७३
५४) रामदरश मिश्र : रचनावली : 'वसन्त', पृ. ४२९
५५) रामदरश मिश्र : रचनावली : 'कंधे पर सूरज', पृ. ३७५
५६) वही, पृ. ७७
५७) रामदरश मिश्र : व्यक्तित्व और कृतित्व, ले. डॉ. फूल बदन यादव, पृ. १९९
५८) डॉ. राजकुमार शर्मा : कविता की रचना यात्रा, पृ. १४२
५९) डॉ. राजकुमार शर्मा : कविता की रचना यात्रा, पृ. १४२
६०) डॉ. विजेन्द्र : उत्कर्ष, पृ. ८
६१) डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ : अंचल भारती, अक्तूबर १९८३, पृ. २०
६२) डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ : अंचल भारती, अक्तूबर १९८३, पृ. २३

उपसंहार

उपसंहार

'रामदरश मिश्र का काव्य : अनुभूति और अभिव्यक्ति' शीर्षक शोध-प्रबंध-लेखन के क्रम में प्राप्त तथ्यों का तटस्थता से विश्लेषण एवं मूल्यांकन करने पर, मेरे समक्ष निश्चय ही कतिपय नये क्षितिजों का उद्‌घाटन हुआ है । कतिपय निष्कर्षात्मक तथ्य भी सामने आये है, जिनके परिप्रेक्ष्य में मैं प्रस्तुत विषय से संदर्भित अपनी परिकल्पना को निर्णयपरक ठोस आधारों पर अवस्थित होते हुए भी देख सकी हूँ । अतएव मैं शोध-प्रबंध में उद्‌घाटित नये तथ्यों का उपसंहार, प्राप्त निष्कर्षो और निर्णयात्मक स्थितियों का ब्योरा प्रस्तुत करना भी उचित मानती हूँ । डॉ. विजयमोहन शर्मा के शब्दों में - ''शोध समीक्षा नहीं है, पर उसमें समीक्षा का अंश रहता है । जब तथ्यों का विश्लेषण किया जाता है, तब उनका मूल्यांकन भी किया जाता है ।..... शोध में तटस्थता की अनिवार्यता होती है, समीक्षा में तटस्थता अनिवार्य नहीं होती ।''

अंततः कहा जा सकता है कि रामदरश मिश्रजी का साहित्य सर्जन विपुल है । मिश्रजी के सभी काव्य उच्चकोटि के है । उन सभी में नारी-जीवन से संबंधित परिस्थितियों का चित्रण, प्रकृति का मार्मिक एवं रोचक चित्रण, राजनीतिक परिस्थितियों का जीवंत चित्रण, सामाजिक-धार्मिक एवं आर्थिक दृष्टि से भी यथार्थ चित्रण हमें मिश्रजी के कविता संग्रहों में देखने को मिलता है । साथ-ही-साथ भाषा, व्यंग्य, शैली, प्रतीक, बिम्ब, शब्द और छंदों का चित्रण मिश्रजी की कविताओं में जगह-जगह पर देखने को मिलता है । मिश्रजी ने अपनी रचनाओं में ज्यादातर बिम्ब और प्रतीकों के माध्यम से रोचक शैली का प्रतिपादन किया है ।

हिन्दी साहित्य की प्रायः सभी प्रमुख विधाओं की प्रवृत्तियों और कृत्तियों की पहचान करती है । वह अपनी शक्ति पर साहित्य की सही समझ उभारती है । न वह विचारों, भावों और शब्दों के जाल में उलझती हैं न उलझाती है, वह निर्भीक भाव से सभी परिस्थितियों से टकराती है और उनके तथा पाठक के बीच पुल बनाना चाहती है ।

रामदरश मिश्रजी की कविताओं में मानवीय जीवन की विसंगतियाँ, नारी जीवन की समस्याएँ, लोगों की विडम्बनाएँ, वर्ग संघर्ष आदि अनेक परिस्थितियों का यथार्थ परक चित्रांकन हमें देखने को मिलता है ।

छायावादी कविता की जडों को विदेश में माननेवाले कुछ लोग अब भी बचे है । उसी तरह नयी कविता की जडों की तलाश विदेशों में करनेवालों की भी कमी नहीं है । छायावादी कविता में कल्पना की विविध छवियों और उस काव्य की प्रगतिशील चेतना की पहचान बहुत सावधानी के साथ की गयी है । कविताओं की सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना की पहचान के साथ शहरी-जीवन का प्रभाव भी स्पष्ट देखा जा सकता है ।

जिस प्रकार प्रगतिशील आन्दोलन ने साहित्यकारों को किसानों, मजदूरों और संघर्षरत वर्ग की समस्याओं पर विचार करने के लिए विवश किया । इस आन्दोलन से प्रेरित साहित्यकारों ने आध्यात्मिकता, आदर्शवादिता, वैयक्तिकता, काल्पनिक सौन्दर्य से मुक्त होकर जन सामान्य की समस्याओं पर दृष्टिपात किया । डॉ. नामवरसिंह के अनुसार - 'प्रगतिशील आंदोलन ने ही रामदरश मिश्र को लेखक और कवि बनाया । रामदरश मिश्र की रचनाओं में कई जगह पर स्वस्थ प्रगतिशील दृष्टि का संपूर्ण निर्वाह दिखाया गया है ।'[१]

ग्राम जीवन के दुःखों के प्रति संवेदना का प्रसार मिश्रजी की कविताओं में गहरा होता जा रहा है । मिश्रजी जीवन के सुख-दुःखात्मपूर्ण क्षणों में भी अपना संतुलन बनाये रखते है । प्रेम की उल्लासमय अनुभूतियों, भावनाओं और विचारों में उन्हें प्रेरणा मिली है और अपनी निजी व्यथा-कथा को सामाजिक व्यथा से एकाकार करने में सफलता मिली है । मिश्रजी ने अपने जीवन में जिये हुए प्रसंगों का सफलतापूर्वक चित्रण किया है । इसका कारण यह है कि कवि का मानसिक रचना संस्कार सामाजिक संस्कार के साथ मेल खाता है । उनके निजी जीवन का कोई भी बडा-छोटा प्रसंग भी सामाजिक जीवन के बृहत्तर सुख-दुःख से सहज भाव से जुड जाता है ।

मिश्रजी की कविताओं में शोषण से युक्त मनुष्य के विभिन्न चित्र ही नहीं है, बल्कि उस शोषण के विरोध में उभरती हुई आवाज का आक्रोश भी है । कवि पीडित मनुष्य में उसकी भीतरी शक्ति का बोध पैदा करता है तथा संघर्ष के लिए आत्मविश्वास जगाता है । मिश्रजी उच्चवर्ग के प्रति घृणा और निम्नवर्ग के प्रति सहानुभूति प्रगट करते है । उनकी कविताओं में ग्रामीण और शहरी परिवेश अनायास ही देखने को मिलते है । स्पष्ट है कि यह विरोध भाव हिंसापूर्ण संघर्षों की ओर संकेत नहीं करता, बल्कि यह नैतिक मानवीय मूल्यों की भित्ति पर खडा है । यह संघर्ष-चेतना कोटि-कोटि संघर्षरत मानव-मन की भीतरी प्रेरणा से जुडी है । कवि को मनुष्य की विजय पर विश्वास है और उसकी प्रगतिशील सांस्कृतिक विरासत के प्रति प्रगाढ आस्था और विश्वास है । इसलिए वह शोषण के शिकंजे से मुक्ति के लिए हिंसापूर्ण विरोध का समर्थन नहीं करता बल्कि आत्मशक्ति विवेकबुद्धि के बल पर ही नयी समाज व्यवस्था रचने का हिमायती है ।

जनता की शक्ति पर कवि का विश्वास 'दर्द' कविता में देखा जा सकता है । अन्याय और शोषण को चुपचाप सहन कर लेना कवि की दृष्टि में कायरता है । शोषण के विरूद्ध अन्तर के घुमडते हाहाकार को संगठित होकर व्यक्त करना जन सामान्य का परम कर्तव्य है और सहन करना कायरता । इस संघर्ष में 'दर्द' की पंक्तियाँ द्रष्टव्य है -

'कितना बडा दर्द है -
भीतर से एक महाभारत गुजरा हो

औ कुछ न कहा जाय
चारों ओर शोर मच रहा हो
और अपनी जय के समय भी मौन रहा जाय ।'

मिश्रजी का जीवन-दर्शन भारतीय तत्व-चिन्तन और सामाजिक यथार्थ बोध से निर्मित है, इसलिए उनकी कविताओं में समाज निर्माण के लिए जिस जीवन दृष्टि की अभिव्यक्ति हुई है, वह उनकी मौलिक है और इस क्षेत्र में मूल्यों को चुनने की दृष्टि से किसी की पिछेहट नहीं है ।[२]

मिश्रजी की कविता-यात्रा पूर्ववर्ती उबड-खाबड पगडंडियों से गुजरती हुई नये युग के भावबोध से प्रेरित नयी सौन्दर्य-दृष्टि की ओर अग्रसर रही है । इसलिए उनकी कविता में सूक्ष्म और अमूर्त कल्पना चित्रों के स्थान पर यथार्थ जगत लिए गये मूर्त उपादान दिखाई पडते है । जहाँ पूर्ववर्ती कविताओं में बादल, इन्द्रधनुषी सौन्दर्य, हिममंडित शिखर, चाँदनी और निर्झर की उज्जवलता आदि में सौन्दर्य खोजती हुई दृष्टि रोमांटिक भावबोध से जुडी थी, वहाँ आज वह नये जमाने में पेडों से गिरते सूखे पत्तों, सुखी कंटीली झाडियों, खेत, खलिहानों में पसीना बहाते किसानों तथा नगरों-महानगरों में चिमनियों से धुओं के बीच खून सुखाने मजदूरों तथा गाँव की बदली हुई फिजां में प्रकृति के विभिन्न रूपों में फैल गयी है । मिश्रजी की कविताएँ जन-जीवन के हर्ष-विषद, सुख-दुःख, राग-विराग, प्रगीत तथा उल्लास-अवसाद से जुडी है । इसलिए ये हमें अपनी संवेदनाओं के अधिक निकट मालूम होती है ।[३]

मिश्रजी की अधिकांश कविताएँ स्वातंत्र्योत्तर युग की कविताएँ है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मूल्यगत संक्रांति युग का आरंभ हुआ । इस युग की रचनाओं का सम्बन्ध यथार्थ से अधिक रहा है - आज मूल्यगत संक्रांति विश्वव्यापी अप्रत्याशित धरातल पर लक्षित हो रही है और गत एक-डेढ दशक के काव्य को उसके परिप्रेक्ष्य में न देखना संभव नहीं है । इन कविताओं में ज्यादातर 'यथार्थ' का ही विवेचन किया गया है ।[४]

रामदरश मिश्रजी का साहित्य सत्यम्, शिवम्, सुदरम् से ओत-प्रोत है, यह कहना अनुचित न होगा । उनकी कविताओं को समग्र रूप से देखने पर जो सच्चाई उभर कर आती है, यह है कि मिश्रजी मानवमूल्यों के रचनाकार है । आज आर्थिक-राजनैतिक स्तर पर आम जनता का शोषण हो रहा है, इसलिए भावात्मक स्तर पर मिश्रजी की सहानुभूति और हमदर्दी शोषित-पीडित गरीब व्यक्तियों के साथ है । शोषक के विभिन्न रूपों की झाँकी उनकी कविताओं में दिखाई पडती है । समाज की गन्दगी की समाप्ति के लिए मार्क्सवादी समाधान प्रस्तुत करना उनका उदेश्य नहीं रहा है । उन्हें मार्क्सवाद वहीं तक ग्राह्य है, जहाँ तक वह शोषितों-पीडितों के दुःख-दर्द और उनके प्रति हमदर्दी से संबध्ध है । यहीं उनका एक मात्र उदेश्य रहा है ।[५]

यद्यपि मिश्रजी निराला, मुक्तिबोध, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, रामविलास शर्मा, गिरिजाकुमार माथुर आदि प्रगतिशील रचना-परंपरा को आगे बढाते रहे है, किन्तु जिस तरह प्रत्येक कवि को अपनी मौलिक दृष्टि होती है, रचना की अपनी भूमिकाएँ होती है तथा यथार्थ से साक्षात्कार करने की अपनी दृष्टि होती है । उसी रूप में मिश्रजी इन पूर्ववर्ती कवियों से भिन्न है । आज अनेक कवि सामाजिक यथार्थ बोध से भिन्न है । आज अनेक कवि सामाजिक यथार्थ बोध से प्रेरित काव्य-सृजन में संलग्न हैं ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मिश्रजी बहुमुखी प्रतिभावंत कवि है, जिन्होंने अपनी मौलिक सृजन प्रतिभा के बल पर निरंतर आगे बढते रहे है । हिन्दी कविता के क्षेत्र में उनका योगदान महत्वपूर्ण है ।[६]

संदर्भ सूची

१) **डॉ. जगदीश गुप्त, आलोचना, पृ. ६९**

२) **दिन एक नदी बन गया, 'दर्द', पृ. ५१**

३) **दिन एक नदी बन गया, 'कल्पवृक्ष', पृ. ३७**

४) **दिन एक नदी बन गया, 'हम कहाँ है', पृ. ४२१**

५) **दिन एक नदी बन गया, 'रात', पृ. २९**

६) **रचनाकार रामदरश मिश्र, पृ. ४२०**

❑ परिशिष्ट : १ ग्रंथानुक्रमणिका : आधार ग्रंथ : रामदरश मिश्र के काव्य

१)	पथ के गीत	कवि : रामदरश मिश्र	१९५९ ई
२)	बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ	कवि : रामदरश मिश्र	१९६२ ई
३)	पक गई है धूप	कवि : रामदरश मिश्र	१९६९ ई
४)	कंधे पर सूरज	कवि : रामदरश मिश्र	१९७७ ई
५)	दिन एक नदी बन गया	कवि : रामदरश मिश्र	१९८४ ई
६)	मेरे प्रिय गीत	कवि : रामदरश मिश्र	१९८५ ई
७)	बाजार को निकले है लोग	कवि : रामदरश मिश्र	१९८६ ई
८)	जुलूस कहाँ जा रहा है ?	कवि : रामदरश मिश्र	१९८९ ई
९)	रामदरश मिश्र की प्रतिनिधि कविताएँ	कवि : रामदरश मिश्र	१९९० ई
१०)	आग कुछ नहीं बोलती	कवि : रामदरश मिश्र	१९९२ ई
११)	बारिश में भीगते बच्चे	कवि : रामदरश मिश्र	१९९२ ई
१२)	शब्द सेतु	कवि : रामदरश मिश्र	१९९४ ई

❑ उपन्यास

१)	पानी के प्राचीर	लेखक : रामदरश मिश्र	१९६१
२)	जल टूटता हुआ	लेखक : रामदरश मिश्र	१९६९
३)	सूखता हुआ तालाब	लेखक : रामदरश मिश्र	१९७२
४)	आकाश की छत	लेखक : रामदरश मिश्र	१९७९
५)	थकी हुई सुबह	लेखक : रामदरश मिश्र	१९९४
६)	बीस बरस	लेखक : रामदरश मिश्र	१९९६

❑ आत्मकथाएँ

१)	जहाँ मैं खडा हूँ	लेखक : रामदरश मिश्र	१९८४
२)	रोशनी की पगदंडियाँ	लेखक : रामदरश मिश्र	१९८६
३)	टूटते - बनते दिन	लेखक : रामदरश मिश्र	२०००

❑ यात्रावर्णन

१)	तना हुआ इन्द्रधनुष	लेखक : रामदरश मिश्र	१९८९
२)	भोर का सपना	लेखक : रामदरश मिश्र	१९९३

❑ परिशिष्ट : २ रामदरश मिश्र संबंधी शोध-पुस्तकें

१)	रचनाकार रामदरश मिश्र	: सं. डॉ. नित्यानंद तिवारी
२)	रामदरश मिश्र की सृजन यात्रा	: ले. डॉ. महावीरसिंह चौहान
३)	कवि रामदरश मिश्र	: सं. डॉ. महावीरसिंह चौहान
४)	रामदरश मिश्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	: ले. डॉ. फूल बदन यादव
५)	रामदरश मिश्र : रचना समय	: सं. डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ
६)	रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति	: सं. डॉ. जगन सिंह
७)	रामदरश मिश्र रचनावली - १	: सं. डॉ. रामदरश मिश्र
८)	रामदरश मिश्र रचनावली - २	: सं. डॉ. रामदरश मिश्र
९)	रामदरश मिश्र के उपन्यासों में घर-परिवार	: डॉ. यशवंत गोस्वामी
१०)	रामदरश मिश्र के उपन्यासों में नारी	: डॉ. मनहर गोस्वामी

❑ परिशिष्ट : ३ (सहायक ग्रंथ)

१)	आधुनिक साहित्य : विविध परिदृश्य	: सं. डॉ. सुंदरलाल कथूरिया
२)	आधुनिक हिन्दी कविताओं में नारी मनोविज्ञान	: उर्वशी सुरती
३)	कबीर ग्रंथावली	: भगवत्स्वरूप मिश्र
४)	साहित्यिक निबंध	: डॉ. राजनाथ शर्मा
५)	हिन्दी काव्य सौरभ	: सं. रमेशचन्द्र कुलश्रेष्ठ
६)	साहित्यिक निबंध	: डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
७)	साहित्यिक निबंध	: डॉ. कृष्णदेव शर्मा
८)	श्रृंखला की कडियाँ	: महदेवी वर्मा
९)	नारी	: गांधीजी
१०)	कामायनी	: जयशंकर प्रसाद
११)	रश्मिरथी	: रामधारीसिंह दिनकर
१२)	उर्वशी	: दिनकर

१३) समकालीन परिवेश और प्रासंगिक रचना संदर्भ : डॉ. माधव सोनटक्के
१४) स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य :
१५) कादम्बिनी : प्रो. आनंदनारायण शर्मा
१६) आधुनिक काव्य : रचना और विचार : आचार्य नंददुलारे वाजपेयी

❑ परिशिष्ट : ४ (रामदरश मिश्र के समीक्षात्मक ग्रंथ)

१) साहित्य, संदर्भ और मूल्य : रामदरश मिश्र १९६९ई
२) आज का हिन्दी साहित्य संवेदना और सृष्टि : रामदरश मिश्र १९७५ई
३) हिन्दीगद्य साहित्य : आधुनिक आयाम : : रामदरश मिश्र १९९४ई

❑ परिशिष्ट : ५ (शब्दकोश)

१) बृहत् हिन्दी कोश : कालिकाप्रसाद सं. २०१३
२) राष्ट्रभाषा कोश : राहुल सांकृत्यायन : १९५३
३) भगवद गो मंडल
४) हिन्दी-गुजराती शब्दकोश

❑ परिशिष्ट : ६ (पत्र-पत्रिकाएँ)

१) साहित्य - जगत
२) साहित्य - अमृत
३) संचेतना
४) गुजरात समाचार : रविपूर्ति
५) संदेश : रविपूर्ति
६) मधुमति
७) हंस
८) भाषा सेतु

❑ पत्राचार